दिल से दिल की बात

भाग - III

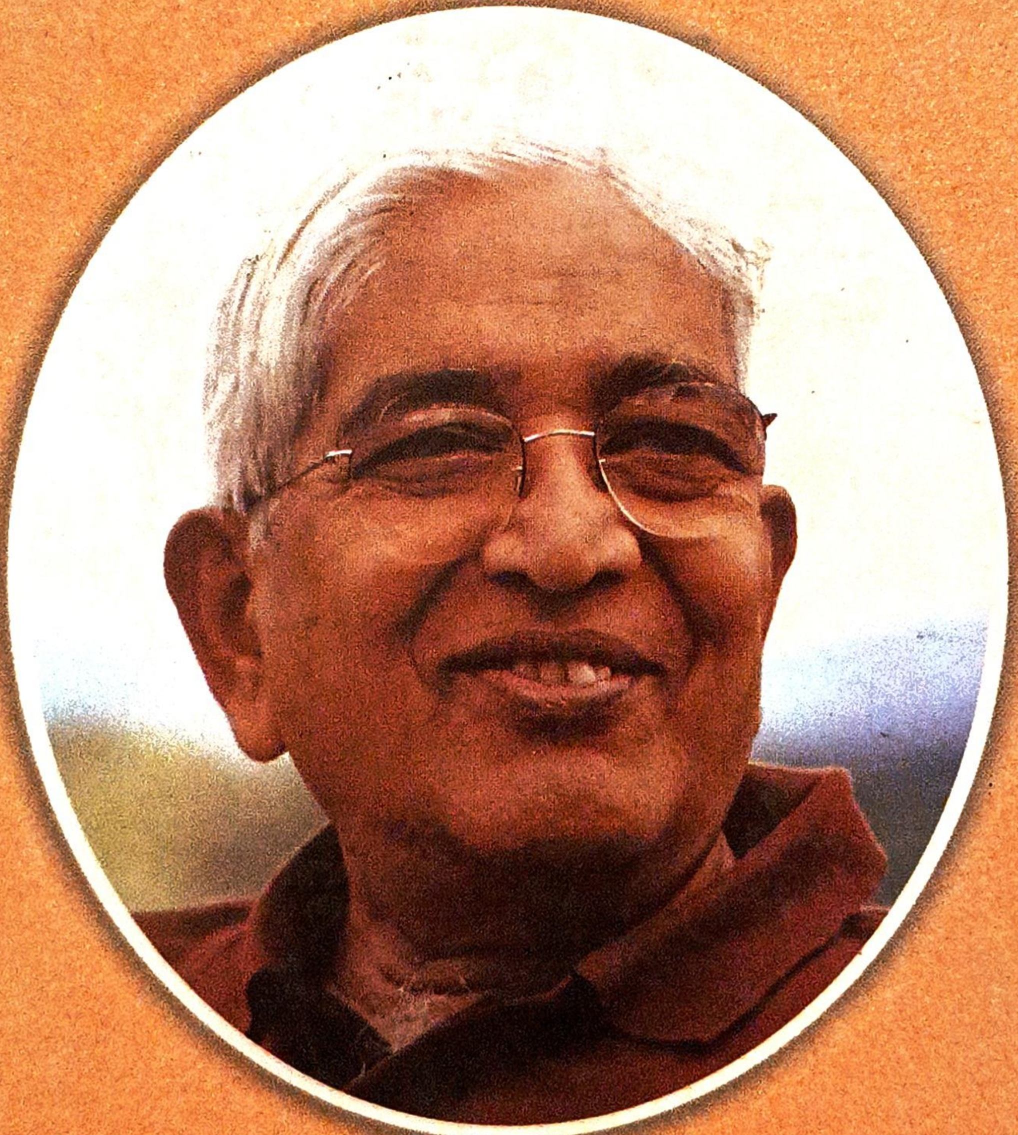

पी. राजगोपालाचारी

दिल से दिल की बात

भाग-III

लेखक
पार्थसारथी राजगोपालाचारी

श्री रामचन्द्र मिशन

प्रथम संस्करण

© श्री राम चन्द्र मिशन, अमरीका : 1994 2000 प्रतियाँ

प्रथम भारतीय संस्करण, जनवरी : 1996 5000 प्रतियाँ

द्वितीय भारतीय संस्करण, अप्रैल : 2002 5000 प्रतियाँ

आई एस वी एन 81-7894-009-4

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य रु. 120/-

हिन्दी अनुवाद : मनोज आबूसरिया

प्रकाशक : प्रकाशन समिति (हिन्दी भाषा)
श्री राम चन्द्र मिशन
"आशिर्वाद"
68/11, इन्द्रप्रस्थ, स्टेनली रोड
इलाहाबाद-211001

इस पुस्तक के किसी भी भाग को श्री राम चन्द्र मिशन की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा किसी साधन द्वारा पुनः प्रस्तुत नहीं किया जा सकता।

मुद्रक : आस्था एसोसियेट्स, इलाहाबाद।

जिल्दसाज : जी.पी. बाइन्डर्स, इलाहाबाद।

लेजर टाइप सेटिंग : अभिलेख अग्रवाल

I

यूरोप

[illegible]

प्रकाशक की ओर से

पूज्य मालिक श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी जी के यूरोप और अमेरिका में वर्ष 1988 में दिये गये व्याख्यानों का संकलन ''**दिल से दिल की बात भाग-III**'' के रूप में प्रस्तुत करते हुये हमें अत्यधिक प्रसन्नता हो रही है। यह पुस्तक पूर्व में अंग्रेजी भाषा में प्रकाशित **"Heart to Heart Vol. III"** का हिन्दी अनुवाद है।

इस पुस्तक में संकलित मालिक के व्याख्यानों में यह सन्देश निहित है कि हमें शून्य की खोज करनी है। शून्य का स्वयं कोई अस्तित्व नहीं होता, परन्तु यही वह विषय है, जिसका न तो कोई नाम है, न रूप है, और न ही कोई गुण है। ईश्वर की ऐसी अनुभूति ही हमारी मंजिल है। ईश्वर को ही चाहो, उसी से प्रेम करो, उसकी शक्तियों से नहीं। उन्होंने मानव जीवन के संतुलित विकास के लिये पथ प्रशस्त करते हुये पुस्तक में व्यक्त किया है कि प्रौद्योगिकी के युग में अध्यात्म की उपेक्षा करना बड़ी भूल होगी और अध्यात्म की ओर प्रवृत्त होने पर प्रौद्योगिकी की उपेक्षा करना और भी बड़ी भूल होगी। रूढ़ियों के स्थान पर हृदय से प्रस्फुटित ज्ञान को अपनाना होगा। असली ज्ञान दिमाग से नहीं दिल से प्राप्त होता है। सफलता अस्थायी है, जबकि विकास अनवरत है, शाश्वत है। अतः सफलता के बजाय विकास के लिये प्रयत्न करना चाहिये।

इस पुस्तक का हिन्दी भाषा में अनुवाद एवं रोचक शैली में प्रस्तुतीकरण भाई श्री मनोज आबूसारिया द्वारा प्रेम, मनोयोग, लगन एवं कुशलता से किया गया है। इस पुस्तक की प्रूफ रीडिंग और विषय-वस्तु को स्वाभाविक रूप में रखने के लिये श्रीमती (डा0) गायत्री दीक्षित एवं प्रो0 (डा0) एच.के. दीक्षित ने सहर्ष सहयोग देकर परिश्रम पूर्ण कार्य किया है।

प्रकाशन समिति
हिन्दी भाषा
श्री रामचन्द्र मिशन

अनुक्रमणिका

I यूरोप

		पृष्ठ
1.	लोक-वार्ता, टोलोन	5-22
2.	लोक-वार्ता, नाइस	23-42
3.	लोक-वार्ता, केन्स	43-58
4.	हृदय-साक्षात्कार का साधन	59-77
5.	लोक-वार्ता, टोरिनो	78-92
6.	संस्कार	93-109
7.	प्रेम तथा अनुशासन	110-123
8.	लोक-वार्ता, कोरमैटिस	124-140
9.	मालिक सर्वव्यापी हैं	141-143
10.	संवेदनशीलता	144-147
11.	ओजराँ आश्रम का उद्घाटन	148-150
12.	हृदय पथ	151-167

II अमेरिका

13.	दयालुता का आरम्भ घर से ही	169-176
14.	देने का सही तरीका	177-189
15.	अमेरिका की वार्षिक आम सभा को संबोधन	190-201
16.	लोक-वार्ता, स्मीरना	202-222

1
लोक वार्ता
टोलोन, फ्रांस

15 जून, 1986

जो लोग अंग्रेजी समझते हैं, उनके लिए मैं धीमी गति से बोलने का प्रयास करूँगा। विषय सरल है और कठिन भी। मैं उस यथार्थ को आपके सामने रखूँगा, जो मेरे मालिक श्री रामचन्द्र महाराज ने मुझे समझाया है, जिनका चित्र आप यहाँ देख रहे हैं। वस्तुतः यह सुदूर पूरब, भारत से आई हुई पूर्वी-शिक्षा है। इसे स्वीकारने और समझने में सहज कठिनाइयाँ तो आयेंगी ही, लेकिन मैं उम्मीद करता हूँ कि आप सभी यहाँ खुले दिलो दिमाग लेकर आये हैं। साथ ही अब समय करवट ले रहा है, जिन बातों को हम विदेशी विचार कहकर दर-किनार कर देते थे, उन्हीं को लोग अधिक सहजता से स्वीकारने लगे हैं।

मैं इस वार्ता की शुरुआत अपने स्वयं के जीवन के एक छोटे से पुट के साथ करना चाहता हूँ ताकि आपको स्थिति की नज़ाकत का अहसास हो सके। भारतीय दर्शन, यौगिक दर्शन और मनोविज्ञान के साथ मेरा पहला सम्पर्क पश्चिम के जरिए ही हुआ था। मुझे संस्कृत सीखने का मौका नहीं मिला, जिसके बिना भारतीय योग के मूल पाठ पर प्रत्यक्ष पकड़ जमाना असम्भव है। इसके लिए मुझे जर्मनी के मैक्स मूलर, कुछ अंग्रेजी लेखकों, फ्रांसीसी लोगों की कुछ सूफी रचनाओं और खासकर आपके पेयरे टीलहार्ड डी चार्डन का सहारा लेना पड़ा। मुझे यह जानकर बहुत हर्ष और बहुत दुःख हुआ कि मुझे अपने देश, अपने दर्शन, अपने अस्तित्व के बारे में सच्चाई जानने के लिये विदेशी भाषा और विदेशी लेखकों का सहारा लेना पड़ा। इस सब का कारण यह था कि ये ग्रंथ जिस भाषा में लिखे गये थे, वह मुझे नहीं आती थी।

मैं यह बात मात्र भाषा का महत्व उजागर करने के लिये कह रहा हूँ। आज मुझे इस बात का दुःख है कि मैं आपके साथ फ्रांसीसी भाषा में बात नहीं कर सकता। कभी-कभी अंग्रेजी भाषा भी बौनी नजर आती है क्योंकि संस्कृत में कई ऐसे शब्द हैं, जिनका दूसरी भाषा में अनुवाद नहीं किया जा सकता। मैंने पाया है कि आत्मा जैसे साधारण शब्द का अंग्रेजी में सही अनुवाद उपलब्ध नहीं है। कोई इस Spirit कहता है तो कोई Soul, जब हम एक संस्कृति को अन्य भाषा के माध्यम से सीखने का प्रयास करते हैं तब ये समस्यायें आती हैं क्योंकि कई अवसर, स्थितियाँ और मूल पाठ ऐसे होते हैं जिन्हें सम्बद्ध भाषा को जाने बिना समझना असम्भव होता है।

उदाहरण के तौर पर एक मशहूर अंग्रेज की कहानी लीजिये जो ब्रिटिश राज में कलकत्ता उच्च न्यायालय में न्यायाधीश था। उसे कुण्डलिनी के बारे में जानने की रुचि हुई। वह संस्कृत सीखना चाहता था। उन दिनों मेरे देश में दुर्भाग्यवश गोरे लोगों, यूरोपवासियों को दोयम दर्जे का इंसान समझा जाता था। संस्कृत के पठन-पाठन पर ब्राह्मणों का नियंत्रण था। लिहाजा उन्होंने उसे संस्कृत पढ़ाने से इंकार कर दिया। ऐसा उस समय का अंध विश्वास और दकियानूसी थी क्योंकि संस्कृत देव भाषा मानी जाती थी। अतः जो सीखना चाहते थे, वे सीख नहीं सकते थे। मेरे जैसे लोग, जिन्हें वह भाषा नहीं आती थी वे भी नहीं सीख पाये। ऐसी बात हिन्दू संस्कृति या भारतीय संस्कृति में ही नहीं थी बल्कि हिब्रु संस्कृति और अरबी परम्पराओं में भी यही हालात थे। लोगों की संस्कृति में रच बस गयी सभी परम्पराओं में यही स्थिति थी। वह न्यायाधीश महोदय मुस्लिम महिलाओं की भाँति बुरका पहनकर जाते थे। उनका चेहरा ढका रहता था और उन्हें पालकी में बिठाकर चोरी-छिपे एक व्यक्ति के पास लाया जाता था, जो उन्हें संस्कृत पढ़ाता था।

ये बातें मैं आपको यह समझाने के लिए बता रहा हूँ कि चीजें सीखना विदेशियों ही नहीं बल्कि मेरे जैसे स्थानीय व्यक्ति के लिए भी कितना कठिन था। जब मैंने इन चीजों को अंग्रेजी भाषा के माध्यम से पढ़ना आरम्भ किया तो यह जानकर मैं काँप सा गया कि मुझे कई बातों के बारे में कितनी भ्रांति थी क्योंकि अंग्रेज और जर्मन वासियों ने जो कुछ सीखा था उन्होंने उसका गलत अर्थ ले लिया था।

मैक्स मूलर एक महान विद्वान थे। उन्होंने THE GREAT BOOK OF THE EAST नामक चौसठ खण्डों में कई किताबें लिखी हैं। इसका उदाहरण लीजिये। एक वैदिक मंत्र में शायद कोई ईश्वर भक्त या फिर कोई योगाभ्यासी भाव-समाधि की स्थिति में बार-बार दोहराता है, 'किसका करूँ मैं शुक्रगुजार, किसकी उतारूँ मैं आरती?'' अधिकतर विदेशियों ने इसका गलत भावार्थ लिया। उन्होंने कहा कि भारत के लोग यह भी नहीं जानते कि उनका देवता कौन है, क्योंकि वे यही प्रश्न पूछते रहते हैं, 'किसका करूँ मैं शुक्र गुजार, किसकी उतारूँ मैं आरती'' देखिए, जो व्यक्ति सर्वत्र हर चीज में ईश्वर की छवि निहारता हो, उसके लिए यह भाव समाधि की स्तुति है। यह तो कुछ ऐसा हुआ मानो आप सभी यहाँ तशरीफ लाये हैं और सभी प्रसन्नचित्त हैं और मैं पूछूँ कि मैं किसको (आपको, इनको या फिर उनको) धन्यवाद दूँ कि आप यहाँ पधारे हैं और यह वार्ता सुन रहे हैं?

यह मेरे लिये एक रहस्योद्‌घाटन के समान था कि या तो मैं इन पावन प्राचीन ग्रन्थों की भाषा सीखूँ या किसी ऐसे व्यक्ति की तलाश करूँ जो भाषा अवरोध मुझे

ये ग्रंथ पढ़ा सके। यह कहते हुये मुझे खुशी हो रही है कि संघर्ष कष्ट, परिश्रम और कुण्ठा भरे कई वर्षो के बाद एक अवस्था में मैंने कह दिया, 'ये सब कुछ अनावश्यक और समय की बर्बादी है।' उस समय मैं प्रसन्नचित्त था। मैं अपने मालिक श्री रामचन्द्रजी के सम्पर्क में आया था। अब यह संयोग है या भाग्य, लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि वे मुझे मिल गये। उन्होंने मुझे इस ढंग से दीक्षा दी कि न संस्कृत न हिन्दी और न ही कोई और भाषा आड़े आई।

इसमें आश्चर्यजनक बात यह है कि हम बोले-सुने बिना सीख सकते हैं। यह शिष्य की प्रतिभा और उसके भी अधिक गुरु की प्रतिभा पर निर्भर करता है कि वह बोले बिना आपको सिखा सकता है। इसलिये यह मालिक की महानता थी। उनका जन्म गत शताब्दी के अन्त (1899) में हुआ था और बहुत कम पढ़े लिखे थे। उन्होंने स्कूल बीच में ही छोड़ दिया था। स्वयं के बारे में मजाकिये अंदाज में वे कहा करते थे कि स्कूल छोड़ना उनके लिये वरदान साबित हुआ। मैंने उनकी यह बात तत्काल समझ ली क्योंकि भाषा और बुद्धि की समस्या से ग्रस्त होने के साथ ही अपने प्रारम्भिक वर्षो में यूरोप से सम्पर्क की वजह से मैं भाषा, विवेक, बुद्धि और समझबूझ को अनावश्यक महत्व दिया करता था।

कृपया मेरी इस बात का बुरा न मानें क्योंकि खासकर फ्रांस में जहाँ बौद्धिक शिक्षा और दर्शन की महान परम्परा है, इस तरह की बात करना अनुचित है। मैं आप लोगों को विश्वास दिलाता हूँ कि मैंने इस देश के मनीषियों से बहुत कुछ सीखा है। इस बारे में मैं पेयरे ताइलहार्ड डी चार्डिन के नाम का उल्लेख करना चाहूँगा। उनसे तथा उनकी रचनाओं से मेरा परिचय स्कूल में पढ़े भू-विज्ञान खासकर जीवाश्म-विज्ञान के माध्यम से हुआ था। मैं उनसे प्रभावित हुआ क्योंकि वे एक पादरी थे। वे ऐसे जीवाश्म वैज्ञानिक थे, जिन्हें पूर्वी देश चीन में लम्बे प्रवास का मौका मिला था। मेरे विचार से वह करीब चालीस वर्षो तक वहाँ रहे। लेकिन यह बात महत्वपूर्ण नहीं है। सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि उनके जीवन और लेखन में वही बौद्धिक द्वन्द देखने को मिलता है जो विज्ञान और धर्म खासकर कैथोलिक धर्म में विद्यमान है। यह दुखद बात है कि उनके जीवनकाल में उनकी कोई भी रचना प्रकाशित नहीं हुई क्योंकि उन्होंने भू-विज्ञान तथा जीवाश्म-विज्ञान के आधार पर यह कहने का साहस किया कि विश्व की रचना कई शहस्त्राब्दियों पूर्व हुई थी न कि 4004 बी.सी. में, जैसा कि चर्च का दावा था।

यह एकाकी घटना नहीं है। हमारे सामने इटली के गैलोलियो, कैप्लर और कई लोगों के उदाहरण हैं, जिन्होंने विज्ञान का अध्ययन किया और धर्म उपदेश दिये या

धर्म-पथ का अनुसरण किया। उन सबके सामने भी अस्तित्व की ये समस्यायें आयी थीं। मेरे देश भारत में भी ये समस्या हमेशा से रही है। इसका कोई अपवाद नहीं है कि दो धर्मों और बौद्धिक विज्ञान के बीच हमेशा टकराहट का माहौल रहा। वस्तुतः भारत में स्थिति बहुत बदतर है। हमने किसी को शूली पर नहीं चढ़ाया। हमने किसी को जीवित नहीं जलाया, लेकिन जो व्यक्ति समुद्र पार विदेश गमन से लौटता था उसे हिन्दू परम्परा में कुछ शुद्धीकरण क्रियायें करनी पड़ती थीं। मैं इसे बहुत बुरा मानता हूँ। भले ही किसी व्यक्ति के शरीर को शूली पर चढ़ाओ अथवा उसकी आत्मा को उत्पीड़न दो, दोनों ही स्थितियाँ कष्टकर हैं। मेरे विचार से आत्मा कहीं अधिक महत्वपूर्ण है। मैं यह बात उन लोगों के अधिकार से कह रहा हूँ जिन्हें शूली पर चढ़ाया गया, जिन्हें जिन्दा जलाया गया, जिनकी हत्या की गयी, क्योंकि वे चाहते थे कि भले ही उनके शरीरों को शूली पर चढ़ा दिया जाये लेकिन उनकी आत्मा को पीड़ा न पहुँचायी जाये।

जैसा कि आप जानते हैं, ईसाई धर्म में शैतान ने जब ईशु को ललचाया तब उन्होंने कहा था "यदि व्यक्ति अपनी आत्मा गवाँकर पूरे संसार को हासिल कर ले तो भी क्या फायदा" एक अर्थ में तो अच्छा हुआ कि धार्मिक उत्पीड़न की वजह से इन महान पैगम्बरों, सन्तों और शहीदों का अवतरण हुआ। जो लोग जानना समझना चाहते हैं वे इन महान विभूतियों के जीवन से यह सबक ले सकते हैं कि जब आत्मिक हितों और शारीरिक हितों के बीच में द्वन्द की स्थिति हो, तो शरीर की बलि देनी चाहिये।

ये दोनों चरम पराकाष्ठा की स्थितियाँ है। हर रोज ईशु जन्म नहीं लेते। इससे यह पता चलता है कि हम जो कुछ हासिल करना चाहते हैं, इसके लिए हमें किस सीमा तक बलिदान देने के लिये तैयार रहना चाहिये। यह ईसा मसीह की अन्तिम फरियाद से स्पष्ट होती है जब उन्होंने कहा था, 'प्रभू इन्हें माफ कर देना क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।' यह उनकी अपने जीवन को कुर्बान करने की तत्परता की भावना के साथ ही उन लोगों के जीवन में रक्षा की भावना थी, जिन्होंने उन्हें कष्ट पहुँचाये और शूली पर चढ़ाया था। यह भावना न बुद्धि से आती है न शिक्षा-दीक्षा से और न ही समझदारी से बल्कि यह हृदय का एक गुण है।

इन सभी शहीदों के जीवन से हमें यही सबक मिलता है। इन महान विभूतियों में से किसी के पास युनिवर्सिटी की शिक्षा नहीं थी। कोई भी देश, जहाँ इनका जन्म हुआ, यह दावा नहीं कर सकता कि ये बुद्धिजीवी थे। वास्तव में अधिकतर ने तो औसत से भी कम स्तर की शिक्षा पायी थी। और जैसा कि मैं पहले कह चुका

हूँ मेरे मालिक उनमें से एक थे।

वस्तुतः यदि हम सावधानीपूर्वक अध्ययन करें तो पायेंगे कि उन सबके मन में बुद्धि और ज्ञान को लेकर आशंका थी और संसार के इन कई महान सपूतों ने इसका इजहार भी किया था।

उदाहरण के लिए भारत के महान सपूत स्वामी विवेकानन्द ने स्पष्ट रूप से कहा है, 'बुद्धि के बल पर हम एक हद तक जा सकते हैं लेकिन उससे आगे नहीं, और जब हम उस हद तक पहुँच जाते हैं तो हमें बुद्धि को सादर अलविदा कहना पड़ता है।' यही बात विज्ञान के क्षेत्र में आइन्स्टीन ने भी कही है। उन्होंने कहा कि विज्ञान, वैज्ञानिक अनुसंधान और सैद्धान्तिक दर्शन-शास्त्र के क्षेत्र में एक ऐसा मुकाम आता है जहाँ से भरसक प्रयास करके भी आगे नहीं बढ़ा जा सकता। यहीं से भगवान की सीमा रेखा प्रारम्भ होती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि केवल साधु सन्तों ने ही नहीं, महान वैज्ञानिकों ने भी इस बात की पुष्टि की है। लोग स्थूल जगत, आकाश गंगा आदि की गहराइयों में जाते हुए ज्ञान की हद तक पहुँचे हैं। लोगों ने सूक्ष्म जगत का भी अध्ययन किया है। वहाँ भी इनके सामने यही सीमायें आयी हैं। ये सीमायें बहुत व्यापक हैं, इसका यह अर्थ नहीं है कि मानव बुद्धि और ज्ञान से परे है। यह भी नहीं कहा जा सकता कि ये सीमायें इस हद तक फैलती जा रही हैं कि एक दिन ऐसी स्थिति आ जायेगी जब कोई सीमा नहीं रहेगी। खगोल-विज्ञान, खगोल-भौतिकी का एक प्रसिद्ध कथन है जिसका श्रेय पुनः अल्बर्ट आइन्स्टीन को जाता है कि हमें जो कुछ दिखायी पड़ता है वह ब्रह्माण्ड का एक बहुत छोटा-सा अंश है। वस्तुतः ज्ञान की अवस्था इतनी प्रारम्भिक है कि जो कुछ हम असल में देख रहे हैं वह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का कितना हिस्सा है यह नहीं कहा जा सकता क्योंकि ब्रह्माण्ड के आकार का कोई अन्दाजा नहीं है। जब कोई चीज प्रकाश की गति से परे चली जाती है तो हमें यह ज्ञान नहीं रहता कि वह कहाँ, क्यों और कैसी है। इस प्रकार ज्ञान के सुप्रसिद्ध तथा सुव्यवस्थित अनुसंधान क्षेत्र में विज्ञान का क्या फायदा, जब हमें यह भी नहीं मालूम कि आज हमें ज्ञान के कितने प्रतिशत भाग की जानकारी है।

यह तो हुई विज्ञान की बात। आइये अब हम धर्म पर चर्चा करें। अगला प्रश्न उठता है कि क्या धर्म को अनन्त की सीमाओं का ज्ञान है। हमें धर्म की मोटी-मोटी जानकारी है। धर्म कहता है कि ईश्वर स्वर्ग में निवास करता है। इंसान होने के नाते हमने भगवान में मानवीय गुणों की कल्पना कर रखी है कि वह हमें लालायित करता है हमें अपने पापों की सजा देता है आदि अथवा यदि हम थोड़ा और साहस

करें तो हम ईश्वर की कल्पना एक विशालकाय लम्बे चौड़े सैकड़ों हाथों और दस सिर वाले जीव के रूप में असंख्य हाथ पैर और अनन्त शक्ति सम्पन्न जीव के रूप में करते हैं।

मेरे मालिक ने पहले मुझे वास्तव में यह महत्वपूर्ण ज्ञान दिया कि इन सभी धर्मो के मूल संस्थापकों ने चाहे वे महात्मा बुद्ध हों या ईसा मसीह या भगवान कृष्ण या पैगम्बर मोहम्मद हों, उन्होंने सत्य के कुछ अंश का जरूर दर्शन किया है। तभी वे भगवान के बारे में कुछ कहने में सफल हुये।

अब यह समझना बहुत महत्वपूर्ण है जैसा कि मेरे मालिक ने मुझे समझाया, 'उस अनन्त असीम सत्ता का स्वयं दर्शन कर चुके धर्म संस्थापक जब उसके बारे में कुछ नहीं कह सकते तो चर्च, मन्दिर, मस्जिद के धर्म संस्थापक, जिन्हें अनन्त, असीम ईश्वर का प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है हमें भगवान के बारे में कैसे शिक्षा दे सकते हैं? वे हमें भगवान के दर्शन कैसे करा सकते हैं?'

इस प्रकार पूर्व, पश्चिम तथा मध्य पूर्व हर जगह गूढ़ रहस्यवादी परम्परा मौजूद है। एक प्रसिद्ध कथन है, **'जो जानता है, वह बोल नहीं सकता। जो बोलता है, वह जानता नहीं।'** क्या इसका यह अर्थ है कि हम ईश्वर के बारे में जान नहीं सकते क्योंकि किसी ने ऐसा कहा है? मेरे मालिक ने कहा,'नहीं, कतई नहीं।' उन्होंने कहा, 'यदि आपकी तलाश बुद्धि और ज्ञान के जरिये है तो आप सैकड़ों जन्मों में भी भगवान को नहीं खोज पाओगे। भगवान सम्भवतः ज्ञान का विषय हो ही नहीं सकते।

यह बात सभी रहस्यवादी दर्शकों में भली भाँति ज्ञात है। लेकिन दुर्भाग्यवश जब हम चर्च और धार्मिक कर्मकाण्डों में लग जाते हैं तो यह बात हम भूल जाते हैं। मुझे लगता है कि हम जानते बूझते ऐसा करते हैं। माफ कीजिये, लेकिन यह मेरा निजी अनुभव है। धर्म एक बहुत ही सुगम चीज है। सप्ताह अथवा पन्द्रह दिनों में एक बार मन्दिर अथवा चर्च में जाइये, पूजा प्रार्थना कीजिये, अपने गुनाहों को जिनके प्रति आप न गम्भीर हैं और जो न आपके हृदय से आते हैं, कबूल कीजिये प्लेट अथवा हुण्डी में कुछ पैसे रखिये और सप्ताह पन्द्रह दिन के लिये आपका दायित्व पूरा हो गया। आप भगवान को उसके चर्च या मंदिर में बड़ी आसानी से छोड़कर आ जाते हैं और बदस्तूर अपना जीवन जीते रहते हैं।

इस प्रकार धर्म एक बहुत ही सुगम चीज है क्योंकि हम अपने पाप और अपराध बोध आदि जमा करके समय-समय पर उनसे छुटकारा पाते रहते हैं और स्वयं को बदलने की जिम्मेदारी महसूस किये बिना खुशी-खुशी वापस आ जाते हैं।

आध्यात्मिकता में यह असम्भव है क्योंकि आध्यात्मिकता का प्रथम नियम कहता है 'वत्स अन्तर्रात्मा के अलावा तुम्हें दण्ड या इनाम देने वाला कोई नहीं है। यदि भगवान है और उन्हें पाने को लालायित हो तो वह तुम्हारे दिल में विराजमान है। किसी स्वर्ग में नहीं।' ईसाई धर्म में भी यही बात स्वीकार की गयी है। जब आप अपने भीतर ईश्वर को तलाश करेंगे, तो वह किसी धर्म के कपोल कल्पित दण्ड नायक देवता से भी कहीं बदतर नजर आयेगा। मैं अपने निजी अनुभव से कह सकता हूँ कि भीतर का भगवान किसी धर्म द्वारा रचित भगवान से कई गुणा बदतर है क्योंकि झूठ बोलना तथा छल कपट करना आसान है। ऐसे वायदे करना भी आसान हैं जिन्हें हम निभाना नहीं चाहते। बाहरी जगत में दिखायी देने वाली आकृति या क्रॉस एक प्रतीक मात्र है लेकिन जब ईश्वर आपके हृदय में मौजूद हो और जिसका आपको ऐहसास हो उसके साथ छल-कपट करना स्वयं को धोखा देना होगा। अब आप बताइये कि दण्ड कौन देता है? हम स्वयं को ही दण्डित कर रहे हैं। हमें इनाम कौन दे रहा है? हम स्वयं।

इस प्रकार विकास का दायित्व केवल हमारे ऊपर है। यह न केवल दुष्कर बल्कि भयावह दायित्व है क्योंकि अब हमारे अन्दर से आवाज आती है 'मेरे दोस्त, यदि उसकी कृपा पाना चाहते हो तो तुम्हें स्वयं को बदलना होगा। तुम जिस तरह चल रहे हो, उसके चलते तो कभी उम्मीद मत करो कि भगवान तुम्हारा वकील बनकर सामने आयेगा।'

आध्यात्मिकता का इतिहास मानव विकास के इतिहास से गुजर कर आया है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि आध्यात्मिकता ज्ञान से पुरानी है। ज्ञान का इतिहास मुश्किल से 2000 वर्ष पुराना है। यूनानी दार्शनिकों का इतिहास कितना पुराना होगा? मेरा तात्पर्य है कि उनकी गणना शताब्दियों में की जा सकती है। यदि आप पूरब में जायें, तो भी इसकी गणना पाँच, दस या सैकड़ों शताब्दियों में की जा सकती है। इससे कोई फर्क नहीं पड़ता क्योंकि इससे पहले भी ऐसे लोग पैदा होते रहे हैं जिन्होंने भगवान के बारे में प्रवचन दिये हैं गुणगान किया है और गीत काव्य लिखे हैं जो किंवदन्तियों के रूप में युग दर युग नयी पीढ़ियों को विरासत में मिलते रहे हैं। वे लोग ईश्वर के ज्ञाता नहीं बल्कि स्वप्न दृष्टा और मनीषि थे।

मानव-विकास के इतिहास के किसी अवस्था में जिज्ञासा और अनुभूति के बीच में एक खालीपन आ गया और दुर्भाग्यवश आध्यात्मिकता और धर्म ने दो अलग-अलग रास्ते अख्तियार कर लिये। एक रास्ता बुद्धि और दर्शन का था तो दूसरा रास्ता हृदय आध्यात्मिकता और रहस्यवाद का।

मेरे विचार में आज हमारे सामने जो समस्या मौजूद है उसकी प्रस्तावना में इतना कहना पर्याप्त होगा। अब मैं आगे की बातचीत अपने मालिक और इनके द्वारा दी गयी शिक्षा तक सीमित रखना चाहूँगा। जैसा कि मैंने कहा उनका पहला सबक यह था 'ईश्वर को जाना नहीं जा सकता बल्कि महसूस किया जा सकता है।' जब हम किसी चीज के बारे में जानने का प्रयास करते हैं तो हमारे सामने किसी वस्तु या आकृति की मौजूदगी आवश्यक है। मेरे विचार से आप सब इससे सहमत होंगे। ईश्वर की उपस्थिति का आभास कैसे करें? मेरे मालिक ने कहा कि हमारे पास कई वस्तुयें हैं जो पूजनीय हो सकती हैं। यहाँ तक कि आप जिस लड़की से प्यार करते हैं वह भी आपके लिये आराध्य हो सकती है। कभी-कभी तो हमें लगता है कि वे देवी स्वरूपा हैं। लेकिन जिन देवियों की हम चर्चा कर रहे हैं वे भिन्न प्रकार की हैं और जैसा कि पूर्वी-दर्शन में कहा जाता है, सृष्टि की एक आधारभूत इकाई हैं जिसका स्वयं में कोई अस्तित्व नहीं है, लेकिन जो जगत की सृष्टि का कारण बनी हुयी है।

इस बात को समझने में मुझे मुश्किल आयी। शून्य में से सृजन कैसे हो सकता है? जिसमें अपनी कोई शक्ति न हो, वह हमें ब्रह्माण्ड की अपार शक्ति कैसे दे सकती है? वह मूल तत्व, जिसमें कोई ज्ञान न हो, स्वयं ज्ञान का स्रोत कैसे हो सकता है?

मेरे मालिक ने कहा था, 'यह सम्भव है। ऐसा हुआ है, आगे भी होता रहेगा।' उन्होंने मुझे गणित के शून्य का सीधा सा उदाहरण दिया। एक तो एक ही होता है, लेकिन जब हम एक के आगे एक शून्य लगा दें तो उसका मूल्य दस गुणा हो जाता है। शून्य का स्वयं में कोई मूल्य नहीं होता लेकिन वह दूसरे को मूल्यवान बना देता है। इस बात का मेरे ऊपर इतना असर हुआ मानो हर चीज़ से परदा हट गया हो। इस प्रकार मेरे मन ने स्वीकार कर लिया कि शून्य में से बहुत कुछ प्रकट हो सकता है।

आध्यात्मिकता की मेरी तलाश में यह पहला प्रश्न था। दूसरा प्रश्न आया कि ऐसे कैसे किया जाये? क्योंकि इनसे पहले मैं विश्व के कई दर्शन शास्त्रों का अध्ययन कर चुका था। मैं हठयोग प्राणायाम का अभ्यास किया करता था और इसकी वजह से मैंने अपना काफी नुकसान भी कर लिया था। यदि मैंने हठयोग का यौगिक अभ्यास, जो केवल शारीरिक और आत्मिक अभ्यास है, जारी रखा होता तो मैं सम्भवतः पागल हो गया होता। इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं है, ऐसा मैंने महसूस किया है। मैं सनकी सा हो रहा था।

ऐसे मुकाम पर मैं मालिक के सम्पर्क में आया। एक ही स्पर्श में उन्होंने मानो मेरे सारे घाव भर दिये। यह स्पर्श शारीरिक या मानसिक नहीं था, बल्कि एक

आध्यात्मिक स्पर्श था जिसमें ज्ञान तथा तर्क की संवेदनशीलता नहीं थी बल्कि ऊँचे दर्जे की संवेदनशीलता थी। मेरे विचार से अपने किसी नाटक में होरोशियो ने कहा 'स्वर्ग और पृथ्वी पर कई ऐसी चीजें हैं जिनकी आपके दर्शन शास्त्र में कल्पना नहीं की गयी है।' मैंने पूछा 'मालिक मैं क्या करूँ' उन्होंने कहा 'बहुत आसान है।' यह सुनकर मुझे धक्का सा लगा कि जिस चीज को पाने के लिये दुनिया के इतिहास में लाखों लोग संघर्ष कर रहे हैं और शोध में अपना जीवन बर्बाद कर रहे हैं वह इतनी आसान हो सकती है। मैंने कहा 'सच'' (बाबू जी की तस्वीर की ओर इशारा कर रहे हैं) आप इन्हें राजसी अन्दाज में देख रहे हैं मानों कोई सम्राट हों। लेकिन अपने घर में वह छोटे से, दुबले पतले और काफी वृद्ध व्यक्ति थे। जब मैं उनसे मिला उस समय वह पैंसठ वर्ष की आयु पार कर चुके थे और किसी भी दृष्टि से इतने सक्षम नहीं लग रहे थे कि मेरे जैसे व्यक्ति को अचानक से संतुष्ट कर देंगे।

जैसा मैंने आपको बताया, मेरे ऊपर पाश्चात्य जगत, पाश्चात्य दर्शन, पाश्चात्य संस्कृति और पाश्चात्य सोच का कुछ प्रभाव था। एक बार मेरे मालिक ने मजाकिया अंदाज में हँसते हुये कहा 'तुम अपने पाश्चात्य भ्रष्टाचार में बहुत आगे निकल गये हो।' उन्होंने कहा 'पाश्चात्य सोच और पाश्चात्य दर्शन ने तुम्हारा दिमाग भ्रष्ट कर रखा है।' इसका कारण यह नहीं था कि उन्होंने कोई गलत या अधार्मिक शिक्षा दी, लेकिन मेरे मालिक के अनुसार उन्होंने ऐसा दिखावा करके भारी भूल की है कि भगवान को पाना बहुत कठिन है, जबकि यह बहुत ही आसान है।

पाश्चात्य शिक्षा, उनके विचारों की उड़ान, उनके शोध की व्यापकता और दर्शन की खूबसूरती के बारे में मेरे मालिक की शिकायत थी। उनकी दर्शन की गहराई तथा जिस मानसिक जुझारूपन के साथ वे लोग विषयों का अध्ययन करते हैं उसके बारे में कोई संदेह नहीं है। उन्होंने कहा 'ये सब प्रशंसनीय है। भारत में पश्चिम की इस उपलब्धि की कोई शानी नहीं है। उनकी विश्लेषण शक्ति, विश्लेषणात्मक कुशाग्रता की कोई बराबरी नहीं कर सकता। विचारों की गूढ़ता में उनका जवाब नहीं और न ही हम उनके द्वारा पढ़े गये विषयों की व्यापकता, उनके शोध की मौलिकता, शोध उपकरण ईजाद करने की योग्यता में उनकी बराबरी कर सकते हैं। इन सब पर प्रश्नचिन्ह नहीं लगाया जा सकता है। 'बौद्धिक ज्ञान, विज्ञान की प्रगति और प्रौद्योगिकी की सम्पूर्णता में पाश्चात्य जगत के योगदान पर कभी सवालिया निशान नहीं लगाया जा सकता।

तब मैंने कहा, 'मेरे मालिक आप किस पाश्चात्य भ्रष्टाचार की बात कर रहे हैं?'' तब उन्होंने मुझे ईसा मसीह का वह कथन जो मैंने आपको पहले बताया, और

उनकी उदारता के बारे में बताया, जब उन्होंने कहा था 'प्रभु उन्हें माफ कर देना क्योंकि ये नहीं जानते कि ये क्या कर रहे हैं।' यह वह सभ्यता है जो अपने और शायद विश्व के एक महान सपूत को अपनी धर्मान्धता, अन्धविश्वास और अज्ञानता के वशीभूत होकर इसीलिये शूली पर चढ़ रही है क्योंकि उसका दावा था कि वह प्रभु की संतान है। क्या तुम समझते हो, मानवता ने अपने साथ कितना बड़ा अपराध किया है? सम्भवतः ईसाई धर्म के अनुयायी सोचते होंगे कि ईसा मसीह का सम्बन्ध केवल ईसाइयत से है। लेकिन संसार के किसी भी महान सपूत को धर्म, राष्ट्र और भूगोल की सीमाओं के भीतर बाँधकर नहीं रखा जा सकता। वो तो समस्त मानवता का होता है। अतः हिन्दुओं को संसार के एक महान सपूत की अभद्र, विवेकहीन तथा अज्ञानतापूर्ण हत्या की आलोचना और भर्त्सना करने का पूरा अधिकार है।

मेरे मालिक ने कहा 'यह पाश्चात्य जगत का अपराध है अपने वैज्ञानिकों, गणितज्ञों एवं भूगोलविदों को तो वे नोबेल पुरस्कार देते हैं लेकिन उन्होंने ईसा मसीह को नहीं दिया' यूनानी दार्शनिक सुकरात को उन्होंने क्या दिया? उसे जहर दिया गया। एक व्यक्ति के आन्तरिक दिव्यता के दावे के विरोध में उठा बुद्धि और तर्क से युक्त यह सवाल पूरी मानवता को ऐसे बाँधे हुये है जैसे आपके गले में पड़े हुए मोतियों को एक धागा पिरोये हुये है।

मेरे मालिक ने कहा 'यह वह चीज है जिससे हम सौभाग्यवश बचते रहे हैं।' बौद्धिकता हाँ यह बहुत वांछनीय है। यह आवश्यक है। शोध? जी हां। विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी? निस्संदेह यह बहुत जरूरी है। भारत ने विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी को नकार कर एक बड़ी व भयावह भूल की है। इसीलिये आज जो देश इस दुनिया में महानतम देश होता, इस दुनिया का निर्धनतम देश है। पहले हालात इससे विपरीत थे। भारतवासियों ने विज्ञान प्रौद्योगिकी, भौतिकता की खुलकर खिलाफत की और ध्यान का बहाना करके पेड़ों के नीचे निठल्ले बैठे रहते थे मानों हर व्यक्ति ऋषि बन जायेगा और मानवीय प्रवृत्तियों और उपलब्धियों के लिये भगवान को कोसते रहते थे। मेरे मालिक ने कहा, **'पाश्चात्य जगत ने विज्ञान और प्रौद्योगिकी के वास्ते भगवान को तिलांज्जलि देकर भूल की। हमने अनजाने भगवान के वास्ते विज्ञान और प्रौद्योगिकी को तिलांज्जलि देकर उनसे भी कहीं बड़ी भूल की है।'**

आज एक चीज जो हमें बाँधे हुये है और जिससे वशीभूत होकर आप यहाँ एकत्र हुए हैं वह है, इन दुखःद भूलों को स्वीकार करना/पहचानना। यह मेरे मालिक की सबसे बड़ी शिक्षा है। उन्होंने कहा 'जीवन में पक्षी के दो पंखों की भाँति संतुलन

होना चाहिए। हर व्यक्ति का आन्तरिक आध्यात्मिक जीवन और बाहरी वैज्ञानिकता या बौद्धिक जीवन होता है तथा दोनों की अवहेलना नहीं करनी चाहिये बल्कि दोनों की ओर बराबर ध्यान दिया जाना चाहिये।' तब मैं समझ पाया कि उनकी आलोचना वास्तव में आलोचना नहीं थी। वह तो केवल एक चेतावनी देकर मेरे और मेरे जैसे अन्य लोगों के जहन में यह बात उतारने का प्रयास कर रहे थे कि भारत में उच्च शिक्षा का क्या लाभ है। देखिए यह (शिक्षा) आवश्यक है। लेकिन यह भी उतना ही आवश्यक है (हृदय की ओर इशारा करते हुये)।

मनुष्य के लिए जिस प्रकार खाना पीना जरूरी है, इसी तरह श्वास लेना भी जरूरी है। भौतिक खानपान का स्थान हमारी श्वासें नहीं ले सकतीं। वस्तुतः यह हम भली भाँति जानते हैं कि आदमी ठोस आहार के बिना यदि जरूरत हो तो सौ दो सौ दिन तक जीवित रह सकता है। बिना पानी के कुछ दिनों तक जीवित रह सकता है। लेकिन श्वास लिये बिना आप कितनी देर तक जीवित रह सकते हैं? कुछेक मिनटों से ज्यादा नहीं। फिर मेरे मालिक ने कहा 'आपके विचार में आप भगवान के बिना कितने दिन जी सकते हैं? बिल्कुल भी नहीं।' जैसे जैसे चीजें शून्य होती चली जाती हैं। वैसे -वैसे उसके प्रति हमारी जरूरतें बढ़ती चली जाती हैं। लेकिन आज हम स्थूल चीजों, भौतिक चीजों को याद कर रहे हैं और हमारे अस्तित्व के स्रोत, जीवन स्रोत अन्तरात्मा को भूलते जा रहे हैं हमारे भीतर जो विराजमान है वही अन्तरात्मा है। इसीलिये आध्यात्मिकता कहती है कि भगवान की तलाश वास्तव में आपकी अन्तरात्मा की तलाश है।

मेरे मालिक का संदेश है कि 'भीतर झाँको, तुम जिसे भगवान समझते हो उसे अपने भीतर तलाशने की कोशिश करो। अन्ततोगत्वा वह आपको अपनी आत्मा के रूप में मिलेगा। लेकिन यह सोचने की भूल मत करो कि तुम जैसे आज हो वही अन्तरात्मा है। पूर्णतया विकसित होकर ही तुम अन्तरात्मा को पा सकोगे। ईश्वर का अस्तित्व है। ईश्वर के बिना आपका अस्तित्व सम्भव नहीं। लेकिन आपमें और ईश्वर के बीच एक विशाल अन्तर है। अपने भीतर की स्थूलता से छुटकारा पाओ। तुम्हें अपने भीतर की स्थूलता से छुटकारा पाकर अपने अस्तित्व को सूक्ष्मतर बनाना होगा, तब जाकर आप पायेंगे कि आपके भीतर केवल आप ही विराजमान हैं अन्य कुछ भी नहीं। इसीलिये सभी रहस्यवादी पन्थों ने इसे आत्मसाक्षात्कार का नाम दिया है ईश्वर से साक्षात्कार ही आत्मसाक्षात्कार है। हिन्दू संस्कृति के महान ग्रन्थ गीता में इसी सत्य को प्रकाशित करते हुये कहा गया है कि, 'ईश्वर प्राणी मात्र के हृदय में वास करता है चाहे वह मक्खी हो, मच्छर हो, पशु हो, पक्षी हो

या मनुष्य क्योंकि उनके बिना किसी का अस्तित्व सम्भव नहीं।' अतः यह कोई चमत्कार नहीं है और न ही कोई रहस्य कि जब हम ईश्वर की खोज करते हैं तो हमारा स्वयं के साथ परिचय हो जाता है। हर व्यक्ति के साथ ऐसा ही होता है।

हमारी तलाश का केन्द्र बिन्दु भी यही है। बचपन से लेकर मृत्यु तक मानवीय आत्मा की यही पीड़ा है। जब कोई बच्चा खो जाता है और कहता है 'मैं खो गया हूँ' तो इसका तात्पर्य है कि वह शारीरिक रूप से खो गया है। उसकी माता लापता है अथवा उसका पिता लापता है। लेकिन जब कोई वयस्क व्यक्ति खो जाता है तो वह कहाँ होता है? उसका अपने आंतरिक जीवन स्रोत, अस्तित्व स्रोत, सत्य स्रोत की दिव्यता से सम्पर्क टूट जाता है। इसीलिये हम उन्हें भटकती आत्मा कहकर पुकारते हैं। भटकती आत्मा का तात्पर्य किसी आपराधिक या पतित आत्मा से नहीं है बल्कि इसका तात्पर्य यह है कि मेरी पहचान 'वास्तविक पहचान' से इतनी भिन्न हो गयी है कि मैं स्वयं को भटका हुआ महसूस करने लगता हूँ। इसका चरम रूप मनोवैज्ञानिक अस्पतालों और आत्महत्याओं के रूप में दिखायी देता है। कमोवेश यही रूप हमारी नशाखोरी की आदतों में पाया जाता है, जिनके द्वारा हम स्वयं को भूलने का प्रयास करते हैं। अतः समय आ गया है कि हम जागें और कहें, 'मेरे दोस्त, तुम्हारे साथ कुछ गड़बड़ है।' यदि आप स्वयं के अलावा किसी बाहरी चीज से भय खाते हैं तो कोई खास बात नहीं। लेकिन यदि आप स्वयं से भयभीत हैं और अपने बारे में जानना नहीं चाहते हैं तो आप जरूर खोये हुए हैं।

आज बहुत से व्यक्तियों के समाने ऐसी स्थिति है। वास्तव में मेरे मालिक इतने दबंग थे कि उन्होंने हम सबके सामने यह बात कहने का साहस किया, केवल स्थिति अलग अलग हो सकती है। मुझे लगता है कि इसी का सार स्नोव्हाइट की कहानी में देखने को मिलता है। इस कहानी में एक खूबसूरत महिला हर रोज स्वयं को दर्पण में निहारते हुये पूछती है, 'इस देश में सबसे खूबसूरत कौन है'' उसे स्वयं पर संदेह है। यही स्थिति हम सबके साथ है। कभी कभी तो दुर्भाग्यवश हमें स्वयं पर हमेशा संदेह रहता है।

यदि कोई मुझे दो टन भारी डिब्बा दे तो मुझे संदेह होगा कि पता नहीं मैं इसे उठा पाऊँगा या नहीं। मैं इस प्रकार के संदेह की बात नहीं कर रहा हूँ। इसमें तो संदेह है ही नहीं। यह तो मेरी किसी कार्य को करने की क्षमता का सवाल है। लेकिन जब हम अपनी विचारधारा और कर्म से स्वयं को पीड़ा पहुँचाते हैं जब हमारी आत्मा कुछ कहती है और बुद्धि कुछ और तब ऐसी स्थिति आती है, जब हम कह सकते हैं कि 'वह दो दिशाओं में बँटता जा रहा है।' किसके द्वारा?' स्वयं के द्वारा।

मेरे अन्तरमन को बाहरी अस्तित्व के साथ संतुलन में लाना बहुत जरूरी है क्योंकि इसके बिना हमारे अस्तित्व की दुर्गति हो जायेगी। जब यह संतुलन कायम हो जाता है, फिर यह बात महत्वहीन हो जाती है कि आप गरीब हैं या अमीर खूबसूरत हैं या नहीं, शक्ति सम्पन्न हैं या नहीं। इतिहास गवाह है कि ऐसे व्यक्तियों का संसार स्वेच्छा से अनुसरण करता है। उन्हें नोबल पुरस्कार नहीं मिलता। उनके पास कालेज युनिवर्सिटी की डिग्रियाँ नहीं होतीं लेकिन उन्हें लोगों का प्यार मिलता है और इसी की उन्हें चाहत होती है।

अब इस पर और विस्तारपूर्वक चर्चा करने की जरूरत नहीं है। ईसा मसीह का जीवन ही ले लीजिये जिनसे आप सभी परिचित हैं। वह कौन थे? एक बढ़ई। कोई भी अन्दाजा नहीं लगा सकता कि उन्होंने कितना कुछ सीखा। कोई नहीं जानता कि उनके पास धन था या नहीं। लेकिन जब उन्होंने उपदेश देना शुरू किया तो लोग उनके पीछे चल पड़े। मछली पकड़ रहे दो भाइयों से उन्होंने कहा, 'सब कुछ छोड़ो और मेरे साथ चलो।' और वे उनके साथ चल पड़े। पूरा समुदाय उनका अनुसरण करने लगा। उन्होंने जो भी चमत्कार किये उन्हें भूल जाइये। ये सब बच्चों की कहानियाँ हैं। उनका चमत्कार तो यह था कि एक अशिक्षित गरीब बढ़ई का हजारों लोग अनुसरण करते थे, उनकी बात को श्रद्धापूर्वक सुनते थे और उस समय के रोमन साम्राज्य की ताकत से भिड़ गये थे। इसका कारण यह नहीं था कि उन्होंने धन या सत्ता के साथ अपील की या उन्होंने बुद्धि का इस्तेमाल किया था क्योंकि वह तो सामान्य सी कहानियाँ कहा करते थे। यदि उन कहानियों को पढ़ें तो लगता है कि इनमें विशेष बात क्या है। लेकिन विशेष बात यह थी कि वह जब बोलते थे तो दिमाग से नहीं बल्कि दिल से बोलते थे।

अब हम 21वीं सदी में योग के बारे में बात करेंगे जो मेरा अन्तिम मुद्दा है। आज आधुनिक जगत में कम से कम पाश्चात्य जगत में सब चीजें उपलब्ध हैं लेकिन जिस चीज का अत्यन्त अभाव है वह है दिल। मेरे कहने का अर्थ यह है कि किसी को यह जानने की जरूरत महसूस नहीं होती कि क्या गलत है क्या सही। इन सबका जवाब हृदय में उपलब्ध है। प्यार करना और बदले में प्यार पाना आपके हृदय की ही आवश्यकता तो है।

ये तो हुई नितान्त मानवीय रिश्ते की बात। आज के यूरोप और अमेरिका के आपके आधुनिक हाईटेक समाज में किसी सबूत की जरूरत नहीं पड़ती। या यूँ कहें कि हृदय विहीन जीवन वास्तव में है ही नहीं। आपके पास ऐशोआराम का हर सामान मौजूद है बँगला है, गाड़ी है, हवाई जहाज है और नौकरियाँ हैं यदि मैं पूछूँ

कि आपके पास किस चीज का अभाव है तो आप तुरन्त जवाब देंगे 'कुछ नहीं' मैं कहूँगा, 'यह (दिल की ओर इशारा करते हुये) तो गायब है।'

मेरे मालिक कहा करते थे कि जब लोग उन्हें खाने के लिये आमंत्रित करते थे। तो कुछ का निमंत्रण स्वीकार करते थे और कुछ का नहीं। वह धनी लोगों, प्रोफेसरों, राजनीतिज्ञों, सरकारी अधिकारियों के यहाँ मेहमान बन के जाते, तो बहुत ही साधारण व्यक्तियों के यहाँ भी जाते थे। वह निमंत्रण हमेशा स्वीकार कर लेते थे। लेकिन जो कुछ उन्हें पेश किया जाता था उसे कभी नहीं छूते थे। इसीलिये एक बार मैंने उनसे पूछा ' जो कुछ आपके सामने रखा जाता है। उसे आप स्वीकार क्यों नहीं करते'' उन्होंने फुसफुसाते हुए कहा 'मुझे जो निमंत्रण मिलते हैं वे तीन प्रकार के होते हैं। एक श्रेणी में वे लोग आते हैं जो यह दिखावा करना चाहते हैं कि वे इतने महत्वपूर्ण हैं कि उन्होंने मुझे अपने घर में बुला रखा है। ऐसा व्यक्ति खाने की परवाह नहीं करता। वह साधन सम्पन्न व्यक्ति है। वह सोचता है कि वह जो कुछ देगा उसे मैं स्वतः स्वीकार कर लूँगा। दूसरा व्यक्ति पहले वाले से कुछ बेहतर होता है। वह बेचारा खर्च वहन ही नहीं कर सकता क्योंकि जहाँ मैं जाता हूँ बीसियों लोग मेरे साथ हो लेते हैं लेकिन बेचारा वह मुझे दूसरे की देखा देखी में बुला लेता है।' मैंने पूछा ' और तीसरी तरह का?'' उन्होंने कहा, 'यह वे लोग होते हैं जो वास्तव में मुझे चाहते हैं औरे मेरे लिये जान छिड़कते हैं।' ऐसे व्यक्तियों का खाना मैं खाता हूँ।

देखिये जब दिल का समावेश होता है तो कितना फर्क पड़ता है। कई बार मैं देखता था कि किसी खास व्यक्ति से वह कुछ भी खा लेते थे चाहे वह चीज उन्हें खाना भी नहीं चाहिये। जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने कहा 'क्योंकि खाने में उस व्यक्ति का दिल मिला हुआ था।' कभी कभी वह मेरी पत्नी से कहा करते थे जब खाना पकाओ तो नमक काली मिर्च, लाल मिर्च और टमाटर आदि डालना भूल जाया करो, बस उसमें अपना दिल मिला दिया करो। यदि खाने में दिल मिला हो तो खाना बहुत स्वादिष्ट हो जाता है अन्यथा वह धूल और राख के समान होता है, जैसा कि बाइबल में कई स्थानों पर वर्णन आता है।

दिल पति और पत्नी अथवा प्रेमियों के बीच की ही चीज नहीं है। जहाँ भी जायें, दिल हमेशा आपके साथ रहना चाहिये। यदि आप रसोई में हैं तो यह आपके साथ रहना चाहिये। आप कम्प्यूटर प्रोग्रामर हैं तो भी दिल का आपके पास रहना जरूरी है। यदि आप प्रेमी हैं तब तो वहाँ दिल की ही जरूरत होती है। दुर्भाग्यपूर्ण आधुनिक समाज में खासकर, प्रेम के मामलों में दिल को छोड़कर हर चीज की भूमिका रहती

है। इसीलिये समाज में इतने कष्ट हैं इतने तलाक हो रहे हैं और इतने बच्चे माँ बाप से अलग हो रहे हैं। हम वकीलों, मनोवैज्ञानिकों, पादरियों से सलाह ले रहे हैं जबकि हमारा सच्चा सलाहकार, जिस पर हमें विश्वास करके राय लेनी चाहिए, हमारी अन्तर्रात्मा के भीतर बैठा है। अतः हम उसे चेतना या अन्तर्रात्मा की आवाज कहकर भी पुकारते हैं जिसे हमने शान्त कर दिया है क्योंकि वह हमेशा टेढ़े जवाब देता है। यदि आप प्रसन्नचित्त, संतुलित अपने माहौल के अनुकूल और शारीरिक तथा मानसिक ही नहीं बल्कि दिलोदिमाग और आत्मिक ज्ञान से तन्दुरुस्त बने रहना चाहते हैं तो 'इस (दिल की ओर इशारा करते हुए) अन्तर्रात्मा को फिर से बोलने दीजिये।'

अतः भाइयों और बहनों, मेरे समाज, आपके समाज दुनिया भर के समाजों का भविष्य छोटी-छोटी चीजों पर टिका हुआ है। मेरे मालिक कहा करते थे, 'यह मुठ्ठी भर सामान है। यह दिल है।' इसलिये मैं जोर देकर कहता हूँ कि अर्थशास्त्र, राजनीतिक विज्ञान, इतिहास आदि अन्य सभी चीजों को भूल जाइये। हाँ शिक्षा जगत में इनका अपना स्थान है लेकिन ज्ञान की वह शाखा जो अन्ततः मेरे हृदय (दिल) तक नहीं जाती, वह रेगिस्तान में घूम रहे पानी विहीन व्यक्ति के समान है। आपमें से कई लोग पश्चिम में भोजन या पानी का मूल्य नहीं समझते, लेकिन यदि आप मध्यपूर्व तथा सुदूर पूर्व में हमारे किसी देश में आयें या यदि आपको किसी रेगिस्तान में चौबीस घंटों तक भटक जाने का दुखद अनुभव हो तथा ऐसे में यदि आपको कोई ऐसा व्यक्ति मिल जाये और आपको पानी पिलाने से इनकार कर दे क्योंकि उसे पानी की स्वयं के लिए आवश्यकता हो तब आपका दिल वास्तव में रो पड़ेगा। 'क्या आदमी का स्तर इतना गिर गया है कि अपनी स्वयं की मौत के भय के कारण वह मुझे एक घूँट पानी तक नहीं दे सकता।' हर मरणासन्न व्यक्ति यही पूछता है। एक धनी व्यक्ति, जिसने ऊँट पर दो बोतल पानी रखा है उस प्यासे व्यक्ति का मजाक उड़ाता है। वह कहता है 'मूर्ख यदि तुम्हें अपने साथ पानी लाने की अकल नहीं है तो तुम यह उम्मीद कैसे कर सकते हो कि मैं अपना पानी तुम्हें दे दूँगा।'

हमारी सभ्यताओं की टकराहट में यह बात भली भाँति उजागर होती है। आये दिन अखबारों में पढ़ने को मिलता है कि एक देश ने पनीर की कीमत ऊँची रखने के लिए पाँच हजार टन पनीर नष्ट कर दिया, माँस की कीमत स्थिर रखने के लिये दूसरे देश ने पाँच हजार मवेशियों को हलाल कर दिया। संसार में अरबों लोग मर रहे हैं लेकिन इन लोगों और उनकी सरकारों के जहन में यह बात नहीं आती कि यह पनीर तथा मवेशियाँ उन लोगों को भेज दें ताकि वे अपना पेट भर लें। हमारी

सर्वसम्पन्न सभ्यता, हमारा जीवन स्तर ही आज हमारा भगवान है। ऐसा कहने के लिये मुझे क्षमा करें, लेकिन वास्तव में मुझे यह कहते हुए पीड़ा हो रही है कि आज न ईसा मसीह हैं न कृष्ण हैं, केवल डालर, मार्क और फ्रैंक ही हमारे भगवान हैं। ऐसे में आप कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि दिल आपका साथ देगा।

आज रास्ते में गिर पड़े व्यक्ति को आदमी नहीं उठाता क्योंकि उसे डर रहता है कि कहीं कोई आफत न आ जाये। यदि आप उससे सवाल करें तो वह कहेगा, 'नहीं मैं उसे उठाने से नहीं डरता लेकिन एक बार उठा लूँ तो फिर मैं उसका क्या करूँगा? मुझे उसे अपने घर ले जाना पड़ेगा खाना खिलाना पड़ेगा और शायद हमेशा के लिए अपने पास रखना पड़े। ईसा मसीह ने जब कहा था 'मछली का जाल छोड़ो और मेरे साथ चलो' तब उन्होंने तो ऐसा नहीं सोचा था उनके पास तो कुछ भी नहीं था अपने लिए मुट्ठी भर छुआरे और गिलास भर पानी भी नहीं था। फिर भी उनके पास बहादुरी और साहस था और पूरे जन समुदाय को साथ लेकर चलने का विश्वास था। क्या **'कुछ नहीं'** में से **'कुछ'** उत्पन्न हो सकता है' जी हाँ ऐसा हुआ। दो डबल रोटी और पाँच मच्छियों से इतने बड़े जन समुदाय का पेट भर गया। इसमें भी बड़ा चमत्कार था कंकाल में प्राण फूँकना। ऐसे व्यक्तियों का जीवन तथा मृत्यु पर भी नियंत्रण होता है। हम ब्रेड और बटर जैसी मामूली चीजों पर चर्चा कर रहे हैं। यह हमारी पाश्चात्य संस्कृति, शिक्षा, **स्वर्ण अक्षरों** में लिखित हाईटेक समाजों और **जीवन स्तर** की त्रासदी है। इसका कारण यह नहीं है कि दुनिया के गरीब मर रहे हैं। मरने दीजिये। क्या आपको धक्का लगा? जरूरी नहीं। क्योंकि गरीबों से भी अधिक महत्वपूर्ण कोई मर रहा है। आप स्वयं मर रहे हैं और यदि आप मरते हैं तो आपकी मदद कौन करेगा?

आध्यात्मिकता कहती है, 'अब भी समय है जब तक आप जीवित हैं, जब तक आप उठकर चल सकते हैं भगवान के लिए अब भी हृदय की शरण में चले आइये। जीवन के जिस पहलू को आपके अपने अस्तित्व तथा अन्तरमन से पूर्णतः अलग करके रखा हुआ है उसका अध्ययन कर अभ्यास शुरू कर दीजिये। 'आध्यात्मिकता यह नहीं कहती कि शिक्षा अनावश्यक है पैसा अनावश्यक है अच्छा जीवन स्तर आवश्यक है। यह ऐसा नहीं कहती। स्वेज नहर से परले संसार में तो ऐसा नहीं है यह तो केवल इतना कहती है पुनः ईसाई परम्परा से उद्धृत करते हुए, "All this and heaven too" जिसका सरल भावार्थ यह है कि हमें लोक और परलोक दोनों को सँवारना है। आप जो चाहें, माँगने के लिए स्वतन्त्र हैं। लेकिन इसे मत भूलिये। धनी होना चाहते हैं? आगे बढ़ें लेकिन दिल से। शक्तिशाली होना चाहते

हैं? जरूर। इसे कोई नहीं नकार सकता बशर्ते कि आपमें क्षमता हो, लेकिन दिल से। किसी भी चीज की चाहत रखें लेकिन दिल से।

भाइयों और बहनों, यह मेरे मालिक का संदेश है और मैं इसका एक तुच्छ प्रतिपादक हूँ क्योंकि जितना समय मुझे यह कहने में लगा मेरे मालिक ने यही बात मात्र तीन शब्दों में कह दी होती। पूर्व में हमारे यहाँ लम्बे, लाग लपेट वाले भाषणों, तर्क वितर्क और तार्किकता की परम्परायें नहीं हैं बल्कि बीजारोपण करके उसे फलने फूलने दिया जाता है। जब कोई व्यक्ति आकर मालिक से पूछता 'मालिक पहले कौन आया, पेड़ या बीज'' तो वह वास्तव में बहुत खुश होते और हँसकर कहते 'भगवान इतने नासमझ थोड़े ही हैं कि बीज बनाकर उगाने में सक्षम होते हुये भी पेड़ की रचना करके उसे लिये फिरते रहते।'

यह शिक्षा का सही तरीका है। मालिक हमारे दिल में बीजारोपण करते हैं, दिमाग में नहीं। इसके लिए अन्य व्यवस्थायें हैं जब यह बीज जड़ पकड़ कर फलने फूलने लगता है तब हमारा जीवन नये सिरे से हमारे हाथ में आ जाता है और हम पूरे उत्साह के साथ जीवन यापन कर सकते हैं।

मैं प्रार्थना करता हूँ कि आपको रंग, समाज में सापेक्षित अहमियत, शिक्षा और धर्म से जुड़े सभी पूर्वाग्रहों से निज़ात पाने का अवसर मिले क्योंकि जैसा कि मेरे मालिक ने एक बार कहा था और आप सब भी जानते होंगे, अन्य युद्धों की तुलना में धार्मिक युद्धों में अधिक लोग मरे हैं। मैं यह भाषण अपने मालिक के अन्तिम कथन के साथ सम्पन्न करना चाहूँगा, 'सभी धर्म कहते हैं कि भगवान एक ही हो सकता है और एक ही है। लेकिन प्रत्येक कहता है कि मेरा भगवान असली है तुम्हारा भगवान नकली है।' यह कैसे सम्भव है? उन्होंने एक बहुत महान बात कही जो मैंने उनसे सुनी है, 'धर्म फूट डालते हैं'।

हमें इसे नहीं भूलना चाहिये। यह किसी धर्म विशेष की आलोचना नहीं है, सभी धर्म फूट डालते हैं जब हम दोनों इस बात से सहमत हैं कि भगवान केवल एक ही हो सकता है तो, 'मेरा भगवान और तुम्हारा भगवान' कैसे सम्भव है। यदि कम से कम पाश्चात्य जगत में हम इतने समझदार इतने सुशिक्षित होते तो क्या हम बर्न या किसी दूसरी जगह एक गोल मेज सम्मेलन न कर लेते और हाथ मिलाकर कह देते, 'इन शताब्दियों में हम सभी मूर्ख बने रहे हैं। हम सभी सहमत हैं कि भगवान केवल एक ही हो सकता है। आपका भगवान मेरे भगवान से भिन्न नहीं हो सकता। नाम भिन्न भिन्न हैं। आइये, हम इसे फलाँ नाम से पुकारेंगे। हिब्रू, परम्परा में ऐसा हुआ है। भगवान को नाम रहित माना गया है। भगवान का कोई नाम, रूप या गुण

कैसे हो सकता है? वह कितना भी शक्तिशाली क्यों न हो, यदि वह शक्ति पर आश्रित है तो उससे भी कोई उच्चतर सत्ता होनी चाहिये। आधुनिकतम कम्प्यूटर भी गणित की बड़ी से बड़ी संख्या नहीं बता सकता। कोई भी संख्या लीजिये, उससे बड़ी संख्या मौजूद है। कोई एक संख्या ही क्यों? यदि भगवान के पास शक्ति है तो जरूरी बात है कि कोई और शक्ति भी मौजूद है X+XN, आदि -आदि।

भगवान शक्ति का स्रोत हो सकता है लेकिन वह स्वयं शक्ति नहीं पा सकता। वह ज्ञान का मालिक नहीं हो सकता हालाँकि समस्त ज्ञान का स्रोत वह है। अतः हम कहते हैं, 'धर्म को भी भूल जाइये' इसका तात्पर्य यही है कि भगवान का नाम, गुण और जन्म स्थान भूल जाइये। सभी इस बात से सहमत हैं कि दिव्य शक्तियाँ बार-बार, अलग-अलग स्थानों पर अवतरित होती हैं। एक जगह पर जो बुद्ध के रूप में आये, वही दूसरे स्थान पर दूसरे युग में ईसा मसीह बने। नाम, रूप और देश का ही अन्तर है, गुण का नहीं। आध्यात्मिकता कहती है यदि आप धर्म के साथ जाते हैं तो स्वयं को विभाजित करते हैं। यदि हृदय के साथ जायेंगे तो हम सब एक वृहत् परिवार में संघटित रहकर एक ईश्वर की पूजा करेंगे जो हम सब में व्याप्त है। उसी की उपस्थिति के कारण हम सब भाई बहन हैं।' आध्यात्मिकता का यही संदेश है और यही वायदा है। मेरे मालिक से एक अन्तिम उद्धरण, वह कहा करते थे 'पढ़ो और आनन्द लो, अनुसरण करो और अनुभव करो'। अतः हम आपको आमंत्रित करते हैं कि मालिक के बताये रास्ते का अनुसरण कीजिये और ईश्वर की उपस्थिति को अनुभव कीजिये। आपने मुझे धैर्यपूर्वक सुना, इसके लिए मैं आपको धन्यवाद देता हूँ। यदि मैंने कोई ऐसी बात कह दी हो जिससे आपकी भावनाओं या विश्वास को ठेस लगी हो तो मैं क्षमा चाहता हूँ।

कृपया यह उम्मीद न करें कि एक बार ध्यान करने से आपको कोई अनुभूति हो जायेगी। ध्यान की इस प्रणाली में हमें कुछ नहीं मिलता। इससे हमें अपने भीतर सिंचित संस्कारों को धीरे-धीरे छोड़ने में मदद मिलती है और हम इतने सूक्ष्म होते जाते हैं कि आंतरिक सूक्ष्मता और बाहरी सूक्ष्मता में कोई अन्तर नहीं रह जाता। तब हम कह सकते हैं 'यह है असली चीज।' अतः ध्यान के इस निमंत्रण को किसी उत्पाद के नमूने की भाँति जाँच अथवा परीक्षण न समझा जाये। मैं आशा करता हूँ कि आपको कुछ अनुभूति अवश्य होगी और आप अपनी मंजिल के ओर निकट पहुँच जायेंगे तथा आपको इस पथ पर अग्रसर होने की प्रेरणा मिलेगी।

धन्यवाद।

2
लोक वार्ता
नाइस, फ्रांस

23 जून, 1988

आप सभी को हार्दिक बधाई,

मुझे अपने मालिक श्री रामचन्द्र जी के साथ 1972 में यहाँ आने का सौभाग्य मिला था। एक अर्थ में वह यूरोप में मेरे कार्य की शुरुआत थी। आज शाम पुनः आप लोगों के बीच आकर मुझे खुशी हो रही है। उम्मीद करता हूँ कि मैं आपको अपने मालिक जो पहले यहाँ आये थे और उनके आध्यात्मिक अनुशासन के बारे में कुछ जानकारी दूँगा। साथ ही यह बताने का भी प्रयास करूँगा कि हम क्या करें, कैसे करें, क्या बनें और हमारा लक्ष्य क्या है।

मेरे मालिक जब पहली बार यहाँ पधारे थे तब उनकी आयु तेहत्तर वर्ष की थी। कद काठी के हिसाब से वह एक औसत भारतीय थे। आप में से कुछ ने नीचे लगे पोस्टरों में उनकी तस्वीर देखी होगी। वह बहुत ही सीधे सरल, निरहंकारी और ठेठ भारतीय व्यक्तित्व के धनी थे। ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे। स्वयं हँसकर कहते थे, मैं पढ़ा लिखा व्यक्ति नहीं हूँ। मेरे विचार से उन्होंने छठी कक्षा तक स्कूली शिक्षा पायी थी। वह उत्तर भारत में उत्तर प्रदेश राज्य के शाहजहाँपुर नामक अपने जन्म स्थान पर रहते थे। आप में से कुछेक को भारत के बारे में जानकारी होगी। यह बहुत पिछड़ा लेकिन राजनैतिक दृष्टि से बहुत अग्रणी राज्य है क्योंकि अब तक अधिकतर भारतीय नेता पण्डित जवाहर लाल नेहरू, इंदिरा गाँधी तथा राजीव गाँधी आदि उसी राज्य से थे। अन्यथा यह आर्थिक और सामाजिक दृष्टि से बहुत ही पिछड़ा हुआ राज्य है। जैसा कि मैंने कहा, वह ज्यादा पढ़े लिखे नहीं थे। 1974 में हमारी मुलाकात तक वह अपने राज्य के अलावा कहीं ज्यादा घूमते फिरते नहीं थे।

तथापि, वह इस दुनिया के विरले आध्यात्मिक व्यक्ति बने। 1964 में जब मेरी उनसे मुलाकात हुई तब वे पैंसठ वर्ष के अत्यन्त साधारण व्यक्ति थे। मैं स्वयं उनसे पहली बार मिलकर बहुत निराश हुआ था क्योंकि मैं यह उम्मीद लेकर गया था कि वहाँ एक सुव्यवस्थित बड़ा सा भवन होगा कोई मेरा स्वागत करेगा एक स्वागत टेबल होगा आदि-आदि। लेकिन वहाँ ऐसा कुछ नहीं था।

वह एक कमरे में सो रहे थे। वहाँ तो, 'आइये-स्वागत है' कहने वाला भी कोई

नहीं था। इसीलिये मैं सीधा गया और उनके जागने तक उनकी चारपाई के पास बैठा रहा। सच बताऊँ मैं स्वयं को कोस रहा था कि मैं यहाँ क्यों आया? मैं कोई तीन सौ किलोमीटर दूर से आया था और आप जानते हैं कि भारत में यह काफी लम्बी दूरी होती है। लेकिन जब वह जागे और मैंने उन्हें अपने बिस्तर पर बैठे हुए देखा, सौभाग्य से उस व्यक्तित्व के बारे में मेरी सम्पूर्ण अवधारणा में अजीब सा परिवर्तन आ गया। यह परिवर्तन दिल से आया क्योंकि जब मैंने दिमाग से उन्हें समझा तो वह बहुत औसत भारतीय नजर आये। उनके पास बात करने के लिए अधिक कुछ नहीं था न ही उनके पास अधिक कहने के लिए था। जब उन्होंने बोलना शुरू किया तो केवल अपने मालिक और उनसे प्राप्त आध्यात्मिक पंथ के बारे में ही बोले। मैंने उनसे यही बात सीखी उनके मालिक और उनकी पद्धति के बारे में बात करना, जो आज मेरा विषय है 'मेरे मालिक और उनकी पद्धति।'

मालिक बहुत ही औसत इंसान थे नाटी सी कद काठी कम पढ़े लिखे और सामाजिक प्रगति के लिहाज से शून्य। वास्तव में उनमें कोई खास बात नहीं थी जो आधुनिक युग में हममें से किसी को प्रभावित कर पाती। जैसा कि मैंने कहा मैं थोड़ा सा चिंतित था कि मैं उनसे मिलने क्यों गया। मैं वहाँ कुछेक घंटों के लिए गया था। लेकिन उन्होंने अपने मोहक अंदाज में किसी को कार में से मेरा बैग लाने भेज दिया और मैं, हालाँकि उनके पास दो घंटे ठहरने गया था शायद उस पहले दौरे में करीब हफ्ता भर रहा क्योंकि उनमें फूलों की खुशबू जैसा कुछ ऐसा आकर्षण था मानों जिसे सूँघने में भी बहुत कठिनाई होती हो। मेरे कहने का तात्पर्य इतने सर्वव्यापी कि मैं एक बार अन्दर गया तो बाहर नहीं आ पाया। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि मैं ऐसी बात कहूँ तो यूरोपवासी हसेंगे। लेकिन मैं आपको स्मरण करा दूँ कि, 'पहली नजर में प्यार' जैसी भी कोई चीज होती है। आपके पाश्चात्य समाज में तो यह स्वीकृत बात है कि आदमी पहली नजर में किसी पर फिदा हो जाता है। मुझे आशंका है कि जब मैंने पहली बार उन्हें देखा तो यूँ कहूँ उन्होंने मुझे देखा तो मुझे भी कुछ ऐसा ही हुआ। जब वह दीवार की तरफ मुँह करके सो रहे थे तब उनके बारे में मेरी राय बहुत घटिया थी। मानों उनकी आँखों में सब कुछ समाया हुआ था। तभी मुझे वह पुरानी कहावत याद आयी कि 'आँखे आत्मा का दर्पण होती हैं।'

यही मेरा पहला सबक था। यदि किसी व्यक्ति और उसके गुणों को जानना चाहो तो उसकी आँखों को निहारिये। मानों आँखे सीधी दिल तक जाती हैं। इसलिये जो व्यक्ति स्वयं को खोलना नहीं चाहते, आँखे मिलाने से डरते हैं। दूसरी

चीज, पत्रिकाओं में अपराधियों के चेहरे दर्शाये जाते हैं उनके चेहरों पर आँखों पर काली पट्टी बँधी होती है। हालाँकि पूरा चेहरा दिखता है लेकिन फिर भी आप उस व्यक्ति को पहचान नहीं सकते। यह मेरे लिए बहुत बड़ा रहस्योद्घाटन था कि चेहरे में आँखों का महत्व अधिक है। दुर्भाग्यवश नाक और होठों के आकार को बदलने के लिए आप कॉस्मैटिक सर्जरी पर पैसा खर्च करते हैं। ये बेवजह नहीं हैं, क्योंकि आँखों की कॉस्मैटिक सर्जरी नहीं हो सकती। मेरे विचार से यह एक काम भगवान ने अपने लिए आरक्षित करके रखा है। हम अन्य हर चीज को बदल सकते हैं आँखों को नहीं। कम से कम मैं तो यही सोचता हूँ। लेकिन बाद में मैंने पाया कि जैसे जैसे लोग उनसे जुड़ते गये, उनकी योग प्रणाली का अभ्यास करते गये तो उनकी मदद से जो कुछ परिवर्तन उन्होंने अपने आप में अर्जित किये थे वे सब उनकी आँखों में भी झलकने लगे।

मैंने प्रायः महसूस किया है कि जो लोग मालिक से मिलने आते थे उनमें से अधिकतर को मेरे मालिक नहीं जानते थे। उनके नाम भी कभी उन्हें याद नहीं रहते थे। विदेशी नाम तो उन्हें याद ही नहीं रहते थे क्योंकि वह उनका उच्चारण नहीं कर पाते थे। वह उनको समझ भी नहीं पाते थे। लेकिन जब कोई व्यक्ति आता तो वे दो स्थानों पर निगाह दौड़ाते, एक दिल पर और दूसरी आँखों पर। उन्हें किसी एक व्यक्ति को दूसरी बार देखन की जरूरत कभी नहीं पड़ती थी और यह मेरे लिये बड़ी आश्चर्यजनक बात थी। आकृति विज्ञान, शरीर विज्ञान और मनोविज्ञान जैसे विषयों में हमें यह पढ़ाया जाता है कि किसी व्यक्ति की पहचान कैसे करें, और यहाँ बिना पढ़ा लिखा एक बूढ़ा व्यक्ति बिना वैज्ञानिक ज्ञान के एक बार निगाह भरके देख ले और सब कुछ जान जाता है। मुझे यह बात तब ज्ञात हुई जब एक व्यक्ति पन्द्रह वर्ष बाद उनके पास लौटा और उन्होंने उसके बारे में सब कुछ जान लिया। उनका यह अन्तर्ज्ञान शारीरिक, मानसिक अथवा आर्थिक दृष्टि से नहीं बल्कि उसके अन्तर्मन दिल और आत्मा के बारे में था।

हालाँकि मुझे पाश्चात्य जगत की वजह से ज्ञान अर्जन और वैज्ञानिक ज्ञान का तजुर्बा रहा था लेकिन मैं उनसे यह सीखना चाहता था कि एक ही निगाह में किसी व्यक्ति के बारे में कैसे जाना जाता है। बाद में मुझे पता चला कि उनकी यह क्षमता व्यक्तियों तक सीमित नहीं थी वह स्थानों के बारे में भी जान सकते थे। कई बार लोग उनसे पूछते थे कि 'फलाँ-फलाँ देश में क्या और कैसा है?' उन्हें उस स्थान का नाम भी नहीं मालूम होता था। हम लोग मजाक में एटलस अथवा विश्व का नक्शा फैलाकर उनसे कहते यह फलाँ देश है यहाँ इस समय क्या हो रहा है? वह एक

बार नक्शे पर निगाह डालते एक बार आकाश की तरफ देखते और फिर हमारे सभी प्रश्नों का जवाब दे देते थे। उनकी यह दृष्टि मानव हृदय को जानने तक ही सीमित नहीं थी बल्कि वह किसी भी चीज को पढ़ सकते थे।

मुझे याद है एक बार खाना खाने के बाद रात को ग्यारह बजे हम पन्द्रह बीस लोग उनके पास बैठे थे। उन दिनों शाहजहाँपुर में जहाँ वह रहा करते थे प्रायः बिजली नहीं रहती थी। एक आदमी अपना रेडियो लाया था क्योंकि उसे समाचार सुनने की आदत थी। लेकिन उस दिन उसकी बैटरियाँ कमजोर थीं और बिजली थी नहीं वह बहुत परेशान था क्योंकि वह समाचार नहीं सुन पा रहा था। उसकी अन्दरूनी हलचल से मेरे मालिक को आभास हो गया था। उन्होंने कहा, 'आओ मेरे साथ बैठो, तुम समाचार सुनना चाहते हो ना? मैं तुम्हें बिना रेडियो ही समाचार सुनाऊँगा।' सबसे आश्चर्यजनक बात यह थी कि अगली सुबह हमने देखा अखबार में वो सब बातें थीं जो उन्होंने पिछली रात बतायी थीं।

ये दूसरा रहस्योद्घाटन था। लेकिन सर्वाधिक मनमोहक रहस्योद्घाटन कई वर्षों के बाद हुआ कि वह यह भी बता सकते थे कि किसी व्यक्ति के साथ या किसी स्थान, देश में ही नहीं बल्कि पूरे विश्व में क्या होने वाला है। यह इतना मनमोहक था कि लोग उनसे प्रश्न पूछने लगे मानों कोई ज्योतिषी हों। तब उन्होंने अपनी इन क्षमताओं को प्रकट करना बन्द कर दिया क्योंकि उनके शिष्यों का झुकाव आध्यात्मिकता से हटकर इन गूढ़ विषयों की ओर बढ़ता जा रहा था। यह अगला सबक था कि हमें इन शक्तियों का उपयोग मात्र उत्सुकता के लिए नहीं करना चाहिये। मानों कोई व्यक्ति दूरबीन लेकर यहाँ खड़ा हो जाये और यह जानना चाहे कि सबके घरों में क्या चल रहा है?

मैं समझ गया कि आध्यात्मिकता में अनावश्यक ज्ञान अर्जन पर तो मनाही है लेकिन अपने काम के लिए जरूरी सभी ज्ञान हमें उपलब्ध रहता है। मेरे लिए ज्ञान की सीमा का यह महान प्रदर्शन था क्योंकि एक ओर हमें अपने काम के लिये अपेक्षित ज्ञान बिना पुस्तक पढ़े उपलब्ध रहता है जबकि दूसरी ओर अनापेक्षित चीजें हमें नहीं दिखायी या बतायी जाती हैं।

इस प्रकार की सीमा से मुझे कई बार दिक्कत होती थी क्योंकि मेरे दिमाग पर पाश्चात्य जगत का प्रभाव था। तब मुझे पता चला कि जो ज्ञान कभी हमारे काम नहीं आता उसे अर्जित करने का क्या फायदा? जैसे एक गिलहरी गिरियाँ इकट्ठी करती रहती है और उन्हें कभी नहीं खाती अथवा कोई धनाढ्य आदमी अरबों खरबों डालर अथवा फ्रेंक जमा करता है लेकिन स्वयं उनका इस्तेमाल कभी नहीं करता।

मैंने अपने मालिक से एक सबक यह सीखा कि भले ही शरीर पर माँस या पुस्तकालय में पुस्तकें या बैंक में धन जमा हो रहा हो-यदि इनका इस्तेमाल न हो तो उनका कोई फायदा नहीं। जैसा कि पूर्वी दर्शन शास्त्र कहता है, ' जब आप दुनिया छोड़कर जायेंगे तो कुछ भी साथ नहीं ले जायेंगे, ज्ञान भी नहीं।' अतः भले ही आप पैसा इकट्ठा कर रहे हों या कोई अन्य चीज, सब व्यर्थ है।

मैं इस बात पर जोर देना चाहता हूँ क्योंकि पाश्चात्य जगत में कभी कभी दो व्यक्तियों के बीच नैतिक अन्तर करने की प्रवृत्ति होती है। उदाहरणार्थ एक आम धारणा है कि एक प्रोफेसर एक धनाढ्य व्यक्ति से बेहतर इंसान होता है। एक धनाढ्य व्यक्ति में कोई न कोई खराबी होती है। लेकिन मेरे मालिक ने मुझे समझाया कि इनमें मूल अन्तर नहीं है दोनों ही अनावश्यक चीजें संचित करने में वक्त बर्बाद करते हैं। जो कुछ आपके काम नहीं आ सकता, निरर्थक है। भले ही उसमें कोई ज्ञान हो या कहीं अन्यत्र उपयोगी हो। तब मैंने पूछा कि खाली समय में मैं क्या करूँ। मैंने कहा, 'मान लीजिये मैं इन निरर्थक चीजों को इकट्ठा नहीं करूँ तो मेरे पास बहुत सा समय बच जायेगा।' समय एक ऐसी चीज है जिसका आप संचय नहीं कर सकते। पाश्चात्य जगत में हम हमेशा समय बचाने की बात करते हैं। यह एक सनक है। यहाँ ऑटो रूट्स है, 'ओह मै दो घंटे में मारसिलीज चला जाता हूँ।' यहाँ कुछ ऐसे दोस्त हैं जैसे कमरे वाले दोस्त जो कल बीस मिनट मे मारसिलीज चले जायेंगे। लेकिन असली बात यह है कि बचाये हुए समय का आप क्या करेंगे? यदि आप धन जमा करें तो कोई अन्य व्यक्ति उसका और इस्तेमाल कर सकता है। यदि पुस्तकें खरीदें तो कोई उनको पढ़ लेगा। यदि मैं भौतिक संसार में कोई चीज जमा करूँ, तो वह किसी न किसी के काम आ ही जायेगी। लेकिन समय एक ऐसी चीज है यदि आप उसे बचाते हैं तो उसका इस्तेमाल आपको ही करना है।

आध्यात्मिकता में यही मानव विकास का मूल रहस्य है। पाश्चात्य जगत में आप लोग खासकर आजकल समय बचाने में मास्टर हैं लेकिन उस बचाये हुये समय का उपयोग करने में पूरी बेवकूफी बरतते हैं। आप पागलों की तरह एक स्थान से दूसरे स्थान तक दौड़ते हैं कोई यात्रा जो आपके पिताजी ने दस या बारह घंटे में की होगी, एक घंटे में कर डालते हैं। फिर समुद्र तट पर बैठ जाते हैं या किसी रेस्तराँ में बीयर या किसी कैफे में काफी पी रहे होते हैं। इस तरह न केवल बचाया हुआ समय व्यर्थ गवाँ रहे हैं बल्कि उस पर कुछ पैसा भी व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं।

अतः हमारे द्वारा बचायी गयी हर चीज का कुछ न कुछ लाभ होता है भले ही हमारे लिए नहीं तो किसी दूसरे के लिए सही आज यहाँ कई बड़ी संस्थायें जैसे वाटमल फाउण्डेशन, फोर्ड फाउण्डेशन, रोकफैलर फाउण्डेशन आदि। ये संस्थायें विद्यार्थियों को अस्पताल बनाने तथा बहुत से अन्य कार्यों के लिए बहुत सा पैसा देती हैं। लेकिन हममें से हर एक व्यक्ति समय बचाने में लगा हुआ है। आध्यात्मिकता कहती है, 'उस समय का तुमने क्या उपयोग किया?'

ये एक बहुत बड़ा रहस्य था। मेरे कहने का अर्थ है कि यह एक सर्वविदित रहस्य है जिसे हर व्यक्ति जानता है। लेकिन मेरे लिए इस रहस्य का पर्दाफाश मेरे मालिक ने किया कि समय भी प्रकृति का एक संसाधन है जिसका आप पुनर्निर्माण नहीं कर सकते। हम धन सम्पदा बना सकते हैं, ज्ञान अर्जित कर सकते हैं लेकिन किसी भी व्यक्ति ने आज तक समय का निर्माण नहीं किया। समय एक बार नष्ट हो जाये तो हमेशा के लिए नष्ट हो जाता है। इसीलिये हम सब दीर्घायु होने के लिए उत्सुक रहते हैं, है कि नहीं?' सम्भवतः लम्बा जीवन अपने में एक भ्रम हो लेकिन हम सोचते हैं कि हम अपने लिये अधिक समय उत्पन्न कर रहे हैं। इसीलिये हर मानव लम्बी आयु के बारे में सोचता रहता है। आप यह बात मॉयन सभ्यता, इनका सभ्यता, यूनानी सभ्यता, मिस्र सभ्यता में देख सकते हैं जहाँ शवों को अमरता की चाहत में सुरक्षित रखा जाता है।

हम अपने दिल से इस बात के प्रति सचेत रहते हैं कि समय एक महत्वपूर्ण संसाधन है जिसका हम संरक्षण नहीं कर पा रहे हैं। क्यों? क्योंकि हम इसका इस्तेमाल कारगर ढंग से नहीं कर पा रहे हैं। यदि आधुनिक प्रौद्योगिकी और विज्ञान की वजह से इसका कारगर ढंग से उपयोग कर भी लेते हैं तो इसे प्लाजा और रेस्तराओं पर लुटा देते हैं। मेरे मालिक ने कहा 'यह अंधाधुंध बर्बादी है क्योंकि आप न केवल समय को व्यर्थ गँवा रहे हैं जिसकी कोई ज्यादा अहमियत नहीं है लेकिन वास्तव में आप अपना जीवन व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं।' जीवन क्या है- यह समय की रफ्तार में मेरा ही तो विस्तार है, यह आप में से हर व्यक्ति पर लागू होता है। जब आप कहते हैं, 'मैं छः वर्ष का हूँ' तो इसका तात्पर्य यह है कि मैं इस भूमण्डल पर छः वर्ष तक जिया हूँ। लोग यह जानना चाहते हैं कि आप क्या करते रहे। जीविकोपार्जन के लिए आप क्या करते हैं? आप शाम को क्या करते हैं? आजकल एक स्टैण्डर्ड प्रश्न हो गया है, आप शाम को क्या करते हैं?

हम किसी तरह सोचते हैं कि शाम मौज मस्ती में नष्ट करने के लिए है। अगली सुबह जब हम उठते हैं तो सिर दर्द लेकर उठते हैं या फिर दिल का दर्द। 'मैंने बहुत

संकल्प किये कि आज से अपनी शाम खराब नहीं करूँगा। मैं बैठकर ग्रीक या लैटिन सीखूँगा या कम्प्यूटर विज्ञान पढ़ूँगा'। लेकिन मेरे संकल्प हवा हो जाते हैं और कभी लौटकर न आने वाली एक और शाम नष्ट हो जाती है। हमारा समय इस तरह हाथ से निकलता जा रहा है।

अतः समय का सही ढंग से उपयोग योग का पहला सबक है। समय का सही ढंग से उपयोग करने का क्या तरीका है? सही ढंग से जियो। सही ढंग से कैसे जिया जाये? सही ढंग से सोचो। सोचने से ही सभी कार्यों की शुरुआत होती है। इसीलिये राजयोग का सम्बन्ध केवल दिमाग के विनियमन से है। मैं यह इसलिये कह रहा हूँ कि संसार में कई योग पद्धतियाँ हैं। कम से कम बीस पच्चीस के बारे में तो मैं स्वयं जानता हूँ। मुझे यह कहते हुए खेद है कि यूरोप में प्रायः हम योग के रूप में जो कुछ देख रहे हैं, वास्तव में यह योग है ही नहीं। यह तो स्वास्थ्य की एक अन्य शारीरिक पद्धति है। चूँकि यहाँ के लोग शरीर के प्रति बहुत सचेत हैं, जवान रहना चाहते हैं और खूबसूरत दिखना चाहते हैं। इसलिये इन हठयोग स्कूलों का धंधा फल-फूल रहा है। लेकिन मैं आपको बताना चाहूँगा कि यह भी समय की बर्बादी है। यह महत्वपूर्ण नहीं है कि कोई दुबला है या मोटा, लम्बा है या नाटा, अमीर है या गरीब, शिक्षित है या अशिक्षित। महत्वपूर्ण सवाल है केवल समय के समुचित उपयोग का।

यदि आप प्राचीन काल के महान संतों चाहे ईसा मसीह हों चाहे मोहम्मद, चाहे बुद्ध या आधुनिक काल में मेरे मालिक, के जीवन में झाँके तो यह पायेंगे कि जिस बदौलत उन्हें मालिक कहा जाता है वह यह है कि वे समय के मालिक थे। इसका सीधा सा अर्थ यह है कि वे स्वयं के मालिक थे। जो स्वयं का मालिक होता है वह अपने हिसाब से समय पर भी मास्टरी कर लेता है। जैसा कि आप जानते हैं हम सब बदलना चाहते हैं। हम अच्छा बनना चाहते हैं। हम उपयोगी बनना चाहते हैं। हम हर समय संकल्प करते रहते हैं। इसलिये यदि हम समय नष्ट करते हैं तो इसका यह कारण नहीं है कि हम समय नष्ट करना चाहते हैं बल्कि हमारा स्वयं पर नियंत्रण नहीं है।

देखिये समय पर नियंत्रण का अर्थ है स्वयं पर नियंत्रण। अपनी स्थूल प्रवृत्तियों व आदतों पर विजय पाना और जीवन को एक सकारात्मक दिशा देना, जहाँ शरीर हावी होकर हमें अपना गुलाम न बना ले और न ही दिमाग हमारा गुलाम बने बल्कि शरीर और दिमाग अन्तरमन के सेवक बन जायें, उसके नियंत्रण में उसके आदेशों के अनुसार कार्य करें। शरीर वहीं जाये जहाँ अन्तरमन उसे ले जाना चाहे दिमाग

वही सोचे जो वह सोचना चाहे जबकि अब हम पूरी तरह शरीर व दिमाग से संचालित होते हैं। इसीलिये जो अपने कार्यों को पूरी तरह विनियमित करना जानता हो वही मालिक है।

ऐसा बनने का रास्ता क्या है? मैंने सोचा कि जरूर इसके लिए बहुत सी गूढ़ शिक्षायें होंगी। वही यूनानी दर्शन की लत, मानों कुछ बाहर से मिलने वाला हो। चाहे चीनी दर्शन शास्त्र हो या यूनानी दर्शन शास्त्र या जर्मन दर्शन शास्त्र या फ्रांसीसी दर्शनशास्त्र, हमें ज्ञान प्राप्ति के लिए दूसरों पर ही निर्भर रहना पड़ता है।

अतः जब मैंने मालिक से पूछा 'हम आप जैसा कैसे बन सकते हैं? आपने क्या क्या पढ़ा था?' तो उन्होंने हँसकर कहा, 'बच्चे तुम्हें अब भी ज्ञान की लत है'। मैंने कहा 'जी हाँ। लेकिन मैं केसे जानूँ कि मुझे स्वयं क्या करना है?' उन्होंने कहा 'बैठो, आँखें बंद करो। मैं तुम्हें बताता हूँ।' पल भर के लिये मुझे लगा कि मैं पहले से अधिक सनकी होता जा रहा हूँ। कल्पना कीजिये कि कोई व्यक्ति आँख बंद करके किसी को पढ़ा रहा हो। मान लेते हैं कि गुरु तो आँख बंद करके भी पढ़ा सकता है लेकिन मेरे जैसा व्यक्ति आँख बंद करके कुछ सीख सकता है? लेकिन ऐसा चमत्कार हुआ। अन्यथा मैं यहाँ आप लोगों से इस बारे में बातें नहीं कर रहा होता।

जब हम प्रायः पाश्चात्य देशों में यहाँ आकर कहते हैं 'हम ध्यान करेंगे। कृपया आँखें बंद कर लीजिये। आराम से बैठ जाइये।' तो यहाँ आये कुछ लोग हमेशा पूछते हैं, आँख बंद करके शांतिपूर्वक बैठकर आप कोई चीज कैसे प्राप्त कर सकते हैं? यह प्रश्न अवश्यंभावी और वाजिब हैं। क्योंकि यही प्रश्न मेरे जहन में भी था। आँख बंद करके बैठे हुए कोई चीज कैसे प्राप्त की जा सकती है?

वास्तव में एक बार मेरे मालिक ने मुझे बताया था कि उनकी खुद की माँ ने उन्हें यह कहते हुये कोसा था 'आँख बंद करके बैठे हुए तुम अपने आपको मूर्ख बना रहे हो। तुम न केवल स्वयं को मूर्ख बना रहे हो बल्कि अपने पास आने वाले सभी लोगों को मूर्ख बना रहे हो।' तब उन्होंने एक बहुचर्चित प्रश्न पूछा 'तुम जो कुछ उन्हें दिखाना चाहते हो क्या तुमने उसे देखा है?' माँ को विश्वास नहीं था कि ऐसा सम्भव है। उनके पिता ने सोचा कि वह सनकी है क्योंकि उनकी कोई महत्वाकांक्षा नहीं थी। धन में उनकी रुचि नहीं थी, किताबों से उन्हें कोई लगाव नहीं था, आँख बंद कर पेड़ के नीचे बैठते और इस दीन दुनिया से बेखबर हो जाते थे। लौटने पर यदि कोई पूछता, 'तुम्हें क्या मिला है?' तो उनके पास दिखाने के लिए कुछ नहीं होता था। जो अन्तर्रात्मा में बैठा हो उसे भला कोई क्या दिखा सकता है? इसे

समझना बहुत मुश्किल है जैसे आप किसी से कहें 'आप कहते हैं कि आप मुझे प्यार करते हैं, मुझे अपना प्यार दिखाओ।' मेरा तात्पर्य यह है कि प्यार प्रदर्शित करने के तरीके तो हैं लेकिन स्वयं प्यार को दिखाया नहीं जा सकता। आप फूल ला सकते हैं महँगा उपहार ला सकते हैं। लेकिन ये सब प्रेम के प्रतीक हैं प्रेम नहीं।

जब आप प्रेम जैसी नैसर्गिक तथा सामान्य मानवीय वस्तु नहीं दिखा सकते, तो यह समझने में क्या कठिनाई है कि मालिक अपनी आन्तरिक स्थिति हमें नहीं दिखा सकते? लेकिन मैंने अपने मालिक से पूछा कि इसे कैसे जाना जा सकता है। उन्होंने कहा कि, 'तुम इसे स्वयं अपने भीतर महसूस करोगे।' धीरे-धीरे, थोड़ा -थोड़ा चमत्कार हुआ। मैं अपने साथ घटित होने वाली चीजों को देख सकता था। पहले तो ऐसा नहीं होता था। कोई अन्य व्यक्ति भी मुझे इसका अहसास नहीं करा सकता था। क्योंकि ये बातें शिक्षा के दायरे से परे थीं। ये रासायनिक विज्ञान और भौतिक नियमों के दायरे से भी परे थीं। हमारे साथ सांस्कृतिक अनिश्चितता की स्थिति है कि कुछ चीजों को कुछ चीजों के पास रखने पर कुछ और ही हो जाती हैं। आप बैठकर स्वयं पर ध्यान करके अपने को कैसे बदल सकते हैं?

उन्होंने मुझे यह महत्वपूर्ण सबक सिखाया कि कोई मनुष्य अपनी काया पलट करना चाहे तो उसे स्वयं पर कार्य करना होगा। अतः हम अव्वल दर्जे के प्रयोगकर्ता बन जाते हैं। हम स्वयं प्रयोग का विषय हैं जब हममें परिवर्तन होता है तो हम स्वयं को पुनः परिवर्तित व्यक्ति के रूप में देखते हैं। इसे समझना ज्यादा मुश्किल नहीं है लेकिन स्वीकार करना थोड़ा असामान्य जरूर है।

जब मैं किशोर था तब मैंने एक प्रयोग किया था। हर व्यक्ति इससे वाकिफ है। पता नहीं यहाँ यह सम्भव है या नहीं लेकिन पूरब में हमारे यहाँ पुरानी रेल चलती थी जो धीरे धीरे चलती थी और हर स्टेशन पर तीस तीस, चालीस-चालीस मिनट रुकती थी। जब बच्चे अधीर हो जाते तो दीवार के साथ खड़े होकर ट्रेन को अन्दर से धकेलते थे। यह असम्भव चीज है। हम किसी चीज को उसके भीतर से नहीं धकेल सकते। यदि आपकी कार बन्द हो जाय तो आपको बाहर निकल कर इसे धकेलना पड़ता है। भीतर से चाहे जितना धकेलें, कार आगे नहीं बढ़ सकती। लेकिन यहाँ एक ऐसा विज्ञान है जो कहता है कि आप अपने भीतर से स्वयं को धकेल सकते हैं तथा भिन्न भिन्न आंतरिक स्थितियों में अपने आपको अलग परिस्थितियों में पायेंगे, अधिक शांत, अपने माहौल के साथ अधिक तालमेल बैठाते हुये लोगों के साथ बातचीत करने और उन्हें अपनी बात समझाने में अधिक सक्षम। अन्ततोगत्वा, आप पायेंगे कि प्यार किये बिना ही आप सभी से प्यार कर सकते हैं।

मेरे मालिक ने कहा कि ये टेस्ट हर उस व्यक्ति पर आजमाया जाये जो स्वयं को आध्यात्मिक समझता है। "क्या वह बिना परख किये सभी से प्यार करने में सक्षम है? 'जैसा कि आप जानते हैं, ईसाई धर्म में यह परम्परा है कि यह मत समझो कि तुम्हारी परख नहीं हो सकती।' लेकिन मेरी समझ में यह वाक्य अधूरा है। इसमें कहा गया है कि ऐसी राय कायम मत करो क्योंकि तुम अपनी परख स्वयं नहीं कर सकते। मुझे नहीं लगता कि यह वाक्य पूरा है। हमें किसी की परख नहीं करनी चाहिये क्योंकि हमें परख करने का कोई अधिकार नहीं है। फिर मुझे उस वस्तु से प्यार क्यों होना चाहिये जो अच्छी है? अच्छी चीज से प्यार करने में कौन सी आश्चर्यजनक बात है? जैसा कि मैं भारत में हमारी वार्ता सुनने आने वाले युवा लड़कों से कहता हूँ, "किसी सुन्दर लड़की से प्यार करने वाला तो कोई मूर्ख ही हो सकता है लेकिन असली प्रेमी तो वह है जो किसी ऐसी लड़की से प्यार करे जो ज्यादा खूबसूरत तो नहीं है लेकिन आंतरिक सौन्दर्य से सराबोर है। मार्लिन मुनरो का एक पोस्टर लगा दीजिये शहर का हर लड़का दीवाना हो जायेगा ओह! मेरी जान" उसमें ऐसा क्या है?

वास्तव में प्यार का अर्थ मानवीय आकृति, मानवीय रूप और मानवीय गुणों से आगे निकल जाना है। यह वैसा प्रेम नहीं है जैसा ईसाइयत समझती है। "दूसरों के साथ प्रेममय व्यवहार करो।" नहीं, मैं ईसाइयत की आलोचना नहीं कर रहा हूँ। मैं स्वयं ईसा मसीह का बड़ा कदरदान हूँ। मैंने यह स्कूल में पढ़ा था। मैं ईसाइयों के स्कूल में पढ़ा हुआ हूँ। भारत में ब्रिटिश राज में इन्हें पब्लिक स्कूल कहा जाता था और यहाँ ईसाइयत एक अनिवार्य विषय होता था। मेरे लिये यह सौभाग्य की बात थी अन्यथा मैं इसका अध्ययन कभी नहीं कर पाता। लेकिन असली मुद्दा है कि मुझे यह कैसे समझ में आया कि मालिक को बिना भेदभाव किये प्यार करना चाहिये? यह मैंने अपने अभ्यास के माध्यम से जाना क्योंकि जब ध्यान में हम अपने भीतर झाँकते है। तो निःसंदेह सभी बदसूरत, गंदी और मूर्खतापूर्ण चीजें दिखायी पड़ती हैं। ध्यान के दौरान कई ऐसे अवसर आये जब मुझे इतनी उबकाई आयी कि मुझे सच में उल्टी करनी पड़ी। मुझे स्वयं से उबकाई आती थी। ऐसा तब होता है जब हमें अपनी आंतरिक स्थिति का ज्ञान हो जाये। भले ही बाहर से हम कितने ही साफ सुथरे और चमकीले क्यों न हों लेकिन आंतरिक स्थिति का क्या किया जाये? आपको ईसा मसीह की वह कहानी तो याद होगी, जिसमें एक परस्त्रीगामी व्यक्ति को उन दिनों के कानून के अनुसार पत्थर मारकर मौत के घाट उतारा जाने वाला था। ईसा मसीह आये और उन्होंने कहा 'इस पर पहला पत्थर वही मारेगा जिसने पाप न किया हो।' उन्होंने इससे आगे भी कुछ कहा 'उन्होंने कहा

पाप केवल शरीर का ही नहीं होता। पाप की शुरुआत दिमाग से होती है' उन्होंने बहुत स्पष्ट कहा यदि आपके मन में किसी महिला के बारे में कामुकता है तो यह भी एक पाप है। मेरे मालिक ने मुझे अन्तरमुखी होना सिखाया। जब हम अन्तरमुखी होते हैं तो हमें वहाँ पर भी वही चीजें मिलती हैं जिनको लेकर हम शर्मिन्दा हैं सनकी हैं और आत्म ग्लानि के शिकार हैं। यही आत्मग्लानि आज की दुनिया में अधिकांश विवाहों के टूटने का कारण हैं। अब जब हमारी अपनी अन्दरूनी स्थिति ऐसी है तो किसी अन्य व्यक्ति को दोष कैसे दे सकते हैं? यदि कहीं बुराई है तो दूसरों की बनिस्पत मैं अधिक बुरा हूँ हमारे मन में ऐसे विचार आने लगते हैं।

अब मैं आपको एक ऐसे नवयुवक की खूबसूरत कहानी सुनाना चाहूँगा जो एक गुरु के पास गया ओर उनका शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। गुरु ने कहा, "मेरे लिये कोई ऐसी चीज लेकर आओ जो तुम मुझे दे सकते हो।" लड़के ने कहा जो कुछ आप चाहें? गुरु ने कहा "अच्छा, इस दुनिया की सबसे घटिया चीज मुझे लाकर दो।" लड़के ने सोचा क्या चीज माँगी है? सबसे बेकार चीज ढूँढ़ना कौन सी बड़ी बात है? सबसे अच्छी चीज ढूँढ़नी हो तो जरूर मुश्किल है। वह एक बुरी चीज से दूसरी बुरी चीज तक दौड़ता रहा लेकिन उसकी खोज पूरी नहीं हुई। इतने में उसने कहा, हाँ ये है सबसे बुरी चीज। वह उस बुरी चीज को लेकर गुरु के पास जाने को उत्सुक था। इसके बाद मैं जो कहने जा रहा हूँ, उसके लिए क्षमा करें। एक दिन वह शौचालय में बैठा था तब उसने तत्काल निर्णय लिया, दुनिया में यह सबसे बुरी चीज है। इसे कोई छूना नहीं चाहता। कोई व्यक्ति इसकी गंध भी नहीं सहन कर सकता। इसे चखेगा कौन? इसे तो कोई देखना भी नहीं चाहता। उसने बड़बड़ाते हुये कहा 'अहा ये दुनिया की सबसे बुरी चीज है क्योंकि सारे मनुष्य सोचते हैं कि ये दुनिया की सबसे बुरी चीज है।" उसने हाथ बढ़ाकर कुछ मल लेना चाहा तभी उसमें से एक आवाज आयी रुको, तुम मेरे साथ क्या करने जा रहे हो? लड़का बोला, मेरे गुरु ने कहा है "दुनिया की सबसे बुरी चीज लेकर आओ, मुझे ये आज मिली है।" आवाज ने तब कहा जरा सोचो कल शाम मैं एक सेब था, मैं एक आइसक्रीम थी, तुमने मेरा स्पर्श किया ओर मेरी यह हालत हो गयी। अब तुम्हीं फैसला करो कि दुनिया में सबसे खराब चीज कौन सी है?' तभी उस युवक की अन्तर चेतना जागृत हुई और वह खाली हाथ जाकर अपने गुरु के सामने दण्डवत होकर बोला, कृपया मुझे अपना शिष्य बना लीजिये। गुरु ने कहा 'दुनिया की सबसे खराब चीज कहाँ है?' उसने जवाब दिया, 'मैं यहाँ हूँ गुरुदेव। मैं ही दुनिया की सबसे घटिया चीज हूँ।'

इस तरह की विनम्रता तभी आती है जब हम अपने अन्दर झाँकते हैं। तभी हम ऐसे लोगों के प्रति करुणा भाव रख सकते हैं, जो पापी हैं, गलतियाँ करते हैं और अपराध बोध के शिकार हैं। मालिक उनसे कहते हैं "चिन्ता मत करो, कोई भी मानव प्राणी ऐसा नहीं है जो इन चीजों से मुक्त हो। आज तक कोई ऐसा मनुष्य पैदा नहीं हुआ जो इन चीजों से मुक्त रहा हो। लेकिन निराशा की बात नहीं है तुम स्वयं को बदल सकते हो।" मेरे मालिक ने इस तरह मुझे न केवल दूसरों के प्रति करुणा, मैत्री भाव रखना और प्रेम करना सिखाया बल्कि इससे भी महत्वपूर्ण मुझे यह शिक्षा दी कि स्वयं के प्रति भी सहानुभूति का भाव रखो और धीरे-धीरे अपने आपको इस ढंग से तब्दील करो कि तुम स्वयं से प्रेम करने लगो।

इसे कृपया आत्मरति मानने की भूल न करें। यह तो अन्तर्रात्मा है। इस प्रकार मेरे अन्तर्मन और वाह्य मन में एक संतुलन कायम होता है और मैं बिना किसी कठिनाई के दुनिया से रूबरू हो सकता हूँ। अतः इसका आत्मरति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसी बदलाव के कारण हम लोगों से प्रेम कर सकते हैं भले ही वे कुछ भी करते हों और कुछ भी हों। स्वामी विवेकानन्द का एक वक्तव्य है। मुझे विश्वास है कि आपने उनका नाम सुना होगा। भारत में हमारे यहाँ कई तरह की अजीबो-गरीब अवधारणायें हैं और उनमें से एक वेश्याओं के बारे में है। उन्हें गन्दा, अधर्मी, नीच समझा जाता है। हालाँकि पुरुषों का उनके बिना गुजारा नहीं है। एक बार स्वामी विवेकानन्द कलकत्ते में एक बड़ी जनसभा को सम्बोधित कर रहे थे। उनका विषय था भारतीय महिलायें। महिलाओं के बारे में बात करते हुये उन्होंने वह प्रसिद्ध टिप्पणी की थी। उन्होंने कहा था 'अपनी इन पतित बहनों से घृणा मत करो, क्योंकि यदि ये न होतीं, तो तुम्हारी बहन, तुम्हारी माँ, तुम्हारी पत्नी वेश्यायें बन जातीं।' इतनी बड़ी बात इतने खुले शब्दों में दिल से ही निकल सकती है। भारत में उन दिनों एक शताब्दी की शुरुआत में और पिछले शताब्दी के अन्त में इस तरह की बात कहने के लिए बेहद साहस की जरूरत थी। उन्होंने ऐसा साहस कैसे विकसित किया? आप सभी महान गुरुओं के जीवन में यही पाते हैं। ईसा मसीह ने मंदिर में सूदखारों की टेबल उलट दी थी। ऐसे राक्षसों से आमना-सामना होने पर महात्मा बुद्ध कुछ भी कर गुजरते थे। पहाड़ पर ईसा मसीह का प्रलोभन। लेकिन कोई उन्हें टस से मस नहीं कर सका। मालिक के पास आने के करीब छः वर्ष बाद मैंने यह प्रश्न मालिक से पूछा। उन्होंने मुझे दो बातें बतायीं।

पहली बात यह है कि आपके हमारे भीतर जो अन्तर्रात्मा मौजूद है कोई भी बाहरी चीज उससे अधिक भयावह नहीं है। सारे शैतान हमारे भीतर मौजूद हैं।

पापाचार का राक्षस, अपराध का राक्षस और काम वासना का राक्षस, किसी का भी नाम लीजिए, सब हमारे भीतर मौजूद हैं। दूसरी बात, उन्हें ब्रह्माण्ड में किसी भी चीज का प्रलोभन नहीं दिया जा सकता क्योंकि आप किसी भी चीज के बारे में बात करें या कोई भी चीज उन्हें देने का प्रयास करें, वह चीज पहले से उनके भीतर मौजूद है। इसके अलावा आन्तरिक ब्रह्माण्ड, वाह्य ब्रह्माण्ड की तुलना में बहुत व्यापक है। इसमें वह हर चीज है जिसकी हम कल्पना कर सकते हैं और ऐसी चीजें भी हैं जिनकी हम कल्पना भी नहीं कर सकते। इसलिये भय नहीं रहता हमें किसी भी चीज का प्रलोभन नहीं दिया जा सकता क्योंकि यहाँ सब कुछ है।

इस प्रकार यह अन्तर्मुखी होने और अपने बारे में जानने का एक तरीका है। यह दैनिक जीवन में घटित होने वाली घटनाओं का वृत्तान्त नहीं बल्कि एक मूल्य परक कसौटी है। हमें यह देखने का प्रयास करना चाहिये कि पहले हम क्या थे और अब हम क्या हैं। फिर मालिक कहते हैं, 'तुम इसकी चिन्ता क्यों करते हो? तुम इन सब पर विजय प्राप्त कर सकते हो। इसमें कितनी देर लगेगी? क्योंकि इनके धर्मों के अनुसार हमारा पहले जन्म हुआ था और भविष्य में भी हमारा पुनर्जन्म होगा।' इतने जन्मों के इन सब बुरे संस्कारों से हम कैसे निजात पायें? तब उन्होंने मुझे कुछ ऐसी बातें बतायीं जो बहुत साधारण हैं 'यदि तुम सप्ताह भर नहीं सोओ, तो क्या तुम्हें सामान्य से सात गुना अधिक सोना पड़ेगा? एक रात की अच्छी नींद ही काफी है। आप पन्द्रह दिन तक खाना नहीं खाते। क्या आप सम्भवतः इन पन्द्रह दिनों का खाना एक साथ खा सकते हैं? आप का एक समय का भोजन ही काफी है।' मैंने उनसे पूछा कि इन सबका इसके साथ क्या सम्बन्ध है। उन्होंने कहा, "मेरे बच्चे, इसी प्रकार तुम्हारे अन्दर जो गन्दगी जमा पड़ी है उसे हटाने में ज्यादा समय नहीं लगता।" तभी उन्होंने इस रहस्य से पर्दा उठाया कि वास्तव में समय कैसे बचायें। एक लम्बी यात्रा पर समय बचाने में कुछ समय लगता है। यदि आप चार घंटे में कहीं पहुँचना चाहते हैं जिसके लिए आपके पास आठ घंटे हैं और आपको चार घंटों की जरूरत है। इस प्रकार आप चार घंटे बचा लेते हैं। पैसा बचाने के लिए पहले आपके पास पैसा होना जरूरी है। जिसके पास पैसा नहीं है वह पैसा बचा ही नहीं सकता।

हमारे यहाँ कुदरत की उदारता से कुछ ऐसी चीजें हैं जो हमें जाति, धर्म, रंग आदि के भेदभाव के बिना मिली हुयी हैं। जैसे पीने को पानी, खाने को भोजन, श्वाँस लेने के लिए हवा और जीवित रहने के लिए समय। हम भोजन, पानी, दवाइयों सम्बन्धी अपनी ज़रूरतों को कम करने में निपुण हो गये हैं और भूल रहे

हैं कि एक दिन हमारे जीवन का अन्त होगा। जीवन की गणना वर्षों और महीनों में की जाती है। यही समय है। यदि हम समय का सही ढंग से उपयोग कर सकें, तो हम समय के मालिक बन सकते हैं।

ये कुछ ऐसी चीजे हैं जो मेरे मालिक ने मुझे अपने जीवन में समझायी थीं। उनमें से मुख्य बातें ये हैं "तुम्हारा शिक्षित होना जरूरी नहीं है। तुम्हारा तन्दुरुस्त रहना भी जरूरी नहीं है। तुम्हारा धनी होना भी जरूरी नहीं है। केवल मानव बनना जरूरी है।" इतना पर्याप्त है। अन्य किसी चीज की जरूरत नहीं है।

वर्तमान में एक महान संत हुए हैं जिन्होंने कहा था 'तीन चीजें ऐसी हैं जिन्हें पाना कठिन है और उनमें से एक है मनुष्य का जन्म।' हममें से कई लोग कहेंगे कि मनुष्य होना कौन सी खास बात है? मैं तो गरीब हूँ और मैं जीना भी नहीं चाहता। कुछ ऐसे लोग हैं जो अपने जीवन के बारे में इतना घटिया दृष्टिकोण रखते हैं कि वे आत्महत्या करके इसे खत्म करना चाहते हैं तथापि यह जीवन का उच्चतम विकसित रूप है और हम सौभाग्यशाली हैं कि हमें मनुष्य जन्म मिला है।

दूसरी चीज, उन्होंने कहा, 'एक सद्‌गुरु मिलना।' गुरु आये दिन जन्म नहीं लेते। कई हजारों वर्ष बीतने पर दूसरा गुरु हमें मिलता है। तीसरी चीज है 'गुरु मिलने के बाद उनका उपयोग।' जब हम गुरु का सही ढंग से उपयोग करते हैं तो अपने साथ-साथ समय का उपयोग भी सही ढंग से करते हैं। मैं बहुत सौभाग्यशाली था कि मुझे मानव जन्म मिला और मुझे एक सद्‌गुरु मिले और मैंने उन्हें अपने रोम-रोम में सहेज कर रख लिया है।

यह एक पराकाष्ठा का अनुभव था क्योंकि जब हम अपने बाहर विराजमान मालिक से जुड़ जाते हैं तो हम उनसे प्रेम करना भी सीख जाते हैं। हम उन पर उसी तरह निर्भर रहने लगते हैं जैसे कोई बच्चा कठिनाई में भागकर अपनी माँ के आँचल में छुप जाता है। लेकिन भौतिक मालिक पर निर्भरता हमारे आगे के विकास में बाधक है और अन्ततोगत्वा जब हम ध्यान में सफल हो जाते हैं तब ऐसा महत्वपूर्ण चमत्कार होता है कि हमें अपनी अन्तर्रात्मा के भीतर झाँकने पर अपने मालिक के दर्शन होते हैं और हमें रोम-रोम में उनकी उपस्थिति का आभास होता है। इसकी वजह से बाहरी मालिक का महत्व कम नहीं हो जाता, बल्कि अन्दर भी वही है और बाहर भी वही है। शरीर का तो एक दिन विलय होना निश्चित है। मेरे मालिक ने 1983 में शरीर छोड़ा था। ऐसे में हमें क्या करना चाहिये?

यौगिक अभ्यास की सबसे ऊँची शिक्षा आन्तरिक खुशी, आन्तरिक ज्ञान पाना ही नहीं है बल्कि मालिक का अपने हृदय में इस प्रकार समावेश करना है कि वे

हमारे शाश्वत मित्र के रूप में वहाँ मौजूद रहें। तब वे हमारे जीवन के नियंत्रक बन जाते हैं जो एक बाहरी अध्यापक की भाँति नहीं भीतर से हमें सचांलित करते हैं। अतः मैं यह तो नहीं कह सकता कि यह अन्तिम चीज है क्योंकि जैसे-जैसे हम अन्तरमन में मालिक के साथ आगे बढ़ते हैं, वैसे -वैसे हमें नये-नये अनुभव होते रहते हैं। लेकिन मैं यह सम्पूर्ण सत्य अवश्य कहना चाहूँगा कि जो मालिक को अपने हृदय में नहीं बैठाता, वह स्वयं अपना मालिक हो ही नहीं सकता। मुझे ध्यान के दौरान एक बार अनुभव हुआ कि जब मैंने अपने अन्तर्मन में गोता मारा तो मुझे वहाँ मेरे मालिक के दर्शन हुये। जब मैंने उनसे इस बारे में पूछा तो उन्होंने कहा 'अपने भीतर उसे (भगवान) तलाश करो और वह तुम्हें मिलेगा फिर तुम उन्हें साक्षात अपने अन्दर पाओगे।'

मुझे एक जबरदस्त अनुभव हुआ मानो मैं बहुत तेजी से एक सुरंग में से गुजर रहा हूँ और जब मैं दूसरे छोर पर बाहर निकला तो मुझे एक बहुत बड़ी क्रिस्टल गेंद दिखायी पड़ी। पहले मैंने उस गेंद में अपने मालिक और फिर मालिक के मालिक की आकृति देखी। जब मैं उसके निकट गया तो वह आकृति मेरे मालिक के रूप में तब्दील हो गयी। जब मैं इसके और निकट गया तो उसमें मैंने अपनी स्वयं की आकृति देखी। मेरे मालिक ने बताया कि यह बहुत बड़ा सत्य है, 'उसे तलाशो और स्वयं को पाओ। स्वयं को तलाश करो तो तुम्हें कुछ नहीं मिलेगा।' खुशी और तृप्ति की हमारी खोज इसीलिये त्रासदी और निराशा पर आकर खत्म होती है क्योंकि हम स्वयं को तलाश रहे हैं। अतः आध्यात्मिक शब्दों में ईश्वर साक्षात्कार और आत्म-साक्षात्कार एक ही है, अन्तर्रात्मा ही भगवान है क्योंकि उसके बिना हमारा अस्तित्व सम्भव नहीं। जब हम अपने भीतर उस परम तत्व को पा लेते हैं तो यह कहना कोई ईश्वर निन्दा नहीं है कि 'मैं भगवान जैसा हूँ।'

यदि आपकी जेब में पैसा है तो आप धनी हैं यदि आपके पास कुछ ज्ञान है तो ज्ञानी कहलाते हैं। यदि किसी दिन आपको अपने भीतर ईश्वर मिल जाये तो यह कहने में क्या हर्ज है कि 'मैं भगवान जैसा हूँ?' लेकिन ऐसा कहना खतरे से खाली नहीं है, क्योंकि जैसा कि आप जानते हैं ईसा मसीह को इसी कारण क्रॉस पर चढ़ाया गया था। उन्होंने कहा था, "मैं प्रभु की सन्तान हूँ।" सच्चाई को छुपाकर नहीं रखा जा सकता, जैसा कि एक ईसाई उक्ति है, "Hide not thy lamp under a bushel." पता नहीं बुशेल को आप आजकल क्या कहा जाता है। यह अनाज तौलने का एक पैमाना है। जब रोशनी होती है तो उसकी आभा तो फैलती ही है। रोशनी को छुपा के नहीं रखा जा सकता। ऐसा व्यक्ति गुमनामी और एकांत

में नहीं रह सकता और न ही उसका कोई प्राइवेट जीवन हो सकता है। महान कुर्बानी के बाद ही कोई सद्‌गुरु (मालिक) बनता है। उसे स्वयं को एक तरह से मिटाना पड़ता है और जब उसे पुनः स्वयं का ज्ञान होता है तो यह कहना अधिक उचित होगा कि उसने स्वयं को पा लिया। फिर भी वह सम्पूर्ण रूप से कभी अपने आप में नहीं आ सकता।

पाश्चात्य जगत् में यह एक बहुत दुखदायी बात है, लोग कहेंगे, "स्वयं को कौन मिटाना चाहेगा? मैं स्वयं से प्रेम करता हूँ। और अपना अस्तित्व नहीं खोना चाहता। मैं दीर्घायु होकर जीवन का कुछ और उपभोग करना चाहता हूँ। अभी तो बहुत कुछ भोगना है। आप यहाँ नाहक कहाँ की बातें ले बैठे?"

जैसा कि मैंने कहा कि सच्चाई तो कहनी ही पड़ेगी। यदि हम यहाँ पर अपने वजूद को नहीं पहचान पाते तो हमें बाहर कुछ मिलने वाला नहीं है। विश्वास रखिये, बाहरी जगत में खुशी और आनन्द की हमारी खोज निरर्थक है। यह बार-बार दर्पण में अपनी सूरत निहारने के समान है ताकि हम आश्वस्त हो सकें कि खूबसूरत दिखते हैं। हम मात्र दर्पण पर निर्भर रहते हैं। शायद आपको 'स्नो व्हाइट' की कहानी याद होगी। रानी आये दिन दर्पण में निहारती थी और दर्पण कहता 'आप सबसे खूबसूरत हैं' तो वह खुश होती थी। उसे हर दिन इस प्रकार आश्वस्त होना पड़ता था। यह एक त्रासदी थी। आधुनिक जीवन में हम लोगों ने अपने बाथरूम में वजन तौलने की मशीन भी रखनी शुरू कर दी है। हमारी खुशियाँ दर्पण और वजन मापक मशीनों पर लटक रही हैं। इस सब में हम कहाँ हैं?

आध्यात्मिकता इन सब बातों को नकारती है। आपका असली स्वरूप वही है जो आप समझते हैं। आप ऊपरी तौर पर बेहद खूबसूरत नजर आते हैं, लेकिन यदि आपकी अन्तर्रात्मा पीड़ित है तो समस्त खूबसूरती व्यर्थ है। यदि आपके भीतर सुन्दरता व्याप्त हो तो भले ही आपकी उम्र कितनी भी अधिक क्यों न हो, आपका चेहरा सर्वाधिक खूबसूरत नजर आयेगा। मुझे नहीं मालूम कि आपमें से कितने लोग भारत होकर आये हैं लेकिन मैंने कुछेक सर्वाधिक खूबसूरत महिलायें देखी हैं वे वृद्ध महिलायें हैं और उनकी उम्र 65 वर्ष के आसपास रही होगी। जीवन की हर छोटी-छोटी पीड़ा और परेशानियाँ उनके चेहरे पर शिल्प की भाँति गुदी हुयी हैं और उनके चेहरे से जीवन झलकता है और आँखों में अपार विनम्रता, प्रेम और करुणा उमड़ती नजर आती है, जो व्यक्तिगत पीड़ा की वजह से उनके जीवन में विकसित हुई है। इनका मेल बेहद खूबसूरत है। सुन्दर न होते हुऐ भी यह मेल सौन्दर्य से ओतप्रोत है।

पुरुष हो या महिला, सभी के पास सौन्दर्य और तंदुरुस्ती का यही पैमाना है। दुर्भाग्यवश, आजकल हम लोग कैलोरी या प्रोटीन या कार्बोहाइड्रेट्स या दर्पण या तौल मापक मशीनों पर निर्भर होते जा रहे हैं। हमारे अन्तर्मन की जो धरोहर होनी चाहिये, उसे तो हमने बाहर फेंक दिया है। अब आप उसे अपने भीतर कैसे पायेंगे? अतः इन बातों पर कृपया विचार करें और यदि सम्भव हो तो स्वीकार करने का प्रयास करें कि जो कुछ मेरे भीतर मौजूद नहीं है वह वास्तव में मेरा नहीं है। किताबें नष्ट हो सकती हैं धन की चोरी हो सकती है और स्वास्थ्य का नाश हो सकता है जो भी गुण हम अपने लिए महत्वपूर्ण समझें, वह एक विनाशी गुण है और यदि आप इजाजत दें तो मैं तो यह कहना चाहूँगा कि यह कहीं अधिक आत्मघाती है।

आप सब जानते हैं कि दो चीजें हैं जो हमारा नाश करती हैं -स्त्री का सौन्दर्य और पुरुष की ताकत। दुर्भाग्यवश हमें इन चीजों के बारे में यूरोप में बात कर रहे हैं जहाँ बहुत ही कम लोग इससे सहमत होंगे। स्त्री का सौन्दर्य उसका सबसे बड़ा दुश्मन होता है क्योंकि लोग उसके पास न तो उसकी खातिर, न उसके दिल की खातिर, न उसकी कोमलता की खातिर, न उसके प्यार की खातिर और न स्नेह की खातिर आते हैं बल्कि उसके चेहरे, होठ और उसके सुडौल शरीर से वशीभूत होकर उसके पास आते हैं। जब पुरुष उससे ऊब जाता है, तो वह दूर चला जाता है और औरत दहाड़ें मार-मार कर रोती है। यही चीज पुरुष के साथ भी घटित होती है। उसका आदर सम्मान उसकी ताकत के कारण होता है। लोग उसके पास इसलिये आते हैं। क्योंकि वह शक्तिशाली है। लोग उसके पैर चाटने के लिए भी तैयार रहते हैं। एक दिन जब उसकी शक्ति खो जाती है, तब कोई उसकी तरफ देखता तक नहीं।

अतः आध्यात्मिकता से हमें यह शिक्षा मिलती है कि हमें रूप लावण्य के सौन्दर्य की भाँति खुशी जैसे गुणों के सौन्दर्य से भी परहेज रखना चाहिये। ऐसा करके हम कुछ ऐसी शाश्वत चीज पाने का प्रयास करते हैं जो हमें भ्रष्ट न कर सके। जिस चीज का स्वभावतः अपना कोई गुण न हो उसे पाकर वास्तव में हमें कुछ नहीं मिलता, लेकिन उसे पाकर हमें दुनिया की हर चीज मिल जाती है, जिसे कोई चुरा नहीं सकता, छीन नहीं सकता तथा भ्रष्ट नहीं कर सकता। मैंने मालिक से पूछा 'वह क्या चीज है'' उन्होंने कहा 'तुम जानते हो। यह आत्मा है।' जब आत्मा दिव्यमयी बन जाये तो लगता है मानों हम इस विश्व या ब्रह्माण्ड के मालिक बन गये हैं।

अब हमें गम छू नहीं सकता और सौभाग्य से खुशी भी प्रभावित नहीं कर

सकती। यह ऐसी चीज है जिसे स्वीकार करना कठिन है। सभी प्राचीन दर्शन शास्त्रों में शिक्षा दी गयी है कि दो चीजें साथ साथ चलती हैं- खुशी और गम, प्रकाश और अंधकार, विवेक और मूर्खता। एक के बिना दूसरे का अस्तित्व नहीं हो सकता। इसलिये हमें इन दोनों से ऊपर उठने की शिक्षा दी जाती है। जैसा कि मैंने शुरुआत में कहा था, 'हमें परख न करने की शिक्षा दी जाती है ताकि हमारी भी परख न हो।' हमें यह अहसास होता है कि परख करने के लिए कुछं है ही नहीं, क्योंकि मेरे भीतर कुछ नहीं होते हुए भी पूरा ब्रह्माण्ड समाया हुआ है। जब हमारे अन्दर कुछ नहीं होता, उसे हम शून्यता कहते हैं। पारखी कौन है? किसकी और क्या परख करनी है? ऐसा व्यक्ति हर आदमी में एक ही चीज देखता है क्योंकि ब्रह्माण्ड में हर व्यक्ति के हृदय में एक ही परम सत्ता विराजमान है। फिर यह सब क्या है? आप पूछ सकते हैं यह व्याख्यान क्यों? यह वार्ता क्यों? यह योग कार्य क्यों? यह उस लैम्प की भाँति है, जिसका शीशा गन्दा हो गया हो। उसे साफ कर दीजिये, प्रकाश फिर जगमगा उठेगा क्योंकि प्रकाश तो वहीं है। इसलिये पूरी चीज असल में शून्य है। हम शुद्ध नहीं बनते। मेरे मालिक की शिक्षा में शुद्ध या अशुद्ध जैसी किसी चीज की मान्यता नहीं दी गयी है। इसमें केवल यह कहा गया है कि हमने अपने कार्यों और विचारों से मूल अवस्था को ढक लिया है। इस आवरण को हटा दीजिये और फिर आपको आन्तरिक परम सत्ता के दर्शन होंगे, जो हमेशा से वहाँ विराजमान थी।

इसीलिये ऐसा व्यक्ति परख नहीं कर सकता क्योंकि वह हर चीज में स्वयं की झलक पाता है। भगवत गीता में एक प्रसिद्ध श्लोक है। उसमें कहा गया है 'जो हर जगह और हर चीज में मुझे देखता है, वही भक्त होता है और उसे और मुझे अलग नहीं किया जा सकता।'

यह कहना भी गलत है कि मालिक करुणामयी हैं। उनमें करुणा या आलोचना का कोई भाव नहीं है। वह न किसी बात की इजाजत देते हैं और न किसी चीज से इनकार करते हैं। वह उन सबको स्वीकार करते हैं जो उनकी सेवा के लिए उनके पास आते हैं जब वह हमारे दुख दर्द को देखते हैं तो मुस्कराते हैं और प्यार से कहते हैं -'थोड़ा इन्तजार करो। मैं अभी तुम्हारा अज्ञान हटा दूँगा। तब तुम्हें पता चलेगा कि तुम कोन हो। तुम परम तत्व का अंश हो।'

इसकी तुलना बच्चों से की जा सकती है। बच्चे अपने माँ बाप जैसा बनना चाहते हैं। नन्हीं लड़की अपनी माँ की नकल करना चाहती है तो नन्हा लड़का अपने बाप की। वे अपने अभिभावकों के कपड़े पहनने का प्रयास करते हैं, उनके जूते

पहनकर उन्हीं के नक्शे कदमों पर चलते हैं। उन्हें देखकर अभिभावक कहते हैं 'इन्तजार करो बेटा (या बेटी)! समय पाकर तुम हमारे जैसे ही बनोगे।'

यह ज्यादा कठिन नहीं है। बच्चा बड़ा होता है उसका शारीरिक विकास होता है। सम्भवतः वह अपने बाप जैसा लम्बा तगड़ा न बने, अपनी माँ जैसा पतले और छोटे कद का बन जाये। चूँकि आन्तरिक दिव्यता प्रकट हो रही है और वह हर जगह एक समान है इसलिये बाप अपने बच्चों को आश्वस्त कर देता है कि तुम मेरे जैसे बन पाओगे बशर्ते तुम वही करो, जो मैंने किया। इसमें संदेह की कोई गुंजाइश नहीं है।

अतः प्रिय बहनों और भाइयों, आज मैंने अपने मालिक के जीवन और शिक्षाओं को आपके सामने रखा है। इसका व्यावहारिक पक्ष बहुत ही आसान है। हम ध्यान करते हैं। अब ध्यान क्या है? मेरे मालिक ने कहा था 'जब हम किसी चीज के बारे में सोचते हैं वही ध्यान है। और उन्होंने कहा कि 'हम सब हर समय ध्यान करते रहते हैं। कोई धन दौलत पर ध्यान कर रहा है कोई अपनी प्रेयसी पर ध्यान कर रहा है कोई सत्ता पर ध्यान कर रहा है और उसे पाना चाहता है। उनकी चाहत पूरी हो जाती है क्योंकि वे उस पर ध्यान कर रहे हैं। वे इसके बारे में केवल सोचते ही नहीं रहते। हम इन चीजों से कहीं ऊँची चीज हृदय में ईश्वरीय प्रकाश पर ध्यान करते हैं और इसके माध्यम से प्रगति करते हुये अपने भीतर परम तत्व के प्रकट होने की अवस्था तक पहुँच जाते है।

यह पद्धति बहुत सरल है। इसका अभ्यास कोई भी व्यक्ति कर सकता है। हमसे प्रायः पूछा जाता है "मैं ईसाई हूँ या मैं बौद्ध अनुयायी हूँ, क्या हम ध्यान कर सकते हैं?" मेरे मालिक ने कहा ' हर मनुष्य ध्यान का अभ्यास कर सकता है।' बहरहाल, आध्यात्मिकता की शुरुआत वहीं से होती है, जहाँ धर्म का अन्त होता है। धर्मों ने हमें हमेशा विभाजित करके रखा है, ईसाई मुसलमानों से लड़ रहे हैं मुसलमान आपस में लड़ रहे हैं और हर व्यक्ति कहता है, 'मेरा भगवान सबसे बड़ा है।' भगवान तो एक ही है लेकिन हम लोग फिर भी इस बात पर सहमत नहीं हो सकते कि हम सबका भगवान एक ही है। दूसरी बात, जो बहुत दुर्भाग्यपूर्ण है, वह यह है कि धर्म में दो हथियारों भय तथा प्रलोभन का हमेशा सहारा लिया गया है। यदि आप गलत काम करते हैं तो नर्क जायेंगे। अतः मेरे पास आओ और गलती कबूल करो। मैं तुम्हारे सारे पाप दूर कर दूँगा। अथवा आप अच्छे काम करते हैं, इसलिये स्वर्ग के भागीदार होंगे। आध्यात्मिकता में भय और प्रलोभन का कोई स्थान नहीं है। आध्यात्मिकता में बहुत स्पष्ट रूप से कहा गया है, 'यदि तुम भयभीत हो तो

अंधेरे या जंगली जानवरों से नहीं बल्कि वास्तव में स्वयं से भयभीत हो। इस प्रवृत्ति को बदल लें फिर डरने की कोई बात नहीं है।'

आध्यात्मिकता में आपके विकास का दायित्व स्वयं आप पर ही डाला गया है। यह न तो आपको प्रलोभन देती है और न ही भयभीत करती है। अतः हमारी आध्यात्मिक पद्धति में कोई नियम तथा विनियम नहीं है सिर्फ यह कहा जाता है 'अपने कल्याण के लिए जीवन को इस ढंग से विनियमित करने का प्रयास करें कि जीवन सार्थक हो तथा प्रातःकाल में एक घंटा, सायंकाल में कोई दस मिनट और सोते समय दस मिनट इसका अभ्यास करें तथा अपने भीतर होने वाले परिवर्तनों को स्वयं देखें क्योंकि प्राणाहुति का सबूत तो भीतर से ही आना चाहिए।

ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो यह कह सके, 'ओह, वह संत है।' संतों की परख उनके चमत्कारों से नहीं होती क्योंकि ऐसे भी संत है जो कभी चमत्कार नहीं करते। अतः कैसे परख की जाय और किसकी? क्योंकि एक नियम है, जिसे हमें कभी नहीं भूलना चाहिये, कि बड़ा छोटे की परख कर सकता है, छोटा बड़े की नहीं। अतः यदि परख करनी भी है तो हमें स्वयं की परख करनी होगी। फिर तो बिना हताशा और बिना आत्मग्लानि के अपने स्वयं पर काम करें। स्वयं को परम सत्य में तब्दील कर लें और सारे झंझटों का अन्त हो जायेगा।

अतः मेरी समझ के आधार पर यह मेरे मालिक का जीवन तथा संदेश था। यदि आपको इस बारे में अधिक जानकारी अथवा साहित्य की जरूरत हो या ध्यान के अभ्यास में कोई मदद चाहिये तो हमारे यहाँ कई लोग हैं जो आपका मार्गदर्शन करने में सक्षम हैं। पतों की एक सूची ले लीजिये। फिलहाल, हम कोरमेटीज में तीन महीने के सेमीनार, साप्ताहिक सेमीनार कर रहे हैं। यदि आप में से कोई या सभी, जो आने तथा बात करने के इच्छुक हों, जरूर आयें मैं आप सभी का वहाँ स्वागत करूँगा, क्योंकि यहाँ मैं चाहे जितनी बात करना चाहूँ, सभी चीजें याद करके बताना असम्भव है। अतः मैं सभी को आमंत्रित करता हूँ कि वहाँ पधारें, पद्धति के बारे में अधिक जानकारी हासिल करें। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप इसका अभ्यास करेंगे और लाभान्वित होंगे।

धन्यवाद।

3

लोक वार्ता

केन्स, फ्रांस

20 जुलाई, 1988

भाइयों और बहिनों,

हम लोग ध्यान करते हैं। मेरे मालिक ने कहा है कि यह आत्मसाक्षात्कार का एक स्वाभाविक तरीका है जिसे सहज मार्ग कहा जाता है। हम सभी ध्यान से वाकिफ हैं। मेरे गुरु, मेरे मालिक के अनुसार किसी चीज के बारे में सोचना ध्यान कहलाता है। हम इसे सहज मार्ग क्यों कहते हैं? भारत में ध्यान के सैकड़ों तरीके हैं। वस्तुतः भारत को ध्यान की जन्म स्थली कहा जा सकता है। हालाँकि लिखित रिकार्ड चार या पाँच हजार वर्ष पुराने है लेकिन इससे पहले शिष्य द्वारा गुरु के मुख से शिक्षा ग्रहण करने की काफी लम्बी परम्परा रही है।

भारत में भी हमारी पद्धति तथा अन्य पद्धतियों के बीच में अन्तर है। अन्य लोग अपने इष्ट देवताओं की आकृति या रूप का इस्तेमाल करते हैं अथवा मंत्रोच्चार करते हैं जिनका कुछ अर्थ और शक्तियाँ मानी गयी हैं। जब हम इसका विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि उनमें से अधिकतर पद्धतियाँ ज्ञान अर्जन के लिए थीं। हठयोग शारीरिक शक्ति के लिए, मंत्र धार्मिक व आत्मिक प्रकृति की शक्तियों के लिए और विभिन्न देवी देवताओं की तस्वीरें लोकोत्तर शक्तियों के लिए हैं जिन्हें दिव्य समझा जाता है। लेकिन सभी मामलों में शक्ति की प्रधानता है।

मेरे मालिक ने कहा 'शक्तियाँ प्राप्त करना हमारे लिए न केवल बुरी बात है बल्कि बाहर से हमें जो शक्ति प्राप्त होती है उन्हें कोई उच्चतर शक्ति हमसें छीन भी सकती है।' यही कारण है कि हिन्दू धार्मिक ग्रन्थों में हमें सही और गलत ताकतों के बीच युद्ध की आश्चर्यजनक कहानियाँ मिलती हैं। इससे भी अधिक आश्चर्यजनक बात यह है कि बुरी ताकतें भी वही शक्तियाँ अथवा उच्चतर शक्तियाँ प्राप्त कर सकती थीं जो अच्छे लोगों को प्राप्त होती थीं। हमारे यहाँ तप की पद्धतियाँ थीं। इन शक्तियों का वरदान देने वाले देवगण अच्छे और बुरे लोगों के बीच अन्तर नहीं कर पाते थे और हरेक व्यक्ति को बिना सोचे समझे वरदान दे दिया करते थे। हमें तो यह बात बेतुकी लगती हैं। इसका अर्थ है कि अच्छा या बुरा, यदि आप सही काम करते हैं तो परिणाम सही ही आना चाहिये।

भारत में यह प्राचीन और महान परम्परा है कि अच्छे और बुरे व्यक्तियों के बीच

वास्तव में कोई अन्तर नहीं है। अच्छाई या बुराई हमारी सोच और कर्म में झलकती है। मेरे विचार में इसी की वजह से उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अन्तर्मन हमेशा दिव्य होता है। अतः भारत में अन्तर्मन, अन्तर्रात्मा को जानने की खोज हमेशा से चली आ रही है।

उसी परम्परा से योग का एक भिन्न स्वरूप सामने आया, जिसे हम राजयोग कहते हैं। राजयोग में शक्तियों की लालसा नहीं की जाती। ऐसा माना जाता है कि यह उच्चतम सम्भव हद तक आत्म विकास का मार्ग है, जिसे मेरे मालिक ने आत्म साक्षात्कार तथा दिव्यकरण को 'मानव की सम्पूर्णता' के रूप में परिभाषित किया है। सहज मार्ग की सहजता का तात्पर्य यह है कि इस पद्धति में हम किसी नाम तथा रूप का सहारा नहीं लेते। ध्यान का केन्द्र बिन्दु हृदय होता है। इसमें शक्ति के लिए कोई उत्कंठा या माँग या प्रार्थना नहीं की जाती क्योंकि आध्यात्मिक विकास के लिए शक्ति अनावश्यक है।

मेरे मालिक ने बताया कि शक्ति का स्वयं में कोई अर्थ नहीं होता क्योंकि जब हम शुद्ध मन और हृदय की सम्पूर्ण पवित्रता के साथ आध्यात्मिक दृष्टि से अपना विकास करते हैं, तो प्रकृति अपनी शक्तियों का विशाल खजाना खोल देती है और ऐसे व्यक्ति के लिए ब्रह्माण्ड की हर शक्ति उपलब्ध रहती है। यह उसकी शक्ति नहीं होती लेकिन वह स्थिति की नजाकत के अनुसार सभी शक्तियों का उपयोग कर सकता है। लेकिन यहाँ कृपया यह याद रखें कि उसे अपने विकास के लिए किसी प्रकार की शक्ति की जरूरत नहीं पड़ती। जब ऐसा व्यक्ति संत बन जाये तो वह प्रकृति के कार्य का एजेंट बन जाता है। अतः प्रकृति अपनी शक्तियाँ उसमें से प्रवाहित करती है।

मेरे मालिक ने यह भी बताया कि ऐसे व्यक्ति को यह आभास ही नहीं रहता कि वह किसी शक्ति का उपयोग कर रहा है। यह उस व्यक्ति विशेष की बहुत बड़ी सुरक्षा का काम कर सकती है क्योंकि जब हमें किसी शक्ति के उपयोग का अहसास रहे तो उसको लेकर हमारे मन में अहंकार आ सकता है। और यही प्रायः उस व्यक्ति के पतन का कारण बनता है। अतः हमारे यहाँ यह प्रसिद्ध उक्ति है, 'सत्ता भ्रष्ट होती है, निरपेक्ष सत्ता महा भ्रष्ट होती है।'

सहज मार्ग की महानता इस बात में निहित है कि हम आत्म विकास के लिए स्वयं का उपयोग करते हैं। हम स्वयं पर स्वयं द्वारा स्वयं के लिए कार्य करते हैं इस प्रक्रिया में हम किसका उपयोग करते हैं? मन का। मेरे मालिक कहते हैं कि मनुष्य के पतन का कारण मन है। मन ही वह साधन भी है जिसका सहारा लेकर

हम ऊपर उठते हैं। अतः राज योग में मन का उपयोग किया जाता है।

हम मन के उपयोग की शुरुआत करें, इससे पहले इसे शुद्ध करना पड़ता है। यौगिक विज्ञान यह शिक्षा देता है कि हर चीज का सूत्रपात मन में होता है और वहीं से वह कार्य में उतरता है। अतः हमें चिंतन कर्म ओर परिणाम हासिल करने की इस प्रक्रिया को शुरू में ही शुद्ध करना पड़ता है। अतः राजयोग में मन को प्रशिक्षित तथा विनियमित करने के लिए मन का ही उपयोग किया जाता है। इसमें गुरु या मालिक की कृपा जरूरी है क्योंकि हम चाहे मन का कितना भी उपयोग करें और चाहे कितना भी सम्पूर्ण बनायें, यदि जिन प्रवृत्तियों को लेकर हम जन्म लेते हें उन्हें नहीं बदला जाता तो मन पहले की भाँति बल्कि उससे भी कहीं अधिक जबर्दस्त ढंग से काम करता रहेगा। सहज मार्ग की शायद बुनियादी तथा सर्वाधिक महत्वपूर्ण तकनीक सफाई पद्धति है। मेरे मालिक की शिक्षा है कि पिछले जन्म के विचारों और कर्मों द्वारा हम अपने ऊपर कुछ छाप बना लेते हैं और ये छाप जब बहुत पुख्ता हो जाती है तो उसी भाँति कार्य का कारण बन जाती है जैसे ग्रामोफोन का रिकार्ड बार-बार वही संगीत सुनाता है।

यदि हमारा मन अधिक प्रशिक्षित और नियमित हो लेकिन हमारी पूर्व जन्म की आन्तरिक प्रवृत्तियों और हमारे अन्दर सृजित परिस्थितियों में कोई परिवर्तन न आये तो हमारे अन्दर किसी गुणात्मक परिवर्तन की सम्भावना नहीं रहती। यही कारण है कि हमारे यहाँ विचित्र सी स्थिति पैदा हो गयी है कि हमारे यहाँ उच्च शिक्षा प्राप्त अपराधी पैदा हो रहे हैं और उससे यही सिद्ध होता है कि शिक्षा पाकर एक अपराधी बेहतर अपराधी बन सकता है।

पिछले युगों के संतों के जीवन पर नजर डालें तो पता चलेगा कि शिक्षा ने कभी कोई संत नहीं पैदा किया। मेरे विचार से मेरा यह कथन गलत नहीं है क्योंकि उनमें से किसी संत के पास अच्छी शिक्षा नहीं थी और अधिकांश महान संतों ने शिक्षा और बौद्धिकता को आशंका की दृष्टि से देखा क्योंकि हजारों वर्षो पहले उन्होंने अपने अनुभव के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला था कि कार का अधिक शक्तिशाली इंजन जब अधिक तेजी से लेकिन गलत दिशा में दौड़े तो आपको गलत दिशा में ही ले जायेगा भले ही तेजी से ले जाये। आपको सही दिशा में ले जाने के लिए अकेला कार का इंजन की पर्याप्त नहीं है।

इसी प्रकार हमारी शारीरिक मानसिक अथवा बौद्धिक सभी प्रकार की शक्तियों के सहारे हम कोई चिंतन या कर्म को अधिक शक्ति और अधिक एकाग्रता के साथ कर सकते हैं अतः मैं फिर दोहराना चाहूँगा कि मनुष्य में कोई गुणात्मक परिवर्तन

नहीं आया है। पाश्चात्य समाज में, जहाँ आज उच्च तकनीकी शिक्षा के भयावह परिणाम सामने आ रहे हैं, लोग इस बात को भली भाँति जानते हैं। अतः आये दिन समाचार पत्रों और पत्रिकाओं में बार-बार यह भय व्यक्त किया जा रहा है कि मानव जाति का अपने ही हाथों विलोप होने वाला है।

पुराने युग में ऐसा समय था जब मानव जाति को जानवरों, अन्य जीवों तथा प्रकृति से खतरा था। लेकिन आज मनुष्य गर्व के साथ यह दावा करता है कि हमने प्रकृति पर विजय प्राप्त कर ली है। हाँ, यह सही है। लेकिन क्या उसने स्वयं को तब्दील कर मानवीय गुण अपनाये हैं? मेरे मालिक ने अपनी एक बुनियादी शिक्षा में हमेशा कहा है कि हममें से अधिकतर लोग जब जन्म लेते हैं तो पशुवत होते हैं। इसका ये अर्थ नहीं कि हमारी शक्लें पशुओं जैसी होती हैं बल्कि हमारे अन्दर क्रोध, काम, लोभ और धन लोलुपता जैसी प्रवृत्तियाँ होती हैं। शिक्षा का प्रथम उद्देश्य इन प्रवृत्तियों को मिटाना होता है अथवा होना चाहिये।

लेकिन मैं दोहराना चाहूँगा कि शिक्षा ने धन लोलुप व्यक्ति को और अधिक धन लोलुप बनाया है और उसे अपने लिए अधिक धन कमाये की क्षमता प्रदान की है। शिक्षा की बदौलत स्वार्थी व्यक्ति और उत्कृष्ट ढंग से अधिक स्वार्थी बन गया है। पुराने समय में अपराधी तीर, भाले, जैसे हथियारों से अपराध करते थे लेकिन आधुनिक अपराधियों के पास हाईटेक औजार, हाईटेक संचार सुविधायें हैं और शायद वे अपनी अपराधिक योजनायें कम्प्यूटर पर तैयार करते हैं। वे लगभग परिपूर्ण अपराधी बन गये हैं।

मुझे याद है दस बारह वर्ष पहले नाईस में एक बड़ी बैंक डकैती हुई थी जहाँ इतने व्यस्त शहर में अपराधी भूमि में सुरंग खोदकर बैंक के अन्दर घुस गये थे। मनुष्य तो वहीं का वहीं है। उसकी यह क्षमता शिक्षा का परिणाम है। इससे भी अधिक भयावह क्षमतायें मनुष्य ने विकसित कर रखी हैं जैसे एटमबम, परमाणु बम और लैजर गन आदि। आज अधिकतर मनुष्य मानसिक आघात के भय से पीड़ित हैं। वे शान्ति से सो भी नहीं पाते।

इस प्रकार इसमें कोई आश्चर्य नहीं है कि प्राचीन समय में शिक्षा को आशंका की दृष्टि से देखा जाता था। दुर्भाग्यवश, आज शिक्षा अपनी ही सुरक्षा करने में लगी है क्योंकि शिक्षक भी किसी न किसी दृष्टि से भ्रष्ट है। एक भ्रष्ट डाक्टर को उसका व्यवसाय सुरक्षा प्रदान करता है। इसके लिए पाखण्डपूर्व शपथ ली/दिलायी जाती है। इंजीनियरों और विमान चालन से जुड़े व्यक्तियों के साथ भी यही स्थिति है। मोटी मोटी तनख्वाह पाने वाले पायलट हर तीसरे दिन हड़ताल पर चले जाते

हैं। उनकी माँगे बढ़ती रहती हैं। चूँकि उनमें सारे आवागमन को ठप करने और देश में अफरा-तफरी का माहौल पैदा करने की क्षमता है, इसलिये हमेशा समझौता होता है। उन्हें अधिक सहूलियतें दी जाती हैं। कीमतें बढ़ रही हैं। टिकट किराया बढ़ाया जाता है जिसका भार आप और हम उठाते हैं। शिक्षा से व्यक्ति का शोधन नहीं हुआ और समृद्धि ने उसे बेहतर इंसान नहीं बनाया। समृद्धशाली व्यक्ति पहले से भी अधिक स्वार्थी बन गये हैं। हमारी जरूरतें बढ़ती ही जा रही हैं।

आप में से कुछ ने चार्ल्स डिकिंस का वह उपन्यास पढ़ा होगा, जिसमें स्कूल में पढ़ने वाले बहिष्कृत जाति के एक गरीब लड़के को एक कटोरी भर दलिया दिया जाता है। जब उसने अधिक दलिया माँगने की हिम्मत जुटायी क्यों वह भूखा था तो उसकी पिटाई की गयी। गरीब व्यक्ति अधिक की माँग नहीं कर सकता। आज के समाज को ही लीजिये। हम समाज के कमजोर वर्गों का शोषण कर सकते हैं या तो हम उसे कम पैसे देते हैं या उसका मेहनताना स्थिर रखते हैं और अधिक काम लेते हैं समाज के उच्चतम स्तरों पर बैठे लोगों की तनख्वाह आये साल मात्र इसलिये बढ़ायी जाती है, क्योंकि उनमें अपनी माँगे मनवाने का दमखम है। जहाँ तक मूल मानवीय मूल्यों में इजाफे का सवाल है इसमें शिक्षा का कोई विशेष महत्व नहीं है। शिक्षा ने तो मनुष्य को अधिक स्वार्थी, अधिक भ्रष्ट, अधिक लोभी, अधिक अपराधिक प्रवृत्ति वाला बनाया है।

यदा कदा ऐसा हुआ है कि शुद्ध अन्तःकरण वाले व्यक्ति को शिक्षा ने अधिक शुद्ध, अधिक महान, अधिक दिव्य बनने में मदद की हो। लेकिन समाज की बुराइयों के लिये मैं तो अधिकांशतः शिक्षा को ही दोषी मानता हूँ मान लीजिये, मनुष्य के नैतिक गुणों में कोई सुधार नहीं हुआ तो उसके लिए शिक्षा प्रत्यक्ष रूप से जिम्मेदार है क्योंकि इसी से अधोपतन सम्भव है। मैं आपके सामने प्राचीन योगियों और संतों का वह तर्क प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूँ जिसमें उन्होंने शिक्षा के बारे में अपना पूरा अविश्वास जताया था। उन्होंने मन और बुद्धि से परे हटकर दिल को महत्व दिया। भगवान ने हमें न केवल मन दिया है बल्कि दिल भी दिया है। लेकिन हम लोग दिल को लगभग भूल चुके हैं।

आजकल हम प्रेम के बारे में बहुत बातें करते हैं। मुझे नहीं लगता कि किसी को भी ये मालूम हो कि वह असल में किस को प्रेम करता है। मेरा तात्पर्य यह है कि आज दिल को छोड़कर सभी प्रकार की चीजों का उपयोग प्रेम के लिए किया जाता है। माफ कीजिये लेकिन ये सत्य है और आप सभी इससे वाकिफ हैं। यूरोप में, खासकर पाश्चात्य जगत में पिछले पचास-साठ सालों से नैतिक मूल्यों में रियायत

देने की वजह से बहुत विनाश हुआ है समाज में तलाक का ताण्डव नृत्य हो रहा है। तथाकथित प्रेमी माता पिताओं से उनके बच्चों को अलग किया जा रहा है। समाज में केवल हमारा स्तर ही भ्रष्ट नहीं हुआ है बल्कि हम अपने बच्चों को वैमनस्य, असुरक्षा और कटुता भरा माहौल दे रहे हैं, जो आज के तथाकथित घरों और परिवारों में देखने को मिलता है।

अब समय आ गया है कि हम अपने मूल्यों की नये सिरे से जाँच करें, जिन साधनों का हम उपयोग करते हैं उनकी क्षमता का पुनः मूल्यांकन करें और अपने जीवन लक्ष्यों को पुनः परिभाषित करें। ये तीनों बहुत महत्वपूर्ण हैं। जहाँ तक पहले मुद्दे का सवाल है हमें यह भी समझना जरूरी है कि मस्तिष्क और बुद्धि में हमेशा से एक द्वन्द की स्थिति रही है। जैसा कि मेरे मालिक बार-बार कहा करते थे ज्ञान मस्तिष्क (सिर की ओर इशारा करते हुये) में रहता है लेकिन सत्य का निवास दिल में होता हैं आज हममें सत्य का अभाव है। हम साधारण सत्य बता सकते हैं जैसे सही आयु, नाम, सही पासपोर्ट रखना आदि। लेकिन हमारी स्थिति हिमशैल जैसी है, जिसका एक हिस्सा पानी के ऊपर होता है तो सात हिस्सा पानी के भीतर। शायद हम नीचे अधिक हैं और ऊपर कम, क्योंकि हम अपने बच्चों, अपनी पत्नियों और अपने पतियों से जो झूठ बोलते हैं, वे सब हमारे दिल की गहराइयों में छुपे पड़े रहते हैं। बुद्धि हमारे लिए बहुत ही सहज साधन है, जिसके बल पर हम ये झूठ और बहाने गढ़ते हैं।

कृपया यह भ्रान्ति न पालें कि मैं यहाँ मनुष्य की आलोचना करने आया हूँ। मैं भी आप में से एक हूँ। लेकिन मैं आप लोगों को यह स्मरण कराना चाहूँगा कि आपका समाज समृद्ध समाज है, औद्योगिक समाज है फिर भी इस समाज की बुनियाद स्वार्थ पर टिकी हुई है। यह समृद्धि केवल फ्रांस या केवल जर्मनी या केवल डेनमार्क के लिए है तथा इस समृद्धि रूपी आधुनिक भगवान की सुरक्षा के लिए सीमाओं को चौकस किया जा रहा है।

जैसा कि आप जानते हैं आज हमारे यहाँ एक नया भगवान है। उसका नाम है 'जीवन स्तर'। ये हमारे लिए बहुत महत्वपूर्ण है। हम अपने गद्दों, तकियों, बढ़िया फर्नीचर और एयरकंडीशनर्स आदि के बिना काम नहीं चला सकते भले ही यूरोप में एक व्यक्ति को सुखी और खुशहाल रखने के लिए अन्यत्र सैकड़ों व्यक्ति मौत के मुँह में क्यों न चले जायें। कहने का तात्पर्य यह है कि मेरे लिये इस परिचर्चा को और विस्तार देने की जरूरत नहीं है। सत्य का आप सभी को ज्ञान है। यदि आप में से कोई यह कहे कि एक साझा यूरोप बनने वाला है जिसके भीतर सरहदें

नहीं होंगी, तो यह केवल स्वार्थ, लोभ और गरीबों के शोषण के इस परिसंघ को मजबूत बनाने का ही प्रयास होगा।

यह स्वस्थ जीवन स्तर नहीं है क्या प्रमाण है? प्रमाण है आपके अपने डाक्टर, क्लीनिक, हृदय रोगियों की संख्या, मानसिक रोगियों की संख्या और औषधि विक्रेताओं की संख्या। आश्चर्य जनक या यूँ कहें कि दुःखद आश्चर्य की बात यह है कि विश्व के अविकसित देश ऐसी दवाइयाँ बना रहे हैं जो आपकी भावी पीढ़ी के बच्चों को मार रही है। वे इतने समझदार हैं कि स्वयं इसका उपयोग नहीं करते। वे जानते हैं कि यह खतरनाक हैं। बड़े पाश्चात्य, बौद्धिक और औद्योगिक देश, उच्च जीवनस्तर के शिकार हम लोग इतने नासमझ हैं कि अपना भला भुरा भी नहीं जानते। इस बात को परखने के लिए जरा गली में तो झाँकिये। मेरे विचार में बहुत ही कम परिवार ऐसे होंगे जहाँ तलाक, खण्डित परिवार, टूटे दिल, नशेड़ी बच्चों की त्रासदी मौजूद न हो। यदि आज कोई ऐसा परिवार मौजूद है तो वास्तव में बहुत सौभाग्यशाली परिवार होगा।

अतः राजयोग भी धन अर्जन और शिक्षा को लेकर बहुत आशंकित रहा है। उन्होंने हमेशा दिल को अहमियत दी क्योंकि यह मानव बुद्धि का एक पहलू रहा है। शुरुआत में ही हमने यह समझ लिया है कि मानव का असली गुण उसके दिल से व्यक्त किया जाता है। हम सब जानते हैं। एक व्यक्ति बहुत बुद्धिमान है लेकिन यदि उसके पास दिल न हो तो उसे हृदयहीन (निष्ठुर) व्यक्ति कहा जायेगा। उसके पास भले ही भौतिक शास्त्र में डिग्री हो, दूसरी रसायन शास्त्र में और तीसरी समाज शास्त्र में पी.एच.डी. की डिग्रियाँ हों, लेकिन ऐसे व्यक्ति के बारे में यही कहा जायेगा कि वह हृदय विहीन (निर्दयी) व्यक्ति है।

हमने अपनी सहज बुद्धि से यह मान लिया है इसीलिये हम दिल की ओर उन्मुख होते हैं। शायद डाक्टर लोग भी यह कहते होंगे 'विश्व में हृदय रोग की अचानक इतनी भरमार क्यों हो रही है?' क्या नैतिक पतन और भौतिक पतन के बीच कोई सम्बन्ध है? मुझे याद है कि अपनी किशोर अवस्था में मैंने हृदयघात के बारे में बहुत कम सुना था। आजकल इसमें इतनी तादाद में वृद्धि क्यों हो गयी? यही बात कैंसर पर भी लागू होती है। क्यों? मनुष्य को ये सब बीमारियाँ अचानक क्यों लग रही हैं? आप जवाब जानते हैं, लेकिन कहने से कतराते हैं। मैं कहने से नहीं डरता कि इसका कारण है नैतिकता! और हमारे अनैतिक जीवन का ताजा उदाहरण है- एड्स।

जरा सभी पुरानी सभ्यताओं को याद कीजिये, चाह वह मध्यपूर्व की सभ्यता

हो चाहे यूनान अथवा रोम अथवा बेबीलोन सभ्यतायें हों उन सबके पतन का कारण मानवीय कमजोरी रहा और नैतिकता गायब हो गयी। शायद इसी अर्थ में प्रलोभन द्वारा पतन की ईसाई पद्धति है। ऐसा माना जाता है कि वह प्रथम अनैतिक कार्य था। यह सही है या गलत, सत्य है या असत्य, मैं नहीं जानता, लेकिन हमारे लिए इस पर विचार करना बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि समाज का पतन हमेशा इसी कारण से हुआ है।

अतः आइये पुनः योग पर आते हैं। योग के लिए ऐसी शक्ति तथा बुद्धि की जरूरत नहीं पड़ती। हमारे यहाँ योगी के तीन मापदण्ड हैं। वे सभी शक्तियों से परहेज करते हैं। मैं उन सच्चे योगियों की बात कर रहा हूँ जिनका उद्देश्य ईश्वर से साक्षात्कार का है न कि आपको प्रेम प्रसंग में अथवा नया रोजगार पा जाने में मदद कर देना आदि। सच्चे योगी शक्तियों से दूर रहते हैं, ज्ञान से दूर रहते हैं और धन सम्पदा से दूर रहते हैं। धन भी एक शक्ति है। पूँजीवाद इसका उदाहरण है। ज्ञान भी एक शक्ति है। इसीलिये शिक्षित व्यक्ति अपनी मनमानी माँगे पूरी करवा लेता है। शक्ति वास्तव में स्वयं में एक कच्ची शक्ति है। शक्ति के कई रूप हैं जैसे राजनैतिक शक्ति, हथियारों की शक्ति तथा उपकरणों की शक्ति, आदि।

इस प्रकार जीवन के आध्यात्मिक पक्ष में एक आश्चर्यजनक परिवर्तन आया है। ये उस समय की बात है जब राजयोग ने वास्तव में आध्यात्मिक अभ्यास को एक पद्धति के रूप में मानकर अपना स्थान बनाया था। सहज मार्ग राजयोग की एक अधिक परिशोधित पद्धति है क्योंकि इसमें हम मन का इस्तेमाल उसको प्रशिक्षित करने के लिए करते हैं। जैसा कि मैंने शुरू में कहा था। कहने का अर्थ यह है कि हम स्वयं को स्वयं द्वारा स्वयं पर कार्य करने के लिए प्रशिक्षित करते हैं इसलिये शुरुआत में हमारे पास एक ऐसा मन होना चाहिये जो ये सब करने में सक्षम हो। अतः दुर्भाग्यवश राजयोग मानसिक रूप से विक्षिप्त व्यक्तियों के लिए उपलब्ध नहीं है। यह सम्भव भी नहीं है।

पाश्चात्य जगत के लोगों को यह बहुत नकारात्मक लग सकता है कि हमें बिना शक्ति, बिना ज्ञान तथा बिना धन के जीना पड़ता है। लेकिन योगियों अथवा मेरे गुरु मालिक का यह इरादा नहीं था। समस्त यौगिक अभ्यास में हमसे यह अपेक्षा की जाती है कि हम इन चीजों से अपनी आसक्ति हटा लें। ज्ञान, धन अथवा शक्ति के लिए जीने के बजाय हम स्वयं के लिए जीयें और अपने आन्तरिक परमतत्व, अपनी आन्तरिक दशा, अपने आन्तरिक गुणों को सुधारने का प्रयास करें ताकि सम्पूर्णता की ऐसी नैतिक अवस्था में पहुँच सकें, जहाँ ऐसे व्यक्ति के लिए सभी

चीजें साधन बन जाती हैं। अब वह धन का इस्तेमाल अपने लिए नहीं बल्कि आम भलाई के लिए, शक्ति का इस्तेमाल लोगों के उत्थान के लिए और शिक्षा का इस्तेमाल भी उनकी भलाई करने में समर्थ हो जाता है।

इस प्रकार मानव का स्वार्थ अब मानवता का हित चिंतन बन जाता है। इसीलिये पूरबी परम्पराओं में नैतिक दृष्टि से परिपूर्ण व्यक्ति को शक्ति प्रदान की जाती है। लेकिन आज किसी भी व्यक्ति को जो बड़ा और ताकतवर नजर आता है, शक्ति प्रदान कर दी जाती है। यदि वह शिक्षित व्यक्ति हो तो लोग सोचते हैं कि शक्ति का उपयोग करने के लिए बेहतर व्यक्ति होगा। तभी हम पाते हैं कि वे बन्दूक लेकर लोगों को मारते हुये घूम रहे हैं और भले लोगों और बच्चों की हत्या कर रहे हैं। मैंने कल के ही समाचार पत्र में पढ़ा था कि अमेरिका में एक व्यक्ति ने अचानक बन्दूक निकालकर छह या सात लोगों को भून डाला। हाँ, मनोवैज्ञानिक इसकी कई ढंग से व्याख्या करने का प्रयास करेंगे और सम्भवतः वे सही हों। सम्भवतः। लेकिन इससे सात मृत व्यक्तियों का जीवन वापस तो नहीं आता।

लेकिन आपके पास तो 'जीवन स्तर' रूपी पवित्र गाय है और अमरीका वासी इस पर अपनी बन्दूक की आजमाइश करना चाहता है। अमरीका में बन्दूक के बारे में कोई कारगर कानून नहीं है। हमें वह प्राचीन कहावत याद रखनी होगी, 'जो तलवार के बल पर जीता है तलवार से ही मरता है।' इसकी सच्चाई जानने के लिये अखबार पढ़ना ही पर्याप्त है। धनी लोग अपने धन की वजह से मरते हैं शक्तिशाली लोग शक्ति की वजह से मरते हैं खूबसूरत औरत को अपने सौन्दर्य की वजह से परेशानी झेलनी पड़ती है। खूबसूरत महिलाओं को वास्तव में खुशहाल जीवन बहुत ही कम नसीब होता है, क्योंकि सौन्दर्य भी एक शक्ति है।

सौन्दर्य प्रसाधनों के इस्तेमाल से अधिक खूबसूरत दिखने की लालसा के पीछे हमारा असली लक्ष्य क्या है? हम और अधिक दुखी बनने की कोशिश कर रहे हैं। मेरे वर्तमान मालिक से पहले मेरे एक गुरु मजाक में कहा करते थे 'यदि आप अमीर हैं तो चोरों का निशाना बनते हैं। यदि आप शक्ति सम्पन्न हैं तो अपराधी प्रवृत्ति वाले व्यक्तियों के लिए आकर्षण का कारण बनते हैं। यदि आप खूबसूरत हैं तो आप केवल उन्हीं व्यक्तियों को आकर्षित करते हैं जिनके पास कामुकता के अलावा कुछ नहीं है। 'मैंने उनसे पूछा कि ऐसा क्यों हैं? उन्होंने मुस्कराते हुये कहा, 'जब आपकी टेबल पर शहद गिर जाये तो वहाँ कीड़े मकोड़े ही तो आयेंगे।'

यह बात सभी प्रकार की शक्तियों के बारे में सही है भले ही धन बल हो या बुद्धि बल या फिर सौन्दर्य बल। यह हमेशा निचले स्तर के व्यक्तियों को आकर्षित

करता है। ऊँचे स्तरों के व्यक्तियों को कभी नहीं। अतः राजयोग का यह महत्वपूर्ण तर्क अधिक प्रासंगिक है, 'इन चीजो को भूल जायें'। यदि आप दुर्भाग्यवश अमीर हैं या खूबसूरत महिला हैं या राजा के रूप में किसी शक्ति सम्पन्न परिवार में जन्मे हैं तो इन सबका मोह छोड़ दें।

जब मैं स्कूल में पढ़ा करता था, उस समय यह जानकार मंत्र मुग्ध हो गया था कि इंग्लैण्ड के शासक ने एक महिला के प्रेम की खातिर अपनी राजगद्दी त्याग दी थी। मेरा तात्पर्य यह है कि एक राजा के लिए उस युग में एक औरत की खातिर राजगद्दी ठुकराना बहुत बड़ी बात थी। तर्क तो यह कहता है कि उसे तो चाहे जितनी खूबसूरत औरतें मिल सकती थीं। क्या किसी राजा को माँगने की नौबत आती है? फिर भी उसने सबसे बड़े साम्राज्य ब्रिटिश साम्राज्य का राजपाट छोड़ दिया। यह प्रेम की शक्ति है। मैं आपको यह उदाहरण क्यों दे रहा हूँ? यह दर्शाने के लिए प्रेम त्याग करना जानता है, लेना नहीं। उसने एक खूबसूरत औरत के प्रेम की खातिर सब कुछ त्याग दिया महान संतों और व्यक्तियों ने भगवान की खातिर, जिसे हम न देख सकते हैं, न महसूस कर सकते हैं, अपना पूरा जीवन लगा दिया।

प्रेम की ताकत ऐसी होती है कि उसमें बड़े से बड़ा त्याग सम्भव है। धन से अधिक धन तो कमाया जा सकता है, लेकिन इससे आपको खुशी नहीं मिल सकती। धन आपको नैतिक मूल्य नहीं दे सकता। इसी कारण परम्परा में हमेशा उन अमीर लोगों का वर्णन आता है जिन्होंने अपनी धन दौलत का त्याग कर दिया। इन विवेकशील व्यक्तियों ने इस बात को सहज ज्ञान से समझ लिया था। अतः मेरे मालिक ने सहज मार्ग पद्धति को 'हृदय पथ' की संज्ञा दी थी। हम मानते हैं कि हमें अन्य दूसरी चीजों की भाँति दिमाग, पेट आदि की जरूरत पड़ती है। इनसे हमें अपने लक्ष्य तक पहुँचने में मदद मिलती है। वस्तुतः सभी महान मनीषियों का कहना है कि 'जीवन स्वयं में एक ऐसा वाहन है जो हमें जीवन के उच्चतर पहलुओं तक ले जाता है।' यदि जीवन का यह उद्देश्य पूरा नहीं होता तो हमें उसके पूरा होने तक यहाँ रहना पड़ता है।

भारतीय परम्परा और अन्य परम्पराओं के बीच एक बड़ा अन्तर है। सहज मार्ग पद्धति में किसी दण्ड या प्रोत्साहन की व्यवस्था नहीं है। न पाप है न पुण्य। आधे घंटे तक नैतिक मूल्यों की चर्चा करने के बाद यदि मैं यह कहूँ कि मेरे मालिक के मतानुसार, नैतिकता वही है जो मुझे ऊपर की ओर उठने के लिए प्रेरित करती रहती है, जो आपको आश्चर्य होगा। किसी व्यक्ति का धन न लेना अथवा किसी की पत्नी न चुराना आदि बहुत ही साधारण नैतिकता के उदाहरण हैं। यदि कोई पुरुष

किसी महिला के साथ अभद्र व्यवहार करता है तो यह अपराध है लेकिन आज हर व्यक्ति यही अपराध कर रहा है इसलिये यह सहज बात हो गयी है।

एक समय था जब मैं किशोर अवस्था में था उस समय यदि कोई पुरुष और स्त्री साथ-साथ जा रहे हों और आपने पूछ लिया 'क्या आप विवाहित हैं?' तो शायद आपकी खैर नहीं। आज यदि उनसे पूछें (धीरे से मुस्कुराते हुये) क्या आप विवाहित हैं? कमोवेश हमेशा यही उत्तर मिलेगा 'जी हाँ।' अब हमने यह सोचकर कि जो काम हर व्यक्ति कर रहा है वह सही ही होगा, स्वयं को एक झूठी सुरक्षा और झूठी सामाजिक स्वीकृति से बहला लिया है। सामान्यतः यह हमेशा गलत होता है। यदि आप सदियों के मानव इतिहास और मानव विकास का अध्ययन करें तो पायेंगे कि अच्छे महान काम हमेशा समाज के उच्च नैतिक वर्गों के गिने चुने लोगों द्वारा किये जाते रहे हैं। इसलिये यह तर्क कि 'हर व्यक्ति ऐसा कर रहा है मैं क्या कर सकता हूँ?' किसी गलत बात को सही नहीं ठहरा सकता।

मेरे मालिक के शब्दों में योग कहता है, 'इस जीवन पद्धति, दुखद स्थिति, भग्न हृदय समाज में कानून द्वारा अथवा उपदेश देकर सुधार नहीं लाया जा सकता।' आपको यह बताने की जरूरत नहीं है कि इस काम में सरकारें असफल रहीं हैं और चर्च भी असफल हो गये हैं क्योंकि दोनों ही मानव हृदय को छूने में असफल रहे हैं जब तक हृदय परिवर्तन नहीं होगा, जब तक हृदय जिसे सही मानता है उसमें परिवर्तन नहीं होगा और जब तक हम हृदय की आवाज को स्वीकार करने के लिए तत्पर नहीं होंगे, तब तक हमारी स्थिति ढलान में तेजी से जा रही गाड़ी के समान रहेगी। ऐसे में तो हम टकराकर चूर-चूर हो जायेंगे। हृदय की प्रवृत्तियों को परिशाधित करके तथा हृदय को निर्मल बनाकर ही दिशा परिवर्तन किया जा सकता है। यह मानते हुये कि हमारी आत्मा की आवाज वास्तव में बंद हो गयी है, सहज मार्ग की यौगिक पद्धति में हम दिशा परिवर्तन करने का प्रयास कर रहे हैं। सौभाग्यवश, अन्तर्रात्मा की आवाज आज भी मौजूद है, लेकिन वह इतनी कमजोर पड़ गयी है कि इसे सुन नहीं सकते। हम उसकी जितनी अवहेलना करेंगे वह उतनी ही कमजोर पड़ती जायेगी।

अन्तर्रात्मा को पुनः खुले आसमान में लाने और हमारे जीवन का मार्ग दर्शन करने के लिए एक प्रभावी साधन बनाने का एक ही तरीका है और वह है हृदय को निर्मल बनाना और इसे अधिक तरजीह देना तथा साथ ही अपने जीवन को हृदय के अनुसार ढालना। कम से कम शुरू में यह एक भयावह काम है। मेरे साथ तो ऐसा था। मुझे विश्वास है कि आपके लिये यह और भी भयावह होगा। क्योंकि

इसकी पहली माँग यह है कि आप अपने वर्तमान जीवन की सच्चाई को समझें। इसके लिये भगवान के समक्ष या चर्च में अपने गुनाहों को कबूल करने की जरूरत नहीं। न ही इसके लिये स्वयं को कोड़े मारने या प्रताड़ित करने की जरूरत है, क्योंकि कोई भी शारीरिक सजा दिल को नहीं सुधार सकती। ऐसा होता तो हमारे सभी कैदी संत बन गये होते। लेकिन यह सर्वविदित है कि जब कोई व्यक्ति जेल में जाता है तो वह वहाँ से बिगड़ कर ही आता है। बहरहाल, सच्चाई का तो सामना करना ही पड़ेगा। अधिकतर लोग ऐसा करने से कतराते हैं क्योंकि उनका सोचना है कि उन्हें तत्काल अपने धन और कपड़ों का त्याग करना पड़ेगा, अपनी कारें बेचनी पड़ेंगी।

यदि आप गलत दिशा में जा रहे हैं। तो अपनी कार की दिशा को सुधारने में आपको कितना समय लगेगा? कुछेक मिनट। इसके लिए आपको कार से बाहर भी नहीं आना पड़ता। वस्तुतः यदि आप कार से बाहर आते भी हैं तो भी आप कार की दिशा को नहीं बदल सकते। इसके लिए आपको कार के अन्दर ही रहना पड़ेगा और यह मानना पड़ेगा कि आप गलत हैं और कार की शक्ति का इस्तेमाल उसकी दिशा परिवर्तन के लिये करना होगा तभी आप अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच पायेंगे। यौगिक जीवन में तो आपको ये सब करने की जरूरत नहीं है जब तब आपको ये ज्ञात न हो कि आप गलत दिशा में हैं, आप अपनी दिशा नहीं बदल सकते।

अतः यह स्वीकार करना बहुत महत्वपूर्ण है कि आप गलत दिशा में जा रहे हैं क्योंकि जब तक आप ये सोचेंगे कि आप सही हैं तब तो भगवान भी आपको नहीं बदल सकते। भगवान की भी जरूरत नहीं पड़ती। हम अपनी कारों की दिशा को बदलने के लिए तो भगवान को याद नहीं करते। वह तो हम स्वयं बदल लेते हैं। यहाँ भी हमारे स्वयं के लिए ऐसा करना सम्भव है। आप ऐसा करने में कैसे समर्थ हैं, हम अपनी यौगिक पद्धति में यही समझाने का प्रयास करते हैं।

हम ध्यान की शुरुआत हृदय से करते हैं और हृदय को जीवन में महत्वपूर्ण स्थान देते हैं। हृदय में ईश्वरीय प्रकाश के रूप में गुरु या मालिक की सहायता से परम तत्व पर ध्यान करके हम अपना ध्यान अधिक से अधिक अन्दर की ओर, अधिक से अधिक हृदय की ओर मोड़ने में सफल होते हैं और अन्ततोगत्वा ये हमारे जीव का दिशा निर्देशक बन जाता है। हृदय का उद्देश्य जीवन का उद्देश्य बन जाता है। तभी हमारे हृदय में यह चमत्कारिक परिवर्तन आता है कि जीवन को एक ऐसा उद्देश्य मिलने लगता है जिसे हम दिल से महसूस करने लगते हैं। अब हमारे जीवन में प्रेम का आगमन शुरू हो जाता है समाज के तथाकथित झूठे प्रेम का नहीं

बल्कि सच्चे प्रेम का आगमन। वह प्रेम जो बिना माँगे ही सब कुछ देता हो। यह प्रेम की सच्चाई है। प्रेम जब माँग करने लगता है तो वह प्रेम नहीं रहता है, वह लज्जा बन जाती है। ये परले सिरे का पाखण्ड है। यह उतनी ही बुरी बात है जितनी कि अमीर व्यक्ति अधिक धन पाना चाहे तथा शक्तिशाली राष्ट्र अधिक शक्ति की लालसा रखे। वे अपने परमाणु बमों और न्यूट्रोन बमों से संतुष्ट नहीं रहते बल्कि स्टार वार प्रोग्राम्स की लालसा करते हैं।

भ्रष्ट्राचार की जड़ें हृदय में पनपती हैं। 'मेरा जीवन बहुत महत्वपूर्ण है। मुझे खुशहाल जीवन जीना है। मुझे अमीर बनना है। मेरे पास इस दुनिया का बड़े से बड़ा महल हो, दूसरे व्यक्ति भाड़ में जायें'। आपमें से जिन लोगों ने इस कठिन पथ को चुना है, उनको मैं पूरी तरह प्रमाणित करता हूँ कि शुरू-शुरू में यह बहुत कठिन लगता है। रास्ता कठिन नहीं है बल्कि हमारा भय इसे कठिन बना देता है। मैं पिछले दो महीने से कोरमैट्स में रह रहा हूँ। हमारे पीछे एक छोटी सी पहाड़ी है, यही कोई सैकड़ों मीटर की। यह कोई खास ऊँची नहीं है, लेकिन मैं पहाड़ों से इतना डरता हूँ कि मैं उस पर चढ़ नहीं पाया हूँ। लेकिन मेरा कोई जवान साथी कहे, 'आइये आप उस पर चढ़ जायेंगे?' तो मैं सम्भवतः हर रोज थोड़ा थोड़ा अभ्यास करके एक दिन उस पहाड़ पर चढ़ने में सफल हो जाऊँगा। यह आश्चर्यजनक लेकिन बहुत सहज और सच बात है कि आप कोई काम जितना अधिक करें, उसमें उतने ही पारंगत होते जायेंगे। केवल शुरुआत करना ही कठिन है।

अमेरिका में एक कहावत है, 'पहला मिलियन मुश्किल है, इसके बाद आगे के मिलियन अपने आप बनते चले जाते हैं'। इसके लिए आपकी जरूरत नहीं पड़ती। पैसा स्वयं पैसा बनाने लगता है। यह सच है, क्योंकि अमीरों को कुछ नहीं करना पड़ता और उनके काम स्वतः ही चल पड़ते हैं। इसलिये अधिक से अधिक उद्योग लगा लेते हैं, अधिक भ्रष्ट संगठन बना लेते हैं और बड़े -बड़े संगठन खड़े कर लेते हैं जो स्वयं ही चलते रहते हैं। उनकी अपार धन सम्पदा और व्यर्थ समय नष्ट करने के लिए कैन्स और मानाको जैसे स्थान मौजूद हैं। आपको एक पुरानी अंग्रेजी कहावत ज्ञात होगी, "A fool and his money are easily parted" (इसका हिन्दी समानान्तर यह हो सकता है कि चोरी का धन मोरी में) अमीर पाँच पैसे खर्च करता है तो उसे दस पैसे कमाने पड़ते हैं। अब उनकी स्थिति की कल्पना कीजिये। उनका पैसा दवा-दारू और औरतों पर खर्च होता है। तो यह है शक्ति और शिक्षा की हालत।

जब हम ध्यान करते हैं और हृदय को अपने जीवन का महत्वपूर्ण अंग बना लेते

हैं, तब हमें अहसास होता है कि वास्तव में कोई घटना घटित हुई है। अब हम निर्भय होकर त्याग कर सकते हैं। कृपया इसे भली-भाँति समझ लीजिये कि जब हम निर्भय होकर ले सकते हैं, तभी निर्भय होकर दे सकते हैं। दान करना कोई आसान काम नहीं है। हम जितना अमीर बनते चले जाते हैं, दान करना उतना ही कठिन होता जाता है। गरीब व्यक्ति जानता है कि वह फाँके में गुजारा कर सकता है, इसलिये उसे अपनी आधी रोटी और थोड़े से चीज़ में से देते हुये जोर नहीं पड़ता। लेकिन किसी अमीर आदमी के लिए धन सम्पदा उसकी खुशी और सुरक्षा का खजाना है। जब जब वह उसमें से दूसरों को कुछ देता है, सोचता है कि उसकी सुरक्षा कम हो गयी और उसके भविष्य को खतरा पैदा हो गया। इस प्रकार मानव चरित्र में निर्भय होकर लेने से निर्भय होकर देने का यह परिवर्तन बहुत अहमियत रखता है, इससे हमारे जीवन की दिशा एकदम बदल जाती है। अब हमें भय नहीं रहता क्योंकि हम जानते हैं कि कुछ देकर हम अधिक लोगों का भला करते हैं। हम समाज का भला करते हैं। जब हम समाज का उत्थान करते हैं, तो इसमें हमारा भी उत्थान निहित होता है। इस प्रकार न केवल व्यक्ति का विकास होता है बल्कि व्यक्ति समाज के विकास में भी सहयोग करता है।

पहले कही बातों को एक बार फिर दोहरा रहा हूँ। कृपया याद रखें कि अमीर और शक्तिशाली लोगों के हाथों समाज का पतन होता है। नैतिक, उठे हुए संत तथा सैद्धान्तिक लोग समाज का विकास करते हैं। इस प्रकार हमारे जीवन में योग का महान उद्देश्य है। मुझे इसीलिये यह कहना पड़ रहा है कि प्रायः लोग कहते हैं, 'ये सब वे अपने लिये करते हैं, इसमें ये निस्वार्थ भावना नहीं है'। जब हम सोचते हैं कि मात्र ऐसा व्यक्ति ही कुछ दे सकता है तो स्वार्थ खत्म हो जाता है। ऐसा व्यक्ति निर्भय होकर प्रेम कर सकता है और बिना यह सोचे कुछ दे सकता है कि वह किसे, क्या दे रहा है। जिसे कुछ देता है बिना किसी विचार या शर्त के देता है। यह मुफ्त उपहार हैं जो कुछ उसके पास है, उठकर दूसरों को दे देता है। इसलिये लेने वाले को भी ऐसा ही व्यवहार करना चाहिये।

यहाँ आप देखेंगे कि ऐसे व्यक्ति से किसी को कुछ पाने का सौभाग्य मिले तो पाने वाला कृतार्थ महसूस करता है, उसका हृदय पिघलने लगता है। समाज में ऐसे व्यक्ति का क्या प्रभाव होगा, इसकी सहज ही कल्पना की जा सकती है। बड़ी तादाद में लोग उनके पास आते हैं। यदि ईसा मसीह के पीछे हजारों लोग थे, तो उसका यही कारण था। उन्होंने न धन बाँटा, न ही शक्ति बाँटी, उन्होंने आज के निराशामयी संसार में आशा का संचार किया। यदि महात्मा बुद्ध का हजारों लोग

अनुसरण करते थे, तो उसका भी यही कारण था। सभी महान संतों और मनीषियों के बारे में यह बात सत्य है। जहाँ प्रेम नहीं होता, वहाँ आशा भी नहीं रहती। प्रेम विहीन जीवन आशा विहीन जीवन होता है। निराशा का चरम रूप आत्महत्या है। वस्तुतः इसी बीच हम नशे और शराबखोरी जैसी खराब आदतों के शिकार हो जाते हैं।

योग मार्ग का अनुसरण करते हुये हम अपने जीवन आशा का दीपक पुनः जलाते हैं। हम अपने जीवन में प्रेम को उसका समुचित स्थान दिलाते हैं। ऐसा नहीं है कि कोई अन्य व्यक्ति हमसे प्रेम करता है बल्कि स्वयं को तब्दील कर हम स्वयं से प्रेम करने लगते हैं। आत्महत्या, ग्लानि का चरम रूप है। लेकिन जब हम स्वयं से प्रेम करने लगते हैं तब हम हर चीज से प्रेम कर सकते हैं। खुशहाल व्यक्ति को सभी चेहरों पर खुशी नजर आती है, जबकि दुखी व्यक्ति हर व्यक्ति में दुख खोजता रहता है। यह एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक सत्य है कि हम प्रकृति को अपने अन्तर्मन की आँखों से देखते हैं। जब हमारे जीवन और हृदय में आशा और प्रेम फिर से कायम हो जाये तो वह स्वतः ही पूरी मानवता में फैलने लगता है और सभी लोग आशा का दामन पकड़कर चलने लगते हैं और एक दूसरे से प्रेम करने लगते हैं। ऐसा व्यक्ति समाज को इतने मौलिक ढंग से तब्दील करने की क्षमता रखता है कि उसके सामने मजबूत सरकारें भी हिल उठती हैं।

ईसा मसीह की शिक्षाओं का रोम पर क्या प्रभाव हुआ, यह तो आप जानते ही हैं। कैदियों और उन लोगों की बात भूल जाइये जिनकी उन्होंने मदद की थी। कहा जाता है कि उनकी शिक्षायें गुलामों के भारी विद्रोह का प्रत्यक्ष कारण बनी। यही कारण है कि आज भी कई सरकारें इन गतिविधियों को आशंका की दृष्टि से देखती हैं। लेकिन इनसे हमारा वास्ता नहीं है जो उन्हें करना है उन्होंने किया और जो हमें करना है वह हम करें। बहरहाल, हम अपने जीवन को इसी तरह जारी नहीं रख सकते। मेरा आप सभी से अनुरोध है कि इस पर गम्भीरता से विचार करें। इस बारे में सोचे समझे कि हमारे जीवन की दिशा में परिवर्तन के बिना कुछ भी सम्भव नहीं है। हम उसी दिशा में बढ़ते चले जायेंगे जो हमने पहले से पकड़ रखी है। जहाँ तक औद्योगिक हाईटेक देशों का सवाल है, यह टकराहट और विनाश का रास्ता है।

योग के साथ न केवल आशा और प्रेम आता है बल्कि जीवन का वायदा भी पुनः हिलोरें मारने लगता है। जब हम एक ऐसे समाज में रह रहे हैं जहाँ चरणोबाइल जैसी घटना हो सकती हो, वहाँ लोग घास का स्पर्श करते हुये दूध पीते हुये और

इन स्थानों से आये हुए पनीर का सेवन करते हुये भी डरते हैं। जहाँ बंच्चे बाहर जाते हुये और मातायें अपने बच्चों को बाहर भेजते हुये सहमी सी रहती हैं,क्योंकि आज लड़कियों के लिए बलात्कार आम बात हो गयी है। उन्हें अपहरण करके दासियों की तरह बेचा जा सकता है। हमें विमानों में सफर करते हुये डर लगता है, क्योंकि उनका अपहरण हो सकता है या कोई बेवकूफ सरकार किसी नागरिक विमान को मार गिरा सकती है। इसीलिये आजकल दवाइयों की इतनी बिक्री हो रही है। नींद की गोलियाँ जरूरी हैं। माफ कीजिए, हमारे गद्दे भी नरम होने चाहिये क्योंकि जब हम निर्भर होकर आशा के साथ सोते हैं तो नींद सहज ही आ जाती है। आजकल हमारा बहुत सा पैसा सोने का प्रयास करते हुये खर्च होता है।

निष्कर्ष में, मैं आप सबका आभार प्रकट करता हूँ कि आप इस वार्ता को सुनने के लिए यहाँ पधारे। हमारा यही प्रयास है कि हम आपके जीवन में व्यक्तिगत रुचि की मशाल फिर से जगा सकें, आपके हृदय में उसे फिर से जीवन्त बनाने की चेतना जगायें और आपके जीवन में प्रेम की सरिता बहायें ताकि प्रेम हर व्यक्ति तक पहुँच सके।

आपने जिस धैर्य के साथ मेरी बातें सुनीं, उसके लिए मैं आपको फिर से धन्यवाद देना चाहूँगा।

धन्यवाद।

4

हृदय-साक्षात्कार का साधन

मोन्टपेलियर, फ्रांस

28 जुलाई, 1988

मैं आपके साथ 'दिल-साक्षात्कार का साधन' विषय पर बात करने यहाँ आया हूँ। यह विषय तुलनात्मक दृष्टि से नया है, क्योंकि योग का सम्बन्ध परम्परागत रूप से अन्य विधियों तथा मानव शरीर की अन्य प्रणालियों से रहा है। उदाहरण के लिए रीढ़ की हड्डी, रीढ़ के आसपास के चक्र आदि योग के केन्द्र माने गये हैं। हठयोग ने इसे बहुत ही लोकप्रिय बना दिया है। कुण्डलिनी के बारे में तो सभी लोग जानते ही हैं। आज यूरोप में अनेक योग केन्द्र हैं जिनमें से सभी मुख्य रूप से हठयोग से सम्बन्धित हैं, कम से कम मैंने तो यही पाया है। अन्य केन्द्र भी होंगे, लेकिन मुझे उनकी जानकारी नहीं है। अतः वस्तुतः योग का तात्पर्य क्या है, इसी का खुलासा करते हुये अपनी बात शुरू करना चाहूँगा। योग का तात्पर्य है 'मिलन'। यह शब्द संस्कृत के पुरानी धातु 'यज' से बना है। जैसा आप जानते हैं फारसी में इसे "Y" "U" "J" लिखा जाता है। अतः आगे चलकर इसी शब्द से अंग्रेजी शब्द "Yoke" मिलता है। जिसका अर्थ है 'साथ मिलाना'। प्राचीन यौगिक परम्परा में योग का अर्थ सदैव 'ईश्वर मिलन' माना गया है। इससे कमतर किसी मिलन की कल्पना नहीं की गयी थी।

आज योग का क्या संदर्भ है मैं नहीं जानता क्योंकि भारत में तथाकथित कई योग विद्यालय हैं जिनमें 'ईश्वर मिलन' के अलावा सब कुछ पढ़ाया जाता है। हठयोग सर्वाधिक लोकप्रिय है क्योंकि इसमें शक्ति की लालसा को कुछ बल मिलता है जो सभी मानव प्राणियों में पायी जाती है। इससे शरीर को सम्पूर्ण रूप से चुस्त दुरुस्त बनने में भी मदद मिलती है।चुस्त दुरुस्त से तात्पर्य ग्रीक अर्थ में नहीं है बल्कि एक संतुलित शरीर तथा सुविकसित मानसिक प्रणाली और परिपूर्ण तन्त्रिका तन्त्र से है। ऐसा माना जाता है कि प्राणायाम की प्रक्रिया द्वारा आन्तरिक मानसिक प्रणाली निर्मल और सुदृढ़ होती है। इन सबके उपरान्त कुण्डलिनी में नवजीवन का सर्जन होता है ओर हमें असीम शक्ति प्राप्त होती है। लेकिन मुझे लगता है कि इस प्रक्रिया से बहुत कुछ छूट गया है यदि समुचित रूप से अभ्यास किया जाय तो हठयोग से हमें असीम और कल्पनातीत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं। कहा जाता है कि एक हठयोगी दुनिया को हिला सकता है और नक्षत्रों को उनकी

धुरी से बाहर फेंक सकता है। भारत में प्राचीन काल में ऐसे महान योगी हुये, जिन्होंने इस प्रकार के कई चमत्कार किये हैं। अतः यौगिक परम्परा में हठयोग का बहुत महत्वपूर्ण स्थान रहा है। लेकिन मेरी मान्यता है कि दुर्भाग्यवश इस प्रक्रिया में, मानव को दिव्यकरण की ओर अग्रसर करने वाला योग का मुख्य पहलू कहीं खो गया है।

मैं फिर दोहराता हूँ कि भारत में भी यह भारी समस्या है। इसका कारण यह नहीं कि लोग नहीं जानते कि उन्हें किस चीज की लालसा करनी चाहिये बल्कि इसका कारण यह है कि व्यक्ति में शक्ति और वैभव का प्रलोभन बहुत ज्यादा है। मुझे विश्वास है कि आप सभी ने इन तथाकथित योगियों के फोटोग्राफ तो अवश्य देखे होंगे, जिनमें इन्हें कीलों की शैया पर लेटे हुये आग पर चलते हुये तथा अन्य मुद्राओं में दिखाया गया है। मैं फिर कहता हूँ कि इससे हमें असीम शक्ति मिल सकती है लेकिन क्या इससे आपको ईश्वर का साक्षात्कार होगा? इसीलिये योग अभ्यास शुरू करने से पहले हमें इस पर भली भाँति विचार कर लेना चाहिए। यदि हम नहीं जानते कि हमारी मंजिल क्या है तो इसमें दोष किसका है?

मेरी मान्यता है कि भक्ति मार्ग के आगमन के बाद नौवीं या दसवीं शताब्दी में यौगिक पद्धतियों में आमूल चूल परिवर्तन आया। इस दौर में यह धारणा बलवती हुई कि ईश्वर की खोज करने और उनसे वरदान माँगने की बजाये ईश्वर को प्रेम से जीता जाये। इसीलिये इसे भक्ति कहा जाता है भक्त वह होता है जो ईश्वर से प्रेम करे। उन्हें सम्पूर्णता से प्यार करे और केवल उन्हें ही चाहे। जब मैं 'केवल' शब्द का प्रयोग करूँ, तो भयभीत मत होइये क्योंकि 'केवल' में हमारे साधारण मानवीय जीवन, पारिवारिक जीवन, सामाजिक जीवन का भी समावेश है। भक्ति मार्ग में बहुत ही स्पष्ट शब्दों में कहा गया है कि हमारी प्रीति केवल ईश्वर में होनी चाहिये। प्रश्न यह नहीं है कि हम ईश्वर से प्रेम करते हैं या नहीं क्योंकि वह तो सर्जनहार हैं, जन्मदाता हैं और हम उसकी संतान हैं। सांसारिक प्रेम तो एक प्रकार का कर्तव्य है। वस्तुतः भक्ति मार्ग विषय की गहराई में जाकर हमें यह शिक्षा देता है कि हमें अपना दिल केवल ईश्वर को समर्पित करना चाहिये। हमारे यहाँ भक्ति मार्ग की कुछ महान विभूतियाँ हुई हैं। मुझे विश्वास है कि आप में से कुछ लोगों ने रामानुज, चैतन्य महाप्रभु आदि का नाम सुना होगा। अब देखिये यह कैसी विचित्र बात है कि प्रेम मार्ग होने के बावजूद यह बन्द ही रहा है खुला नहीं है। इसका कारण यह है कि पूर्वी परम्परा में व्यक्ति प्रेम के बारे में बात नहीं करता, अपने प्रेम का बखान नहीं करता। ऐसा माना जाता है प्रेम, प्रेमी तथा प्रेमिका के

बीच राज का विषय है।

यही कारण है कि भक्ति मार्ग का भारत के बाहर ज्यादा प्रचार नहीं है। यदि आप इन महापुरुषों पर नजर डालें जिन्होंने भारत से बाहर निकलकर हिन्दुत्व का पाठ पढ़ाया तो आप पायेंगे कि उन्होंने निरपवाद रूप से वेदान्त की ही चर्चा की। वेदान्त एक धार्मिक बौद्धिक परम्परा है, जिसके महान शिल्पी को शंकर के नाम से पुकारा जाता था। शंकर का दर्शन सुप्रसिद्ध है। प्रायः यह कहा जाता है कि शायद शंकर भारत के महानतम बुद्धिजीवी थे। लोग भूल जाते हैं कि स्वामी विवेकानन्द का पदार्पण तो बहुत बाद में हमारे समय में हुआ था। स्वामी विवेकानन्द ने जो कुछ हासिल किया वह राजयोग से हासिल किया था, हालाँकि उनके गुरु श्री रामकृष्ण ने जीवन की शुरुआत मंदिर के पुजारी के रूप में की थी। वह देवी काली की पूजा करते थे फिर भी दोनों पंथों के बीच कुछ अस्पष्टता है। यह माना जाता है कि स्वामी विवेकानन्द अपने बुद्धि बल पर महान संत बने थे। इसके विपरीत यदि आप रामकृष्ण के जीवन में झाँके तो पायेंगे कि वह एक मंदिर के पुजारी थे। लेकिन तप साधना द्वारा उन्होंने आत्म बोध प्राप्त किया और असीम शक्तियाँ हासिल की। कहा जाता है कि उसमें इतना सामर्थ्य था कि वह माँ काली को अपने सामने उपस्थित कर लेते थे उनके साथ बातें करते और खेलते थे। इससे उन्हें बहुत खुशी और संतोष मिलता था। लेकिन एक दिन एक योगी आये और बोले 'तुम यह क्या खेल खेल रहे हो? क्या तुम यही सब चाहते हो? देवी के साथ खेलने से भी कोई लाभ नहीं है। इससे तुम्हें साक्षात्कार नहीं होने वाला।' रामकृष्ण ने विनम्रता से कहा 'मुझे नहीं मालूम कि इससे ज्यादा क्या करूँ।' कहा जाता है कि इस योग शास्त्री ने काँच का एक टुकड़ा उठाया और रामकृष्ण के ललाट पर दे मारा और बोले 'इस बिन्दु पर ध्यान करो'। इस घटना के बाद ही रामकृष्ण परमहंस ध्यान करने में सफल हुये और परम पद पाकर परमहंस कहलाये। इससे पहले तो वह भी आसन, प्राणायाम की परम्परागत हठयोग पद्धतियों का अभ्यास करते थे।

यह गलत धारणा है कि हमें योग के आठ चरणों का एक-एक करके पालन करना होगा। कई मामलों में यह धारणा बहुत घातक सिद्ध हुई है। मेरी मान्यता है कि यह हमारी गिनती का क्रम है कि एक के बाद दो, दो के बाद तीन ही आना चाहिये। पाश्चात्य जगत के अधिकतर योग अभ्यासी सोचते हैं कि उन्हें हठयोग से शुरुआत करनी पड़ेगी। विश्वास कीजिये, यह पूरी तरह गलत धारणा है कि क्योंकि राजयोग में जो कुछ करना होता है, हम दिमाग से करते हैं तथा हठयोग के लिये महज शारीरिक तंदुरुस्ती की जरूरत होती है। हमारा इतना सा तंदुरुस्त

होना पर्याप्त है कि हम बैठकर ध्यान कर सकें। लेकिन इसमें दो चीजें आड़े आती हैं। एक शारीरिक विकास और शक्तियों के विकास का सम्मोहन तथा दूसरी यह गलत धारणा कि हमें पहले चरण से शुरुआत करके दूसरे चरण में और फिर तीसरे चरण की ओर बढ़ना चाहिये।

मुझे याद है मैं एक बहुत बड़ी भारतीय संस्था के एक आश्रम में गया जो फ्रांस से संबद्ध था। मैं यहाँ एक प्रौढ़ महिला से मिला जिसकी उम्र करीब पैंतालीस-पचास वर्ष रही होगी। यह बीस साल पहले की बात है। मैं अपने आध्यात्मिक मालिक, श्री रामचन्द्रजी महाराज के साथ गया हुआ था। वे आश्रम के प्रधान से बातें कर रहे थे और मैं यह सोचकर बगीचे में घूम रहा था कि शायद कोई व्यक्तिगत बातें कर रहे हों। तभी मेरी मुलाकात एक बुजुर्ग महिला से हुई और हमारी बातों का सिलसिला निकल पड़ा। मैंने कहा मैं ध्यान करता हूँ और उनसे पूछा 'आप कितना ध्यान करती हैं?' उन्होंने कहा 'मैंने अभी ध्यान शुरू नहीं किया है।' मैंने पूछा 'आप यहाँ कितने अरसे से हैं खासकर इस संस्था में?' उन्होंने कहा 'तेईस साल से।' मैंने पूछा 'तेइस साल से आप क्या कर रही हैं?' उन्होंने कहा - 'ओह! मेरे गुरुदेव ने कहा है कि ध्यान करने से पहले हमें खूब तैयारी करने की आवश्यकता है। इसलिये तीन साल मैंने रसोई में तरकारी काटकर व्यतीत किये, तीन साल कपड़े धोये, तीन साल मरीजों की सेवा की और इन सबके बाद अब सहनशीलता सीखने के लिए बगीचे में काम रही हूँ' मैंने पूछा 'आप ध्यान करना कब शुरू करेंगी।' उन्होंने कहा 'जब मेरे गुरुदेव इसकी अनुमति देंगे।' तब। देखिये कितनी दुःखद बात है। जब मैंने मालिक को यह बात बतायी तो उन्हें न केवल असीम आश्चर्य हुआ बल्कि यह जानकर दुख हुआ कि किस प्रकार लोगों को गुमराह किया जाता है।

मूल बात तो यह है कि मन को प्रशिक्षित करने के लिए हमें शरीर को प्रशिक्षित करने की जरूरत नहीं पड़ती। शिक्षा को ही लीजिये। हम रुग्ण शरीर के बावजूद भी उच्चतम शिक्षा पा सकते हैं हाल ही में, आपने स्टीफन हॉकिंग द्वारा लिखित अमरीका में प्रकाशित पुस्तक तो जरूर देखी होगी। वह व्हीलचेयर से चलते हैं। उनके हाथ की केवल दो अँगुलियाँ ही काम करती हैं। उनकी व्हील चेयर में एक कम्प्यूटर लगा है और उनके लिए हर चीज विशेष रूप से बनायी जाती है जिनके बल पर वह लंदन विश्वविद्यालय में पी.एच.डी. डाक्टरेट विद्यार्थियों की कक्षाएं लेते हैं उन्होंने कई पुस्तकें लिखी हैं और उनकी ऐसे व्यक्ति के रूप में पहचान है जो शायद आइंस्टाइन और न्यूटन के सिद्धान्तों को मिलाकर एक विस्तृत विश्लेषण प्रस्तुत करेगा। हॉकिंग लाउ गेहरिगरस नामक बीमारी की वजह से अपाहिज हैं।

आप जानते होंगे कि प्रसिद्ध बेसबाल खिलाड़ी लाउ गेहरिंग को एक बीमारी थी जो लाउ गेहरिंगस बीमारी कहलाती थी। यदि व्हीलचेर से चलने फिरने वाला ऐसा व्यक्ति जो केवल एक आध अँगुलियाँ ही हिला-चला सकता हो, पुस्तकें लिख सकता है उच्चतम स्तर पर विज्ञान पढ़ा सकता है, तो यह बात बहुत स्पष्ट है कि शरीर का दिमाग के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है।

इसके विपरीत, शरीर का उपयोग दिमाग करता है क्योंकि उन एक दो अँगुलियों को चलाने के लिए भी इच्छा शक्ति और मानसिक शक्ति की जरूरत होती है, जिसमें दिमाग सक्षम है। आपको एक पुराना लेकिन महत्वपूर्ण सूत्र तो अवश्य याद होगा कि 'स्वस्थ तन में स्वस्थ मन रहता है।' इसलिये सारी प्रक्रिया निरर्थक है। मेरे मालिक ने यही सिखाया है कि हमें सीधे ध्यान से ही शुरुआत करनी चाहिये। इसलिये हम राज योग की प्राचीन भारतीय परम्परा पर फिर लौटते हैं जो हजारों साल पुरानी है। पातंजलि के अष्टांग योग के अन्तिम तीन सोपान धारणा, ध्यान और समाधि महत्वपूर्ण है। शेष सब तैयारी है। यह तैयारी भी कुछ लोगों के लिए जरूरी हो सकती है सभी के लिए नहीं। यदि आप स्वयं को सामान्य महसूस करते हैं और ध्यान का अभ्यास करने के इच्छुक हैं, तो अभी से शुरूआत कर दीजिये।

परम्परागत राज योग और मेरे मालिक के राजयोग के सहज मार्ग में क्या अन्तर है? अब मैं भारतीय घटनाक्रम के तीन प्रमुख भागों पर आता हूँ। मुझे किसी भी पुस्तक में इनका उल्लेख नहीं मिला। पहली यौगिक परम्परा है जिसमें शरीर का उपयोग किया जाता था, रीढ़ की हड्डी का उपयोग किया जाता था, मूलाधार स्वाधिष्ठान से लेकर सिर के ऊपरी हिस्से में स्थिति सहस्त्र पंखुड़ियों वाले सहस्त्रार तक के चक्रों का उपयोग किया जाता था। इसमें आसन शामिल हैं। कहा जाता है कि एक सौ आठ आसन होते हैं इसमें प्राणायाम भी एक है। प्राणायाम में चार चरण होते हैं-साँस छोड़ना, साँस रोकना, साँस लेना तथा साँस को अन्दर रोकना। आसन और प्राणायाम हठयोग के मूल पहलू हैं। इसके बाद मन का उपयोग करने की परम्परा का प्रादुर्भाव हुआ। मन को पूरे तन्त्र का राजा माना जाता है। भारत में इसे राजा, शासक कहा जाता है। अतः यह पद्धति जिसमें मन का उपयोग होता था, राज योग के नाम से प्रसिद्ध हुई। यह बहुत सरल है। शुरू में यह हठयोग, राजयोग और प्राणायाम आदि सभी चीजों का मिला-जुला रूप था। लेकिन मेरे विचार से भक्ति मार्ग के आगमन के उपरान्त, राजयोग के अभ्यासी शरीर तथा उसके अंगों पर बल देने की प्रवृत्ति से धीरे-धीरे हटते चले गये। इसके बाद एक परिष्कृत अवस्था आती है। इस अवस्था में हम एक ऐसी आरामदायक मुद्रा में बैठते

हैं जिसे ध्यान अवधि में बनाये रख सकें और ध्यान आरम्भ कर देते हैं।

यह विचित्र बात है कि पातंजलि की पुस्तक 'योग-सूत्र' में आसन को ऐसी मुद्रा के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें हम एक समय तक आसानी से बैठ सकें। संस्कृत में इसे केवल तीन शब्दों स्थिरम, सुखम, आसनम में व्यक्त किया गया है। शेष सभी चीजें तो बाद में आयीं। इनका उद्देश्य जैसा कि मैंने पहले बताया, शरीर के कुछ अंगों तथा मानव शरीर की कुछ प्रणालियों का विकास करना था। यदि आप हठयोग पर कोई अच्छी पुस्तक पढ़ें, तो आपको इनका उल्लेख मिल जायेगा। उदाहरणार्थ रीढ़ के लिए भुजंग आसन तथा सुलभ आसन जैसे अभ्यास। भुजंग आसन साँप की मुद्रा होती है, जिसमें पेट के बल लेटकर शरीर के ऊपरी हिस्से को उठाया जाता है। सुलभ आसन इसका उल्टा है, इसमें चेहरा नीचे रखते हैं और पैरों को ऊपर उठाया जाता है यह बिच्छू की मुद्रा होती है। तीसरी मुद्रा, जिसमें चेहरे और पैरों को ऊपर उठाते हैं हाथों को पीछे ले जाकर पैरों को पकड़ते हैं और शरीर को धनुष की भाँति मोड़ते हैं, धनुष आसन कहलाती है। यह आसन खासतौर से रीढ़ के लिए है। इसी प्रकार, मयूर आसन है जिसमें कोहनियों को पेट पर रखकर सारे शरीर को दोनों हथेलियों पर टिकाते हैं। इसे मयूर आसन कहा जाता है। ऐसा माना जाता है कि इस मुद्रा में कोहनियों से आंतों की मालिश होती है और हमें अंदरूनी तंदुरुस्ती मिलती है। मेरे कहने का आशय है कि पुस्तकों में इन सबका उल्लेख है। आपमें से अधिकतर लोगों ने इन्हें अवश्य पढ़ा होगा।

इस प्रकार राजयोग के विशुद्ध रूप 'ध्यान' की खोज इन व्यक्तियों ने की, जिनकी वास्तव में आध्यात्मिक विकास में रुचि थी और तन या मन की शक्तियों से जिनका कोई सरोकार नहीं था, यह दूसरी धारा है। मेरे विचार से इसके बाद शंकर, रामानुज जैसे लोगों के साथ तीसरी धारा का आविर्भाव होता है। आप लोग इसकी कल्पना एक पेड़ के रूप में कर सकते हैं। पहली शाखा हठयोग। दूसरी शाखा राजयोग और तीसरी तथा शायद अन्तिम शाखा में हृदय को मुख्य केन्द्र माना जाता है। इसे मैंने अन्तिम शाखा इसलिये कहा है, क्योंकि भविष्य में क्या होगा, इसकी भविष्यवाणी कौन कर सकता है? तीसरी शाखा के लोगों के लिए मन की कोई अहमियत नहीं है, क्योंकि उन्होंने इस महत्वपूर्ण तथ्य को भली भाँति समझ लिया है कि मन मानव तंत्र का उतना ही गौण हिस्सा है, जितना कि तन। अतः हमें मन की कार्य प्रणाली को विनियमित करना पड़ता है ताकि इसके विचार शुद्ध हों, ताकि आगामी कर्म शुद्ध हों ताकि आगामी परिणाम शुद्ध हो। निर्मलता पर

हमेशा ही बल दिया जाता था। आजकल प्रभाव उत्पादकता और दक्षता पर बल दिया जाता है। कभी-कभी तो ताज्जुब होता है कि इस प्रक्रिया में कहीं निर्मलता ओझल न हो गयी हो। आज विज्ञान के क्षेत्र में भी यह दोष पाया जाता है कि वर्तमान और पिछली शताब्दी के शानदार वैज्ञानिक शोध ने एक खौफ पैदा कर दिया है जिसे पाश्चात्य जगत के कई लोगों ने 'विज्ञान की विभीषिका' की संज्ञा दी है। विभिन्न प्रकार के बम निःसंदेह इसके सर्वाधिक ज्वलंत उदाहरण हैं। यहाँ तक कि कभी-कभी तो वैज्ञानिक और दार्शनिक एक मत होकर मानव का चरित्र चित्रण ऐसे जीव के रूप में करते हैं जिसने स्वयं की बर्बादी के लिए असीम शक्ति सृजित कर रखी है। यही कारण है कि भारत में हम मन के शिक्षण की बजाय, मन के शुद्धिकरण पर बहुत विशेष ध्यान देते हैं। यह माना जाता है कि शिक्षा से विलक्षण शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, लेकिन यदि इन शक्तियों के साथ शुद्धता का मेल न हो तो समाज में आपराधिक प्रवृत्तियों और अपराधियों का बोलबाला हो जायेगा।

ध्यान रहे कि ईमानदार आदमी बनने की तुलना में अपराधी बनने के लिये अधिक बुद्धि बल की जरूरत होती है। आधुनिक अपराधी तो उच्च शिक्षा प्राप्त अपराधी हैं ये लोग आधुनिक यूरोप के तकनीकी संसाधनों का बहुत दक्षता से उपयोग कर सकते हैं। यहाँ बुद्धि बल के साथ शुद्धता का संयोग नहीं है। आधुनिक प्रौद्योगिकी बिना कुतुबनुमा (कम्पास) और पतवार के चल रहे समुद्री जहाज की भाँति है। अतः यह एक प्राचीन परम्परा है कि शक्ति का उपयोग करने के लिए भी दिग्दर्शन जरूरी है। पवित्र व्यक्ति के हाथ में शारीरिक या मानसिक या वैज्ञानिक सभी शक्तियाँ बहुत सुरक्षित रहती हैं। चूँकि वे सुरक्षित होती हैं इसलिये उनका उपयोग मानव विकास तथा मानव सुख के लिये किया जा सकता है। अतः बुद्धि बल को लेकर योग और योगियों के बीच हमेशा संदेह रहता है। वे विवेक को अहमियत देते हैं। बुद्धि और विवेक एक दूसरे के पर्याय नहीं हैं। यह दूसरा चरण था।

तीसरे चरण में हम हृदय पर ध्यान देते हैं। हम मन को भूल जाते हैं। मन का उपयोग हम एक सीमा तक करते हैं। हम इसे पूरी तरह नहीं भूलते बल्कि इसका उपयोग एक सीमित उद्देश्य (मन के विनियमन) के लिये करते हैं यही कारण है कि कभी कभार यह समझ पाना बहुत कठिन होता है कि हम ध्यान करके इन चीजों को कैसे हासिल कर पायेंगे, क्योंकि मन अपनी पवित्रता और शुद्धता के लिए कार्य कर रहा होता है। शुरुआत में यह बहुत ही भ्रामक प्रतीत होता है, लेकिन हमें

यह याद रखना होगा कि हर कार्य ऐसे ही होता है। हम व्यायाम द्वारा एक दुर्बल तन को पुष्ट बनाते हैं। हम कमजोर बुद्धि को अभ्यास द्वारा कुशाग्र बनाते हैं। अतः मन को परिष्कृत करने, शुद्ध तथा विनियमित करने के लिए मन का उपयोग करने में वास्तव में कोई परेशानी नहीं होनी चाहिये।

जैसा कि मेरे मालिकों ने सिखाया है, राजयोग में जो खासकर रामानुज और कबीर की प्रसिद्ध परम्पराओं की अगली कड़ी है 'ध्यान', केन्द्र हृदय पर शिफ्ट हो जाता है। अब न तनाव रहता है और न ही व्यायाम की जरूरत रहती है। हम हृदय में दिव्यता लाने का प्रयास करते हैं बल्कि दिव्यता की उपस्थिति का एहसास करते हैं।

इस प्रकार ध्यान केन्द्र बिन्दुओं (ध्यान के परम्परागत बिन्दुओं जैसे भौहों के बीच के बिन्दु, नासिका बिन्दु) से हटकर हृदय पर शिफ्ट हो जाता है। यदि आप भारत के प्राचीन ऋषियों के जीवन का अध्ययन करें तो पायेंगे कि इन ऋषियों ने हजारों वर्षों तक इन बिन्दुओं पर ध्यान किया। इनका ध्यान इतना सफल था कि वे अपने आराध्य देवता को अपने सामने साक्षात उपस्थित कर लेते थे और उनसे कुछ भी यहाँ तक कि दैवीय शक्तियाँ, भी माँग सकते थे। उन्हें शक्तियाँ मिल जाती थीं। परम्परा कहती है कि उन्होंने इन्हीं शक्तियों से अपना विनाश किया।

आपके पास समय हो तो मैं आपको एक प्रसिद्ध कहानी सुनाता हूँ एक असुर ने हजारों सालों तक शिव का ध्यान किया। अंत में शिव प्रकट हुए और बोले 'तुम्हें क्या चाहिये' मैं तुम्हारे तप से प्रसन्न होकर तुम्हें वरदान देना चाहता हूँ। असुर बोला 'मैं जिस व्यक्ति के सिर पर हाथ रख दूँ, वह तत्काल भस्म हो जाये।' देखिये कैसी विचित्र स्थिति है कि ये देवता वरदान देने से इनकार नहीं कर पाते थे। शिव ने कहा 'तथास्तु'। इस असुर ने शिव की शक्ति को उन्हीं पर आजमाना चाहा। उसने अपना हाथ शिव पर रखना चाहा। शिव भागे ओर अन्ततः संरक्षक देव विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु बोले, तुमने उसे वरदान देने की मूर्खता क्यों की?' शिव ने कहा 'मैं क्या कर सकता हूँ? यदि कोई व्यक्ति अनन्य भक्ति, श्रद्धा और सामर्थ्य से ध्यान करे और अपने सम्मुख उपस्थित होने का आह्वान करे तो आप स्वयं भी इंकार नहीं कर सकते।' तब विष्णु ने एक मोहनी का रूप धारण किया। असुर का ध्यान उस कन्या की ओर आकृष्ट हुआ। उसने कन्या से कहा 'मैं तुम्हें चाहता हूँ।' कन्या ने कहा हाँ लेकिन पहले तुम इस नदी में स्नान करो, फिर शुद्धिकरण अनुष्ठान करो, तभी मैं तुम्हारी हो पाऊँगी। उसने ऐसा ही किया। आप जानते हैं शुद्धिकरण अनुष्ठान में एक अवस्था में हाथ को सिर पर रखकर मन्त्रोच्चारण करते

हैं। जब असुर ने अपना हाथ अपने सिर पर रखा, तो वह खुद ही भस्म हो गया।

इस प्रकार हम देखते हैं कि शक्तियाँ बहुत खतरनाक होती हैं। जैसा कि एक पुरानी कहावत है सत्ता भ्रष्ट होती है निरपेक्ष सत्ता परम भ्रष्ट होती है। अतः इन भक्ति योगियों ने तन और मन की शक्तियों को त्यागकर विशुद्ध चीज, जिसे ब्रह्माण्ड कहा जाता है, हृदय पर ध्यान दिया। इसके कई कारण हैं। जैसा कि मेरे मालिक ने कहा है हृदय वह पात्र है जिसमें जीवन का वास होता है। यदि हृदय रुक जाये तो सब कुछ रुक जाता है। यहीं से रक्त संचार शुरू और खत्म होता है। सभी परम्पराओं में ईश्वर की उपस्थिति हृदय में मानी गयी है। यदि ईश्वर कहीं है तो हृदय में है। इसलिये सभी रहस्यवादी परम्पराओं में हृदय का जिक्र है और आदमी भी एक दूसरे को हृदय से ही पहचानते हैं। जैसे कहा जाता है कि फलाँ आदमी का दिल सोने जैसा पवित्र है फलाँ आदमी का दिल लोहे जैसा मजबूत है वह दयालु इंसान है, वह निष्ठुर इंसान है। हर चीज को हृदय से जोड़कर पहचाना जाता है। ईश्वर हृदय में रहता है तथा अन्य सभी मौजूदा पद्धतियों से हमें कल्पनातीत शक्तियाँ प्राप्त होती हैं, इस बात को मानते हुये हृदय की इस परम्परा में अन्य सभी चीजों को त्याग दिया गया है। उन्होंने यौगिक अभ्यास छोड़ दिये। उन्होंने मानसिक अभ्यास तथा सभी प्राचीन अवराधों, जैसे ब्रह्मचर्य, परिवार त्याग कर जंगल में जाने और ध्यान करने आदि को छोड़ दिया। इन सबका परित्याग करना पड़ा क्योंकि जैसा कि मेरे मालिक ने एक बार यूरोप में कहा था 'यदि जरूरत नहीं होती तो क्या भगवान इतने मूर्ख हैं कि दो लिंग (स्त्री-पुरुष) बनाते।'

सृजन का एक उद्देश्य होता है। मनुष्य के तन में हर चीज का खास मकसद है। लेकिन इसके दुरुपयोग को रोकने के लिए यदि आप इसका उपयोग ही न करें तो यह भी एक बीमारी है। इसलिये भक्तिप्रणाली में हर चीज के सही नैसर्गिक उपयोग पर बल दिया गया है। अतः यहाँ न तपस्या है न त्याग और न ही जीवन और उसके दायित्वों से पलायन की बात। इसके विपरीत, ये सब ऐसे लोग थे जिन्होंने विवाह किये, परिवारों का भरण पोषण किया और फिर दिव्य पद हासिल किया जो प्राचीन यौगिक परम्परा में कुछेक लोगों को ही नसीब हुआ था। हृदय के उपयोग की इस प्रणाली को मेरे मालिकों ने अधिक परिष्कृत किया है और आज हम हृदय पर ध्यान करते हैं। इसलिये मैंने कहा है कि हृदय मानव साक्षात्कार का साधन है। मेरे मालिक हमेशा कहा करते थे 'जब भी संदेह हो हृदय की शरण में जाओ, क्योंकि मन या बुद्धि तो कम्प्यूटर के समान है। यह तो उत्तर देता है। उत्तर सही हो तो भी आवश्यक नहीं कि आपके लिए उपयुक्त हो।' मान लीजिये कोई

आदमी अपने कम्प्यूटर से कोई सवाल करता है तो कम्प्यूटर तो वही जवाब देगा तो उसमें फीड किया गया हो। 'मुझे बैंक में डकैती डालनी चाहिये?' वह कह सकता है क्यों नहीं? डकैती कैसे डाली जाये? वह सारे अपेक्षित हथकण्डे बता सकता है जो आपको अपनाने हैं। यही कारण है कि हम देखते हैं कि जो लोग शैक्षिक दृष्टि से बड़े हैं, जरूरी नहीं है कि वे नैतिक या सदाचारी भी हों। यदि ऐसा होता तो शिक्षा पाकर हम सभी अरसे से पहले संत बन गये होते।

इसीलिये हमने हृदय की इस पुरानी प्रणाली पर फिर से ध्यान दिया है जैसा कि मालिक ने कहा है 'जब भी संदेह हो तो हृदय की शरण में जाओ।' आजकल हृदय से उत्तर पाना बहुत दुष्कर है, क्योंकि मेरे मालिक हँसकर कहते थे हृदय की वाणी लगभग पूरी तरह मौन पड़ गयी है। हम हृदय से पूछना ही नहीं चाहते क्योंकि अधिकतर मामलों में हम जानते हैं कि उसका जवाब क्या होगा। यह अन्तरआत्मा की समस्या है और अन्तरआत्मा का स्थान हृदय में है, सिर में नहीं।

अतः आज का मानव, चाहे वह यूरोपवासी हो, भारतवासी हो या फिर अफ्रीका वासी, हृदय से भय खाता है। मेरी स्वयं की मान्यता है कि हृदय की अधिकांश आधुनिक बीमारियाँ इसी वजह से हैं। शारीरिक दृष्टि से हम इसका ध्यान रखते हैं -कैलोस्ट्रोल रहित ओर वसा रहित भोजन लेते हैं, लेकिन असली चीज की अवहेलना कर जाते हैं।

वह क्या चीज है जिससे हृदय 'हृदय' है? यह केवल एक शारीरिक अंग नहीं है। वह क्या चीज है जिसकी वजह से मन सही अर्थ में 'मन' है। वह चीज है जरूरत पड़ने पर इसका सही और समुचित रूप से कार्य करना। अतः जब दिमाग विक्षिप्त हो जाये और आदमी को मनोचिकित्सकीय सहायता की जरूरत पड़े, तब भी दिमाग तो मौजूद रहता है, लेकिन वह किसी काम का नहीं रहता। इसीलिये आजकल हमने एक अर्थ में हृदय को भी निकम्मा बना दिया है। यदि हम आज की सामाजिक जीवन पद्धति से इसकी तुलना करें तो पायेंगे कि इसी के चलते हम प्रेम करने और प्रेम पाने में असमर्थ हैं आजकल प्रेम में हृदय का समावेश नहीं होता। इसीलिये समाज में इतनी पीड़ा, खण्डित परिवार, निराशा और मोह भंग का बोलबाला है ऐसे में इस बात की जरूरत है कि हृदय को जीवन धारा के मुख्य केन्द्र में पुनः स्थापित किया जाये। सम्भवतः इससे हमें विज्ञान या कला की डिग्रियाँ न मिलें हम अरबपति भी न बन पायें, लेकिन इससे हम तन्दुरुस्त, खुशहाल और विवेकशील अवश्य बन सकेंगे। साक्षात्कार की बात तो भूल ही जाइये। यह तो बहुत बाद में होता है। जब तक व्यक्ति अपने हृदय पर भरोसा करना नहीं सीखेगा

और जीवन सम्बन्धी अत्यावश्यक प्रश्नों पर हृदय से सवाल जवाब नहीं करेगा माफ कीजिये तब तक हम रोबोट के समान बने रहेंगे, दिमाग से संचालित होते रहेंगे। इसका उदाहरण हमारी फैक्ट्रियों और कारोबार में मिल जायेगा, जहाँ हर काम रोबोट या कम्प्यूटर द्वारा संचालित होता है।

हममें और इन मशीनों में क्या अन्तर है? मानव निर्मित कम्प्यूटर मशीनों को चलाते हैं और हमने अपने दिमाग को कम्प्यूटर में तब्दील कर लिया है तथा उसी से संचालित होते हैं। जैसा कि मेरे मालिक हमेशा कहा करते थे 'मन हमारा दास होना चाहिये, लेकिन हम मन के दास बन गये हैं।' मानो घोड़ा सवार पर सवारी करने लगे। जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे मन एक शानदार यंत्र है। लेकिन स्मरण रहे यह एक अच्छा सेवक जरूर है लेकिन स्वामी बन जाये तो बहुत घटिया स्वामी साबित होगा।

अतः मानव जीवन व्यवस्था में मन को इसके समुचित स्थान पर पुनः स्थापित कीजिये। मन का उपयोग करो, लेकिन इसे अपना इस्तेमाल मत करने दो। यह बहुत आसान है। सभी आदतें जड़ (ठोस) के समान होती हैं। यदि हम न चाहते हुए भी कोई काम करने को मजबूर हैं तो इसका कारण है कि हमने अपनी लगाम मन के हाथों में सौंप रखी है। इसीलिये मेरे मालिक हमेशा कहा करते थे और उनका यह कथन उनके सर्वाधिक महत्वपूर्ण कथनों में से एक है 'हालाँकि हम मानव शरीर लेकर पैदा हुये हैं लेकिन हममें से अधिकतर के पास मानवीय प्रवृत्तियाँ नहीं हैं। हमने प्रेम, करुणा, दया और मानवता की भावना को तिलांज्जलि दे दी है और इनका स्थान हिंसा, क्रूरता, स्वार्थ, लालच और कामुकता ने ले लिया है। देखिये हमने अपने लिये कैसे हालात पैदा कर लिये हैं इसमें शिक्षा का कोई कसूर नहीं है और न ही समाज का कसूर है। इसमें कसूर तो हमारी अपनी अकर्मण्यता और इस दुर्भाग्यपूर्ण भ्रान्ति का है कि भौतिक जीवन से हम खुशहाल हो सकते हैं यदि यह धारणा सत्य है तो खुशहाली तो केवल यूरोप और अमेरिका में ही होनी चाहिये और शेष दुनिया दरिद्र होनी चाहिये।'

यह अजीब बात है कि निर्धन देशों के लोग खुशहाल हैं जबकि सुविकसित और उच्च तकनीक सम्पन्न औद्योगीकृत समाजों में रहने वाले लोगों में नशे और आत्म हत्याओं की संख्या सर्वाधिक पायी जाती है। मुझे यह सब आपको बताने की जरूरत नहीं है। आप जानते हैं कि प्राचीन 'हिप्पी मूवमेन्ट' इस भौतिक समाज के विरुद्ध प्रतिक्रिया का ही नतीजा था। आप बड़े बड़े अरबपतियों और खरबपतियों के उन प्रसिद्ध बच्चों के नाम जानते होंगे, जिन्होंने आत्महत्यायें की थीं। उन्होंने

आत्महत्यायें क्यों की? वे ऐसे मुकाम पर आ पहुँचे थे जहाँ वे स्वयं का सामना नहीं कर सकते थे। हाँ हृदय साक्षात्कार का साधन है लेकिन पहले उसे सही अर्थों में हृदय तो बनाइये। वह मात्र रक्त संचारित करने वाला पम्प बनकर न रह जाये और न ही आपके शरीर में मुठ्ठीभर माँसपेसियों का एक लोथड़ा बल्कि इसके ऐसा स्थान बनाइये जहाँ न केवल भगवान बल्कि जीवन का सबसे महत्पूर्ण तत्व 'प्रेम' का वास हो।

इसलिये हम अपनी प्रणाली में हृदय पर काम करते हैं। हम हृदय पर ध्यान करते हैं हम उसे परिष्कृत करने और उसमें दिव्यता भरने का प्रयास करते हैं हृदय के खोये हुए गुणों और शक्तियों को जीवन में पुनः स्थापित करते हैं। जैसा कि मेरे मालिक हमेशा कहा करते थे इसका पहला साक्षात लक्षण यह है कि मानव प्राणी सही अर्थो में मानव बन जाये। अच्छे कपड़े पहनने, डिग्रियाँ हासिल करने और अच्छे मकानों में रहन सहन तथा अच्छे खान पान से कोई व्यक्ति सही अर्थो में मानव नहीं बनता। ये तो भौतिक समृद्धि के बाह्य लक्षण हैं जिनके पीछे प्रायः अत्यन्त दुःखी और रुग्ण आत्मा छिपी रहती है। राजाओं के बारे में मुझे एक पुरानी कहावत याद है 'राजा की सेज काँटों भरी होती है' क्योंकि उनकी जनता के प्रति भारी जिम्मेदारी होती थी। लेकिन आज आदमी को अपनी जिम्मेदारियों की वजह से नहीं बल्कि हृदय की उस चीत्कार की वजह से नींद नहीं आती जिसे वह सुनना नहीं चाहता। हृदय कहता है 'मेरे दोस्त, कम से कम अब तो मेरी बात सुन ले, रात का समय है और कोई शोर शराबा भी नहीं है' और हम नशा करके और नींद की गोली खाकर इस जद्दोजहद को समाप्त करने का प्रयास करते हैं जबकि जरूरत इस बात की है कि हम बैठकर कहें 'हाँ, अब मुझे बताओ मुझे क्या करना चाहिये। मैंने क्या गलती की है? मैं उसे कैसे सुधारूं?'

लेकिन हम ऐसा करने से डरते हैं, क्योंकि हमने जो गलती की है, जान बूझकर की है। मानव आत्मा की सच्चाई यह है कि जो कार्य हम अनजाने में गलत कर बैठते हैं उसके लिए हमें कभी अपराध बोध नहीं होता। अपराध बोध तभी होता है जब हम जानते हैं कि यह गलत है। अपराध बोध तब आता है जब मैं स्वयं से कहूँ 'खबरदार तुम्हारा नाश होने वाला है।' हम पूरी दुनिया त्याग सकते हैं, लेकिन यदि हमारा ही नाश हो जाये तो हम कहाँ जायेंगे। आजकल दिमागी बीमारी का यह पुराना लक्षण है। पहले हम स्वयं से झूठ बोलते हैं फिर मादक दृव्य और अन्य सभी तरह की चीजें लेने लगते हैं इन सबकी वजह से हम एक ऐसी खामोशी में पहुँच जाते हैं जहाँ से हमें बाहर निकलने की जरूरत नहीं है और इसका अंत है

आत्महत्या। देखिए कैसी दुःखद स्थिति है। हृदय को शान्त करते-करते, हमने वास्तव में अपनी हत्या कर डाली। हम अपनी बेबसी में एक नशेड़ी की भाँति घूमते रहते हैं। हमारा स्वयं से नियंत्रण खो जाता है। हम अपने स्वामी नहीं रह जाते। नहीं, नहीं यह मादक दृव्यों की लत नहीं है यह धन की लत है ज्ञान की लत है हर एक चीज की लत है।

अब जरा आप ईसा मसीह के बहुचर्चित प्रलोभन का स्मरण कीजिये। शैतान उनके सामने उपस्थित हुआ और उनसे बोला 'माँगो, क्या माँगते हो।' कैसी विचित्र स्थिति है कि भगवान कभी नहीं कहते कि कुछ भी माँग लो, लेकिन शैतान हमें कहीं भी, कभी भी, देने की पेशकश करता रहता है। ईसा मसीह ने अपने उस चर्चित कथन में कहा 'यदि मनुष्य अपनी आत्मा खोकर पूरी दुनिया भी पा ले तो उससे उसे क्या लाभ होगा'' हमें इन उद्धरणों से यह कहकर परहेज नहीं रखना चाहिये कि इनका सम्बन्ध धर्म से है। यदि इनमें सच्चाई हैं, तो हमें इन्हें अवश्य स्वीकार करना चाहिये। यदि बच्चा भी सही बात कहे तो हमें उसे अवश्य स्वीकार करना चाहिये। जैसा कि भारत में कहा जाता है 'यदि घोड़ा भी सच बोले तो हमें उसे भी स्वीकार करना चाहिये।' सत्य तो सत्य है क्योंकि हम इसे पहचानते हैं। हमें गुस्सा इसलिये आता है कि हम सत्य को पहचानना नहीं चाहते। कौन व्यक्ति स्वीकार करना चाहता है कि हम अपने कर्मो के कारण दरिद्र हैं, हम अभागे हैं, हम मूर्ख हैं, हम गंदे हैं। हम अपना बचाव करते रहते हैं और सारा दोष दूसरों के मत्थे मढ़ते रहते हैं। यहाँ तक कि धर्म और ईश्वर को भी नहीं बख्शाते। यही कारण है कि मंदिरों और गिरिजाघरों की संख्या तो बढ़ रही है, लेकिन उनमें लोगों की संख्या कम हो रही है। इसका कारण यह नहीं है कि उन लोगों की ईश्वर में आस्था नहीं है जैसा कि पश्चिमी जगत के मेरे बहुत से दोस्त मुझे बताते हैं। मुझे तो संदेह है कि उनकी ईश्वर में आस्था बहुत ज्यादा है। लेकिन वे चाहते हैं कि ईश्वर अपने स्थान पर रहे और हम अपने साथ पर रहें। अन्यथा यह बहुत कठिन हो जाता है क्योंकि ईश्वर तो हमारे हृदय में विद्यमान हैं। यह मेरी आत्मा की आवाज है। उसी की बदौलत मैं प्रेम कर सकता हूँ और अपनी भावनायें व्यक्त कर सकता हूँ। यदि मैं ईश्वर को अपनी आत्मा और चेतना क्षेत्र में प्रवेश करने दूँ, तो स्थिति उस टेलीफोन जैसी हो जायेगी जो बजता तो है लेकिन प्रायः हम उसे अटेंड नहीं करना चाहते। आधुनिक 'आन्सरिंग' मशीन का आविष्कार इसका एक अनूठा उदाहरण है। यह एक बेजान मशीन है जिसकी हम अवहेलना कर सकते हैं जिसे हम अपनी सुविधानुसार सुन सकते हैं और इच्छानुसार जवाब दे सकते हैं। यदि टेलीफोन

बजने पर हम उसे उठा लें और दूसरी ओर से आने वाली आवाज को सुनें तो उसका जवाब देना हमारे लिए लाजमी हो जाता है। यहाँ तक कि 'ना' कहना भी एक जवाबदारी है जिसमें आपका नाम, रुतबा, दोस्ती सब दाँव पर लग सकते हैं। अतः मैं टेलीफोन के साथ जुड़ी इस आन्सरिंग मशीन को प्रायः हमारी कमजोरी मानता हूँ। इसका इस्तेमाल हम दूसरों की सुविधा के लिये नहीं, अपनी सुविधा के लिये करते हैं। यदि मैं एक डाक्टर हूँ, तो यह भूल जाता हूँ कि सम्भवतः कोई मरणासन्न व्यक्ति मुझे टेलीफोन करने की कोशिश कर रहा हो। लेकिन मैं इसके बारे में नहीं जानना चाहता, इसीलिये तो मैंने अपने यहाँ यह सुविधाजनक मशीन लगा रखी है।

यदि यही मानव व्यवहार की सच्चाई है तो इस टेलीफोन (हृदय की ओर संकेत करते हुये) के बारे में क्या कहा जाय। इसमे तो कोई सर्किट नहीं होता है और न ही कोई बैटरी। फिर भी यह हमेशा विद्यमान रहता है। लेकिन भगवान दयालु और प्रेम से सराबोर हैं। मान लीजिये कोई दोस्त आपको तीन बार फोन करे और जवाब न मिले तो वह आपके घर चला आयेगा। लेकिन भगवान ऐसा नहीं करते। वह कहाँ से आयेंगे? और कहाँ जायेंगे? वह तो यह ज़ानकर चुप्पी साधना पसंद करेंगे कि एक समय आयेगा जब आप पुनः मजबूरन उनकी शरण में जायेंगे। आस्तिक हो या नास्तिक, हर व्यक्ति के जीवन में ऐसी स्थिति, ऐसे क्षण आते हैं, जब उसका बच्चा या पत्नी मरणासन्न हो या उसका कारोबार चौपट हो गया हो। ऐसे में वह आधी रात को अपने शयन कक्ष में बैठकर विलाप करता है और भगवान को याद करता है भले ही भगवान को कोसने के लिए ही सही। तब हृदय की वाणी फिर से मुखरित होने लगती है। वह कहता है 'आह, तुम्हें अब भी याद है कि मैं यहाँ हूँ।' इस पर आप कहते हैं कि 'शुक्र है भगवान कि आप यहाँ विद्यमान हैं।' ऐसी स्थिति में आपको हृदय की बात गहराई से सुननी चाहिये।

भक्ति योग तो केवल यह कहता है 'हताशा के उस क्षण के आने तक इंतजार मत करो' अन्यथा आपकी स्थिति जहाज के उस मालिक जैसी होगी जो जहाज में सुराख होने पर बीच समुद्र में उसकी मरम्मत करने का प्रयास कर रहा हो। यात्रा शुरू होने से पहले ही अपने जहाज की मरम्मत कर लो। ध्यान करने का प्रयास करने का यही एक सीधा सा तर्क है कि हम सही अर्थ में मनुष्य, एक सम्पूर्ण मानव बनने का प्रयास करते हैं और अंत में दिव्य मानव बन जाते हैं इसके पीछे कुछ पाने की अभिलाषा नहीं होती, क्योंकि जैसी कि पुरानी कहावत है, 'जिसने भगवान को पा लिया उसने सब कुछ पा लिया।'

इसका खुलासा मैं कुछ इस तरह से करता हूँ। मान लीजिये कोई व्यक्ति शादी करता है। शादी के बाद पत्नी पर भी पति का हक है उसके गहनों पर भी पति का हक है, उसकी सम्पत्ति पर भी पति का हक है, यानि सब कुछ पति का है। आपके बच्चे सोचते हैं कि सब कुछ उनका है। आप इस बच्चे से पूछिये कि ये घर किसका है, वह कहेगा, 'मेरा घर' न कि मेरे बाप का घर या मेरी माँ का घर बल्कि 'मेरा घर'। यह खिलौना किसका है 'मेरा खिलौना।' जब मुझमें यह कहने का सामर्थ्य है 'यह मेरा भगवान है' (धर्म की दृष्टि से तो मेरा भगवान आपके भगवान से भिन्न हो सकता है) और मैं श्रद्धापूर्वक कहूँ कि ईश्वर मेरा है, क्योंकि वह मेरे भीतर विराजमान है मैं ईश्वर का ही एक अंश हूँ, ईश्वर ही मुझे नियंत्रित कर रहा है, वही मुझे हिला डुला रहा है जीवित रखे हुये हैं। बताइये, ऐसे व्यक्ति को किस चीज का अभाव हो सकता है। इस बात को इस तरह समझिये कि यदि आप किसी राजा के मित्र हैं और छुट्टी मनाने उसके यहाँ जाते हैं। क्या वह राजा उन चीजों के लिये आपको इन्कार कर देगा जो उसके पास है। आप भी वैसा ही भोजन करेंगे, जैसा राजा करेगा। आप भी वैसे ही रहेंगे, जैसे राजा रहता है। राजा का दोस्त होने की हैसियत मात्र से ही आपका हर सुख सुविधा पर राजा के समान ही अधिकार होगा। किसी अमीर आदमी का हर दोस्त यह बात अच्छी तरह जानता है। यही कारण है कि हम लोग अमीर लोगों की दावतों में आमंत्रित होना पसंद करते हैं। उनके यहाँ अच्छा रसोइया होता है, बेहतरीन किस्म की शराब होती है और हम उम्मीद करते हैं कि सब कुछ बेहतरीन होगा क्योंकि जो कुछ वह खायेगा हमें भी देगा। अब बताइये, भगवान के मामले में यह बात भिन्न कैसे हो सकती है। जो कुछ भगवान का है, वह निश्चित तौर पर मेरा है।

इस प्रकार भगवान को पाने में ही समझदारी है। भगवान से उसकी बनायी हुई चीजों की माँग करना निरर्थक है। प्राचीन यौगिक परम्पराओं में योगियों को असीम शक्ति, असीम ओज, कल्पनातीत शक्ति, अद्वितीय सौन्दर्य और वाणी की मधुरता प्राप्त हुई है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि यदि आप हठ योग की पाठ्य पुस्तकें पढ़ें तो पृष्ठ दर पृष्ठ आपको इन सबका उल्लेख मिलेगा। लेकिन मृत्यु के पश्चात वे पुनः यहाँ आ गये और यह चक्र अनवरत चलता रहता है। इस विश्व के सभी महान शक्तिशाली राजाओं और महान दार्शनिकों की यही नियति रही हैं। लेकिन संत इसके अपवाद हैं, क्योंकि जैसा कि भक्ति परम्परा कहती है, उनकी वैभव सम्पदा ऐसी नहीं होती जिसे कोई चुरा सके अथवा जो पीछे छूट जाये या नष्ट हो जाये क्योंकि वह वैभव सम्पदा तो उनकी अन्तरात्मा में निहित रहती है।

अब मैं पुनः ईसाई धर्म पर आता हूँ। ईसा ने कहा था 'मेरा साम्राज्य इस दुनिया का नहीं है।' यह बहुत ही सीधा सादा कथन था। 'क्या आपको लगता है कि मेरे पास आकर आप धनाढ्य या शक्तिशाली या शिक्षित बन जाओगे। आप मेरी भाँति रेगिस्तानों में भटकने वाला बनजारा बन सकते हैं जो भगवान से आपके कल्याण की कामना करता है।' लेकिन यदि ईसा मसीह आज जीवित होते तो सम्भवतः यह कहते 'याद रहे मैं असख्य लोगों के लिए अन्न पैदा कर सकता हूँ, लेकिन स्वयं के लिए मुझे कुछ नहीं चाहिये। यदि आप ऐसा व्यक्ति बनना चाहते है तो उसके लिए यह रास्ता है।' ईसाई परम्पराओं में प्रेम और करुणा का बाहुल्य जो यौगिक परम्परा में दुर्लभ थी। लेकिन दुर्भाग्यवश ईसा की इस भूमि पर हमें प्रेम और करुणा देखने को नसीब नहीं होती। ध्यान रहे कि हम छोटी-छोटी दान सहायता को प्रेम और करुणा मानने की भूल न कर बैठें। मेरी समझ में यह आत्मा की तृप्ति के लिए दिया गया 'दान-पुण्य' है। यह तो ठीक ऐसी स्थिति है मानों लाखों की संख्या में मर रहे इथोपिया वासियों को नाम मात्र का दान दिया जाये जैसे ऊँट के मुँह में जीरा। ऐसा करके हम शुद्ध अन्तरात्मा के साथ अपने घर लौट आते हैं, लेकिन इसमें अन्तर्रात्मा तो कतई शुद्ध नहीं होती। मेरी या किसी अन्य व्यक्ति की ऐसी मान्यता नहीं है बल्कि आप में से हर एक व्यक्ति जानता है कि सच्चाई यही है। लोग अपने पास संचित अनाप शनाप धन दौलत में से इस तरह के दान पुण्य करते रहते हैं।

जब मैं स्कूल में था तो इस प्रकार के आयोजन होते थे। मैं एक क्रिश्चियन स्कूल (प्रोटेस्टेण्ट स्कूल) में पढ़ता था और समय-समय पर उस समुदाय के लोगों पर 'अन्तरात्मा के जुनून' सवार होते थे। इसलिये धर्मार्थ संध्यायें होती थी। तथा लोग बेचने और दान करने के लिए कुछ चीजें और पैसे लेकर आते थे। निश्चित तौर पर वे ऐसी चीजें होती थीं जिनकी उन्हें जरूरत नहीं होती थी जैसे पुराने जूते, पुराना कोट आदि आदि। जो चीजें फेंकने योग्य थी दान में दी जाती थीं। लेकिन दुर्भागयवश आज हम तो यह भी नहीं करते। अखबार में आप पढ़ते होंगे कि कीमतें ऊँची रखने के लिए हम कितना ही सामान जला देते हैं। हर रोज जहाज के जहाज पनीर नष्ट कर दिया जाता है। हजारों लीटर दूध गटर में बहा दिया जाता है। माँस की कीमतें ऊँची रखने के लिये गायों और भेड़ों को हलाल किया जाता है। इसलिये वह मूल भावना कहाँ लुप्त हो गयी कि हमें जिन चीजों की जरूरत नहीं है उन्हें दान में दे दिया जाये। आजकल तो यह भावना ही खत्म हो गयी है।

अतः हृदय का संदेश बहुत स्पष्ट है। इसका संदेश यह है कि भगवान ने आपको

दिल दिया है इसलिये दूसरों के बारे में सोचिये। दिल दर्पण नहीं है जिसमें आप अपना ही चेहरा निहारते हैं दिल पाया है तो दूसरों के बारे में सोचिये। दिल का काम तो दूसरो के बारे में सोचने का ही है। जो भी दें, दिल खोलकर दें। यह सोचकर दिया गया लाख डालर का चेक भी व्यर्थ है कि यह व्यक्ति बार बार तंग कर रहा है इसे एक लाख डालर दे दो। दिल से दिया गया उपहार ही सही अर्थ में उपहार होता है।

आपने 'द गिफ्ट आफ मैगी' नामक कहानी पढ़ी होगी। इस कहानी में एक 22 वर्ष का लड़का और 18 वर्ष की लड़की प्रेमी-प्रेमिका हैं। दोनों गरीब हैं। वे शादी करते हैं और एक अटारी में रहने लगते हैं। उनके पास न पैसा है न बैड है न गद्दे है। कुछ भी तो नहीं है। क्रिसमस निकट है इसलिये वे एक दूसरे को गिफ्ट देना चाहते हैं। लड़की के खूबसूरत सुनहरे लम्बे बाल हैं। लड़का जानता है कि उसकी प्रेमिका को कछुए के कवच वाली कंघी पसंद है। लड़के के पास एक घड़ी है जिसमें चेन नहीं है। लड़की की दिली तमन्ना है कि वह अपने प्रेमी के लिए चेन खरीदे। लेकिन उनके पास तो एक गुलदस्ता खरीदने के लिए भी पैसे नहीं है। क्रिसमस आता है। दोनों प्रातःकाल उदास मन से बाहर निकल जाते हैं और एक दूसरे से आँख भी नहीं मिला पाते। शाम को लड़का एक पार्सल लेकर लौटता है और उसे टेबल पर रखकर लड़की का इन्तजार करने लगता है। आधे घंटे बाद लड़की भी आती है। लड़का उसकी ओर देखकर भौचक्का रह जाता है। उसके सिर पर बाल नहीं है उसने अपने बाल कटवा दिये हैं उसके हाथ में एक छोटा पार्सल है। दोनों एक दूसरे को अपना-अपना पार्सल देते हैं। लड़का कहता है 'हम इन गिफ्ट को न खोलें तो ही बेहतर होगा।' लड़की पूछती है 'क्यों? मैंने तो बड़े चाव से यह तुम्हारे लिये खरीदा है।' लड़का बोलता है, 'हाँ लेकिन मैं तुम्हें देखते ही जान गया था कि तुमने मेरे लिये गिफ्ट खरीदने के लिए अपने बाल बेच दिये हैं' लड़की उसकी बाहों में लिपटकर रोने लगती है और बोली 'हाँ लेकिन बालों का क्या है बाल तो फिर उग आयेंगे।' लड़का कहता है अपना गिफ्ट खोलकर तो देखो। लड़की पार्सल खोलती है और उसमें एक खूबसूरत कंघी है, जिसकी उसे वर्षो से चाहत थी। लेकिन क्या करे उसके बाल ही नहीं हैं जो इसका इस्तेमाल कर सकती। तब वह अपने प्रेमी से कहती है कि तुम भी अपना गिफ्ट खोलो। वह पार्सल खोलता है और देखता है कि उसमें एक सुनहरी चेन है जिसकी उसे बरसों से जरूरत थी। लड़की कहती है 'मेरे बालों की चिन्ता न करो, कम से कम इसे तो अपनी घड़ी में पहन लो। देखूँ तो यह तुम्हारे कोट की जेब से लटकती हुई कैसी लगती है।' लड़का थोड़ा

सा गम्भीर होता है लेकिन अन्त में उसके धीरज का बाँध टूट जाता है। कहता है 'रहने दो डार्लिंग।' लेकिन क्यों? मैंने तो यह तुम्हारे लिए खरीदी है। वह कहता है 'मैंने तुम्हारे लिए कंघी खरीदने के लिए अपनी घड़ी बेच दी।' यह है प्रेम का वह दर्जा, जिसे हमें सर्वस्व यहाँ तक कि अपना जीवन न्यौछावर करके भी प्राप्त करना होगा। यह सुन्दर सी कहानी मैंने उस समय पढ़ी थी जब मैं स्कूल में था और इसे पढ़कर मैं रो पड़ा था कि ऐसा भी प्यार होता है। दुर्भाग्यवश, आज हम इस बीते समय की यह कहानी मानकर चर्चा करते हैं। आधुनिक औद्योगिक तथा तकनीकी समाज की यह दुःखद स्थिति है कि हम प्रेम के बारे में प्रायः भूतकाल में बात करते हैं। मैं रोज सैकड़ों लोगों से मिलता हूँ जो कहते हैं कि 'मैं उससे प्यार करता था' या 'मैं उससे प्यार करती थी।' हाँ लेकिन आज क्या स्थिति हैं, वर्तमान में क्या चल रहा है। क्या आज आप प्यार नहीं करते? कोई जवाब नहीं मिलता।

हमें ईश्वर साक्षात्कार और आत्म साक्षात्कार की बातें महान संतों और मनीषियों के लिये छोड़ देनी चाहिये, क्योंकि वे हमारे दूरगामी लक्ष्य हैं। हमें लक्ष्यों को हासिल तो करना है। इन्हें हासिल किये बिना हमारा जीवन कभी सम्पूर्ण नहीं बन सकता। लेकिन आइये इस दिशा में पहला कदम बढ़ायें। हमारा यह प्रयास स्व हित के लिए होगा। शुरुआत दिल से कीजिये। दिल आपके साक्षात्कार का साधन होगा। लेकिन आपको दिल के साथ शुरुआत आज से ही करनी होगी और जीवन में इसको उचित स्थान देना होगा। आपकी जीवन पद्धति में दिल का स्थान मातहत का नहीं बल्कि सर्वोपरि होना चाहिये। आपके ऊपर दिल की हुकूमत रहे, तभी आपको लगेगा कि आपने परिवर्तन की दिशा में पहला कदम बढ़ाया है और आप एक संगदिल इंसान बन गये हैं।

हम शोषण से हमेशा डरते हैं। इसका कारण यह नहीं है कि हम हृदय विहीन रहना चाहते हैं। लेकिन जैसे ही किसी को पता चलता है कि आप संगदिल इंसान हैं वह आपका शोषण करने की कोशिश करेगा। हाँ लेकिन उदाहरण के तौर पर सितार की नियति को देखिये। क्या सितार के तारों को कसे बिना आप संगीत पैदा कर सकते हैं? आप उस व्यक्ति को क्या कहेंगे, जिसके पास सबसे खूबसूरत, महंगा गिटार हो लेकिन वह उसे कभी नहीं बजाता। वह कहता है देखो कैसा नाजुक यंत्र है। मैं तो इसके तारों को खींच नहीं सकता। जब हम दूसरों के साथ तारतम्य स्थापित करेंगे तभी दिल का संगीत पैदा होगा। हमें एक दो या सैकड़ों व्यक्तियों नहीं बल्कि पूरी मानव जाति के साथ तारतम्य स्थापित करना होगा। तभी आपको इस चमत्कार का आभास होगा कि हम जितना ज्यादा दान करते हैं

उससे कहीं अधिक हमें मिलता है।

जैसा कि मेरे मालिक हमेशा कहा करते थे 'भारत में बेचारे भिखारी भीख माँगते हैं क्योकि यह उनकी नियति है। विश्व के धनाढ्य अरबपति व्यक्ति (भी एक तरह से) भीख माँगते हैं क्योंकि वे और अधिक अमीर बनना चाहते हैं।' जब हम दिल से दाता बनते हैं तो यह चमत्कार घटित होता है कि जितना अधिक आप देते हैं उतना ही अधिक आपको देने के लिए मिलता रहता है। इसलिये पाने का मात्र एक ही रास्ता है दान। दान ज़ेब से नहीं, दिल से किया जाना चाहिये। अपनी हैसियत के अनुसार तथा उसी चीज को दान दें जो आपके पास हो। यह दान एक क्षण की सहायता हो सकती है सही समय पर दी हुई सलाह हो सकती है सही समय पर सही व्यक्ति को कहा गया सहानुभूति का मात्र एक शब्द हो सकता है, जो संभवतः इस व्यक्ति को आत्म हत्या करने से रोक पाये। एक बार शुरुआत करने पर हम पायेंगे कि प्रेम इस कदर फलता फूंलता है कि वह योग बन जाता है। अब 'मैं' और 'मेरा हृदय' एकाकार हो जाते हैं। जैसा कि मैंने शुरू में बताया था योग का अर्थ है मिलन और इसी 'महानतम मिलन' को हासिल करना हमारा लक्ष्य है। यह 'मेरा' दिल नहीं है। 'मैं' और 'मेरा दिल' एकाकार हो जाते हैं क्योंकि दिल में ईश्वर का वास है इसलिये मेरे अहम का भी ईश्वर में समावेश हो जाता है।

धन्यवाद।

5

लोक वार्ता

टोरिनो, इटली

4 अगस्त, 1988

मेरे लिये यह एक सुखद संयोग है कि मैं यहाँ इस संस्था से हूँ। शायद 1941 या 1942 में जब मैं बम्बई में पढ़ा करता था तब मेरा योग से प्रथम परिचय स्वामी कुवालयानन्द के माध्यम से हुआ था। मैं स्वयं उनसे कभी नहीं मिला लेकिन मेरे पास उनकी लिखी किताबों का एक सेट था। मैंने उनकी किताबों से योग का अध्ययन शुरू किया। अतः यहाँ उनका नाम तथा फोटोग्राफ देखकर मुझे बेहद खुशी और सुखद आश्चर्य हुआ। मुझे खुशी है कि आप सभी से मेरी मुलाकात मानो कमोवेश उन्हीं के आशीर्वाद का फल है।

उन दिनों मैं अपने शारीरिक विकास को लेकर बहुत चिन्तित था, क्योंकि जब मैंने स्कूल छोड़ा था उस समय मेरा वजन करीब 40 किलो और लम्बाई तकरीबन एक मीटर सोलह सेन्टीमीटर थी। ऐसे में मेरा ध्यान शरीर पर होना लाजमी था। आत्मिक शक्तियों के बारे में भी मेरी उच्च धारणा थी, क्योंकि इन सभी यौगिक पुस्तकों में हमारे लिए कई चीजों की संभावना व्यक्त की गयी थी। मेरे विचार में हम जवानी में एक ऐसी अवस्था से गुजरते हैं, जब हम भारी शक्तियाँ अर्जित करना चाहते हैं और ऐसा दिखावा करते हैं मानों हम भगवान हैं।

अतः मेरी योग शिक्षा की शुरुआत इस प्रकार हुई। मैं पुस्तकों में दिये गये चित्रों को समझ लेता था। उनकी किताबों में बहुत बढ़िया सचित्र उदाहरण दिये गये थे। मैं सात या आठ वर्षो तक योग आसनों और प्राणायाम का कठिन अभ्यास करता रहा। अतः स्वामी कवालयानन्द एक अर्थ में मेरे कई गुरुओं में से एक हैं, जिनका मैं योग शिक्षा के लिए बहुत आभारी हूँ।

मेरा शारीरिक और आत्मिक शक्तियों से बहुत जल्दी मोह भंग हो गया क्योंकि बिना प्रशिक्षक योग अभ्यास करने से मुझे कुछ भयावह परिणाम भोगने पड़े थे। एक अवस्था तो ऐसी आई कि मैं लगभग सनकी सा हो गया। लेकिन मानों कोई कृपालु देव मेरा ध्यान रख रहा हो। एक स्थिति ऐसी भी आई कि मैं अकेला नहीं रह पाता था, कहीं अकेला नहीं जा सकता था दिन में अपने घर में भी मेरी एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने की हिम्मत नहीं होती थी। सौभाग्यवश, मैं उस समय यूरोप में नहीं बल्कि भारत में था यदि मैं किसी पाश्चात्य देश में होता, तो मुझे

दिमागी इलाज के लिए डाल दिया जाता और आज मैं अन्य लोगों से बात करने के लिए यहाँ नहीं होता।

बहरहाल, इसके बाद 1964 में जब मैं अपने मालिक से मिला तब तक मैंने अपने आंतरिक जीवन का बहुत नुकसान कर लिया था। सबसे पहली बात मैंने अपने मालिक के सामने रखी थी वह थी अकेले रहने का भय। उस भय के साथ जीना बहुत कठिन काम था क्योंकि मैं अपने कम्पनी के सेल्स विभाग में था और मुझे महीने में बीस पचीस दिन यात्रा करनी पड़ती थी। ऐसे में हर रोज अलग-अलग स्थानों पर होटलों में सोना पड़ता था। मालिक ने मुझे बताया ये सब हठयोग अभ्यास, खासकर प्राणायाम की वजह से है क्योंकि बिना मार्गदर्शक के यह घातक है और मार्गदर्शक के साथ भी बहुत खतरनाक हो सकता है जब तक कि मार्गदर्शक इसमें स्वयं पारंगत न हो। मेरे मालिक के अनुसार आज भी भारत में हठयोग के पारंगत बहुत कम हैं इसका अर्थ यह नहीं है कि इस पद्धति में उन्होंने पारंगतता हासिल नहीं की बल्कि इसका अर्थ यह है कि इस पद्धति से अभ्यासी को मिलने वाली शक्तियों को वे सँभालने में समर्थ नहीं थे। यही मेरे लिये पहला सबक था हालाँकि पातंजलि ने योगसूत्र की रचना की है लेकिन उसकी व्याख्या करने के लिए एक गुरु की जरूरत पड़ती है और उन पद्धतियों का पालन करने में भी हमें गुरु की जरूरत पड़ती है।

मैं बाद में सैकड़ों लोगों से मिला, जिन्हें प्राणायाम का अभ्यास करने की वजह से खतरनाक परिणामों का सामना करना पड़ा था। पिछले सप्ताह यहाँ फ्रांस में कोरमैटस में एक व्यक्ति मिला था। किसी चीज को पढ़ाना एक बात है तथा अभ्यास द्वारा जागृत शक्ति को नियंत्रित कर पाना दूसरी बात है। विशेष रूप से कुण्डलनी की शक्ति को नियंत्रित करना बहुत मुश्किल है। हमारे स्वयं के भीतर की शक्तियों को नियंत्रित करना बहुत मुश्किल है। जब हम स्वयं अपने भीतर की शक्तियों को नियंत्रित नहीं कर पाते तो किसी दूसरे व्यक्ति की शक्ति को कैसे नियंत्रित कर सकते हैं।

यह मेरा सौभाग्य था कि मैं 1964 में अपने मालिक श्री रामचन्द्र जी महाराज के सम्पर्क में आया और उन्होंने मेरे जीवन की सबसे पहली समस्या उस भय को खत्म किया। उसमें उन्हें डेढ़ वर्ष लगा। लेकिन मुझे खुशी है कि अन्ततोगत्वा वह भय खत्म हो गया। उससे मुझे छुटकारा कैसे मिला, यह जानना भी बहुत रुचिकर है। मालिक के साथ कई ध्यान सिटिंग के बाद उन्होंने मुझे बताया 'यह कम होता जा रहा है' लेकिन वास्तव में वह कम नहीं हो रहा था। सम्भवतः पाँच-छः प्रतिशत सुधार हुआ हो। इसीलिये एक दिन मैंने कहा 'मालिक सच कहूँ इस भय में थोड़ी

सी कमी जरूर आयी है लेकिन कोई खास नहीं।'

ऐसा सुनकर मानों उनके अन्दर कुछ हलचल हुई। उन्होंने कहा 'अच्छा यह बात है' आओ, मेरे सामने ध्यान में बैठो' ध्यान सत्र के दौरान मैंने देखा मानों एक काला सा साया मेरे चेहरे के अन्दर से बाहर निकल रहा है। चालीस मिनट के बाद उन्होंने कहा कि 'अब ये खत्म हो गया है।' वास्तव में वह उसी समय खत्म हो गया था।

हमें इन शक्तियों के साथ खिलवाड़ नहीं करना चाहिये। यौगिक साहित्य में भी इसकी तुलना बच्चे को चाकू थमाने से की गयी है। अतः योग शास्त्र हमेशा चेताते हैं, 'इन शक्तियों को सँभालने से पहले इनके इस्तेमाल के बारे में अच्छी तरह जान लें।' यही कारण है कि पातंजलि के अष्टांग योग में प्रथम दो सोपानों यम और नियम पर इतना अधिक बल दिया गया है। जैसा कि आप जानते हैं शक्ति ऐसी चीज है जिसका उपयोग किसी भी तरह से किया जा सकता है। इसका उपयोग अच्छे काम के लिये भी किया जा सकता है और बुरे काम के लिए भी। अणु को जो शक्ति बाँधे हुऐ है वह विश्व को नष्ट कर सकती है। हमारे यहाँ विनाशक शक्ति के रूप में काली माँ है तो उन्हीं का दूसरा रूप माँ शक्ति है। इससे यह सिद्ध होता है कि इन शक्तियों का उपयोग ऐसे व्यक्तियों द्वारा किया जाये जिनमें न केवल उनके उपयोग की क्षमता हो बल्कि चरित्र भी हो। मेरे मालिक भी हमेशा कहा करते थे 'प्रायः यह बहुत दुर्भाग्यपूर्ण बात है कि अधिकतर लोग योग के खतरों की जानकारी लिये बिना ही योग में चले आते हैं। फायदे तो हर व्यक्ति जानता है, लेकिन खतरों की उसे जानकारी नहीं होती।' यही कारण है कि मेरे मालिक किसी व्यक्ति को शक्ति देने से पहले उसके चरित्र की जरूरत पर हमेशा बल देते थे। आफिसों में भी यदि आप फर्म के पैसे का काम देखते हैं तो उसके लिए भी आपका चरित्रवान होना जरूरी है। यही कारण है कि योग सम्बन्धी निर्देश सीधे आसन और प्राणायाम से शुरू होते हैं तथा यम और नियम सम्बन्धी पहलुओं पर बल नहीं दिया जाता है। खासकर जब कुण्डलिनी जागृत की जाती है तो कुछ भी हो सकता है। जिसके बारे में हठयोग प्रदीपिका में स्पष्ट चेतावनी है कि उससे सभी मानवीय प्रवृत्तियों में विकार आ सकता है। विकृत कामी और अपराधी आदि इसके उदाहरण हैं और अन्त में ऐसे लोग पागलखाने पहुँच जाते हैं।

इसी कारण योग की शाखा 'सहज मार्ग में' प्राणायाम अथवा आसन अथवा मन्त्र अथवा किसी चीज का प्रावधान नहीं है। इसका बहुत महत्वपूर्ण कारण तो मैं पहले ही बता चुका हूँ। दूसरा कारण यह है कुण्डलिनी की शक्ति से भी आपको मुक्ति नहीं मिल सकती। इसीलिये पातंजलि ने इसमें आगे के सोपान प्रत्याहार,

धारणा, ध्यान और समाधि जोड़े हैं। आजकल हम योग पर ही आकर रुक जाते हैं। प्रथम दो और अन्तिम चार सोपानों को नहीं छुआ जाता। हम केवल प्राणायाम और आसनों तक ही सीमित रहते हैं। निःसंदेह इसके परिणाम बहुत अच्छे नहीं है।

रामचन्द्र मिशन में मेरे मालिक ने मन से शुरुआत की है, इसीलिये इसे राजयोग कहा जाता है। मेरे मालिक और उनके मालिक की खोज यह है कि जब हम मन को नियमित कर लेते हैं तो बाकी सब चीजें स्वतः ही नियमित हो जाती हैं। चरित्र निर्माण पुस्तकों से नहीं हो सकता और न ही नियमों के पालन से बल्कि चरित्र हमारे भीतर की पुकार है जिसका हम जवाब देते हैं। यही असली चरित्र है।चरित्रवान व्यक्ति समाज के दबाव अथवा कानून की बाध्यता अथवा संस्कृति के सम्मोहन की वजह से चरित्रवान नहीं होता बल्कि यह उसके भीतर की जरूरत होती है।

इसीलिये मेरे मालिक ने चरित्र को जीवन की भीतरी और बाहरी प्रवृत्तियों में संतुलन की संज्ञा दी। आजकल हम देखते हैं कि कई लोग दो दिशाओं में बँटे होते हैं। एक रास्ता निर्मलता, सत्यता का आह्वान करता है और दूसरा, दुर्भाग्यवश इन्द्रियों की तुष्टि और आरामप्रद जीवन की ओर खींचता है। हालाँकि यह सच है कि इस ब्रह्माण्ड में कोई भी चीज सही जीवन के प्रति आतंरिक प्रेरणा के विरुद्ध कार्य नहीं कर सकती। तथापि, हमारे सामने एक भयावह स्थिति पैदा हो जाती है कि हम अन्तर्मन की इस पुकार को सुन नहीं पाते। उसकी इतनी अवहेलना हो चुकी है और आज उसकी आवाज इतनी कमजोर पड़ चुकी है कि हम उसे सुन भी नहीं सकते।

अतः सहजमार्ग में आतंरिक निर्मलता पैदा करने पर बल दिया जाता है। मेरे मालिक का यह विचार है कि मन को नियमित किये बिना कोई रास्ता नहीं है। हर चीज की शुरुआत मन से ही होती है। विचार उठते हैं, कार्य होता है, परिणाम निकलते हैं फिर विचार उठते हैं, कार्य होता है और फिर परिणाम निकलते हैं। यह एक अंतहीन प्रक्रिया है।

इसीलिये कई लोग हमसे पूछते हैं 'आप आसन और प्राणायाम से शुरू क्यों नहीं करते।' हम कहते हैं 'ठीक है असली शुरुआत तो यम और नियम से होती है।' लेकिन आजकल कोई नहीं करता। आसन और प्राणायाम से शारीरिक पद्धतियों, आत्मिक पद्धतियों और ऊर्जा पद्धतियों के अलावा कुछ नहीं मिलता। यदि आप भाग्यशाली हुए और आपकी कुण्डलिनी जागृत हो जाये तो इससे भी आपको मुक्ति नहीं मिल सकती। मेरे मालिक कहा करते थे 'पातंजलि द्वारा दी गयी योग की प्रथम परिभाषा याद रखें, जिसमें उन्होंने योग का असली अर्थ क्या है इसके बारे में बहुत

ही प्रत्यक्ष इशारा किया है **चित्त वृत्ति निरोध**।' इससे मानसिक वृत्तियाँ रुक जाती हैं तथा मन एक नियामक यंत्र की भाँति परिशोधित हो जाता है और उसके बाद आप मन का उपयोग अपने आध्यात्मिक उत्थान के लिए करते हैं। मेरे मालिक की शिक्षा कहती है 'पहले मन को नियमित करो, प्रवृत्तियों को निर्मल करो, तब कहीं जाकर अध्यात्मिक जीवन की नींव पड़ती है इससे पहले नहीं'। इसलिये हम सही ध्यान से शुरुआत करते हैं। यहाँ मैं आपका ध्यान इस तथ्य की ओर आकर्षित करना चाहूँगा कि प्रथम चार सोपान शुरुआती तैयारी के हैं वे आवश्यक सोपान नहीं हैं। उनका उसी क्रम में अनुपालन करना भी जरूरी नहीं है, जिसमें पातंजलि ने उन्हें सूचीबद्ध किया है। वस्तुतः मेरे मालिक भगवत गीता का संदर्भ लेकर कहा करते थे कि हमें समाधि से शुरुआत कर नीचे की ओर बढ़ना चाहिये। गीता में एक प्रसिद्ध श्लोक है जिसका भावार्थ यह है कि **दिव्य वृक्ष उल्टा लटका हुआ है**। इसकी जड़ें ऊपर और पत्तियाँ नीचे की ओर हैं।

जो व्यक्ति अपने मन की प्रवृत्तियों को नियमित करने में समर्थ है वह मन का स्वामी बन जाता है। हममें से अधिकतर की भाँति वह मन का गुलाम नहीं रहता। वह बहुत सहज ही समाधि की स्थिति प्राप्त कर लेता है। मेरे लिये यह वस्तुतः सबसे पहला और बड़ा आश्चर्य था क्योंकि समस्त यौगिक साहित्य और महान संतों की जीवनियाँ पढ़ने के बाद जिनमें यह उल्लेख है कि समाधि यौगिक अभ्यास की अन्तिम अवस्था है, आपके लिये मेरी इस बात का विश्वास करना कठिन होगा कि मालिक की निगरानी में योग अभ्यास शुरू करने के 6 महीने के भीतर मुझे समाधि का पहला अनुभव हो गया था। मुझे मालूम नहीं था कि क्या हो रहा है। मैं उनके सामने ध्यान में बैठे-बैठे खो गया। बाद में उन्हें मुझे हिलाकर जगाना पड़ा। मैंने पूछा 'मैंने अभी जो अनुभव किया वह क्या था?' मुझे स्वयं में बहुत खुशी हुई लेकिन उन्होंने आँखे झपकायीं और कहा 'कुछ नहीं' मैंने कहा 'लेकिन बाबू जी यह तो समाधि जैसी स्थिति थी जैसा कि यौगिक साहित्य में उल्लेख आता है।' उन्होंने कहा हाँ लेकिन उससे भ्रमित मत होओ और न इसके लिए ध्यान करो क्योंकि इससे तुम्हारा मन आध्यात्मिक तलाश से हट जायेगा।' निःसंदेह समाधि परमानन्द की अवस्था हैं लेकिन जैसा कि उन्होंने मुझे बताया, योग शास्त्र में समाधि को पाषाण तुल्य मोक्ष के रूप में परिभाषित किया गया है, जिसमें कोई अन्तःकरण नहीं होता और इसका कोई अधिक उपयोग भी नहीं होता।

आपमें से जो लोग स्वामी विवेकानन्द तथा श्री रामकृष्ण परमहंस के बारे में परिचित हैं मैं उनकी केवल दो बातें बताना चाहूँगा। रामकृष्ण माँ काली की पूजा

किया करते थे। कहा जाता है कि वे माँ काली को साक्षात प्रकट कर लेते थे और समाधि में मग्न हो जाते थे। एक बार जब वे एक खेत से गुजर रहे थे उस समय शाम के समय काले बादल छाये हुये थे। उन्होंने हंसों का एक झुंड आकाश में उड़ता हुआ देखा और इसी दृश्य से उन्हें समाधि आ गयी। वह गिरने ही वाले थे कि उनके शिष्यों ने उन्हें थाम लिया। उन्हें चोट लगी होगी। उन्होंने स्वयं लिखा है कि उन्होंने काली माँ की स्थिति से भी ऊपर उठकर जो कुछ हासिल किया उसका श्रेय एक स्वामी को जाता है जो अचानक उनसे मिलने आया था और जिसने उनको राजयोग की दीक्षा दी थी। उस स्वामी ने उनसे इस स्थान पर (माथे की ओर इशारा करते हुये) ध्यान करने को कहा था। तदोपरान्त जब स्वामी विवेकानन्द उनके पास आये और उन्होंने कहा 'क्या आप मुझे भगवान का दर्शन करा सकते हैं' कहा जाता है कि राम कृष्ण ने अपने दायें पैर के अँगूठे से उनके वक्ष को छुआ और स्वामी विवेकानन्द तत्काल समाधि में चले गये। वह इसके लिए तैयार नहीं थे। वह विश्वविद्यालय में पढ़ने वाले एक छात्र थे जो जिज्ञासावश रामकृष्ण से मिलने आये थे। इससे पता चलता है कि समाधि के लिए गुरु की शक्ति के अलावा किसी चीज की जरूरत नहीं होती।

हमारे यहाँ ऐसे स्वामियों के उदाहरण हैं जिन्होंने सैकड़ों वर्षों तक ध्यान किया फिर भी समाधि की स्थिति तक कभी नहीं पहुँच पाये। इसीलिये योग शास्त्र में कहा गया है 'बिना गुरु कुछ भी सम्भव नहीं है क्योंकि अपने स्वयं के प्रयासों से हम वह कभी हासिल नहीं कर सकते जो गुरु एक क्षण में प्राप्त करा सकता है। अगली रोचक बात जो रामकृष्ण ने स्वामी विवेकानन्द को बतायी वह यह थी 'तुम्हें यह स्थिति अपने जीवन काल में पुनः कभी प्राप्त नहीं होगी, क्योंकि तुम्हारा अवतरण किसी खास उद्देश्य के लिए हुआ है। यदि तुम समाधि और समाधि द्वारा आत्मतुष्टि के फेर में पड़ गये तो इस दुनिया के लिए बेकार हो जाओगे। जीवन के अन्तिम क्षण में तुम्हें समाधि नसीब होगी।'

उस समाधि का क्या महत्व, जो गुरु शिष्य से बचाकर रखे यह किस्सा रामकृष्ण और स्वामी विवेकानन्द का था। अपने मालिक के साथ अपना अनुभव मैं आपको बता ही चुका हूँ। मैं स्वामी विवेकानन्द तो नहीं हूँ। लेकिन मैंने छह माह के योग अभ्यास में अपने मालिक के साथ समाधि का अनुभव कर लिया था। मेरे मालिक ने चेतावनी देते हुये कहा 'इसके बाद समाधि में मत जाना क्योंकि समाधि में तुम जड़ हो जाते हो।' शास्त्र में इसे पाषाण तुल्य मोक्ष की संज्ञा दी गयी है। जबकि परमानन्द की स्थिति वह है जहाँ हम पूरी तरह समाधि की स्थिति में चले

जाते हैं। मुख्य अंतर केवल यह होता है कि हम साथ ही बाह्य ब्रह्माण्ड के प्रति पूरी तरह सचेत भी रहते हैं। वस्तुतः यह दोनों चरम पराकाष्ठाओं का संतुलन है- अन्तरात्मा में पूरी तरह तल्लीन और बाहरी जगत के प्रति पूरी तरह सचेत। यौगिक साहित्य में इसे योग निन्द्रा कहा जाता है-ऐसी दिव्य अवस्था जहाँ भगवान जागृत स्थिति में सो रहे हैं।

यह पातंजलि की योग पद्धति के बारे में मेरे मालिक की चेतावनी थी। इसका अर्थ यह नहीं है कि उस पद्धति में कोई खराबी है। वह उत्कृष्ट पद्धति है। लेकिन शायद इसमें कुछ असंगतियाँ हैं इसलिये यह जरूरत से ज्यादा प्रभावी है। शिष्य में शुद्धिकरण और चरित्र निर्माण के बिना यह पूर्णतः विनाशक हो सकती है। यह मेरे मालिक की चेतावनी थी। इसीलिये हम ध्यान से शुरुआत करते हैं। इसमें मूल विचार यह है कि ध्यान की 'वस्तु' पर हमारा मन टिके और यह देखने का प्रयास न करे कि वस्तु ठोस है या निराकार ऐसा करने से हमारे ध्यान का प्रभाव उस वस्तु तक सीमित रहता है। **जिस पर ध्यान करेंगे, वैसे ही हम बनेंगे** यह एक सुप्रसिद्ध प्राचीन रहस्यवादी कहावत है।

हमारी पद्धति में हम भाव पर ध्यान करते हैं और भगवान के किसी नाम, रूप या मंत्र आदि का सहारा नहीं लेते। साथ ही चूँकि 'शून्य' पर ध्यान करना असम्भव है इसलिये मेरे मालिक का सुझाव है कि हम हृदय में मौजूद दिव्य प्रकाश पर ध्यान करें। यह स्वयं में निराकार, निर्गुण तथा बेनाम है क्योंकि सहज मार्ग पद्धति का लक्ष्य 'परमतत्व से मिलन' है और प्रसंगवश यही योग का असली अर्थ है। योग अभ्यास की कई पद्धतियाँ कई आसन और प्राणायाम (श्वाँस तकनीक) हो सकती है, लेकिन इसी से हम योगी नहीं बन जाते। इससे तो योग के विद्यार्थी ही बन सकते हैं योगी उसे कहते हैं जो परमतत्व के साथ एका कायम कर ले। अतः यह बहुत आश्चर्यजनक तथा दुःखद बात है कि कई लोग इस तकनीक में पारंगत होने की वजह से स्वयं को योगी कहकर पुकारते हैं। यह मात्र करने का ढंग है क्योंकि कोई भी व्यक्ति विज्ञान पढ़कर स्वयं वैज्ञानिक नहीं बन जाता। कृपया याद रखें कि योगी वही है जो असली लक्ष्य परमतत्व के साथ एकाकार हो जाये। हमें जो चीज पराकाष्ठा की अवस्था तक नहीं ले जाती उसे हम योगी तो क्या पायदान भी मानने के लिए तैयार नहीं हैं। सीढ़ी तो फिर भी हमें पहली मंजिल, दूसरी मंजिल, तीसरी मंजिल कहीं तो पहुँचाती है। लेकिन यह तो हमें कहीं नहीं पहुँचाती। ऐसी सीढ़ी का आप क्या करेंगे?'

मैं इस चेतावनी को पुनः दोहराना चाहूँगा कि योग अभ्यास, पातंजलि के अष्टांग

योग में कोई खराबी नहीं है लेकिन दो तीन महत्वपूर्ण बातें कृपया ध्यान में रखें। पहली यह पद्धति गुरु को छोड़कर अन्य किसी भी व्यक्ति द्वारा इस्तेमाल के लिये जरूरत से ज्यादा प्रभावी है। दूसरी, इससे निकलने वाली शक्तियाँ असीम होती हैं। मेरा तात्पर्य यह है कि इससे निकलने वाली शक्तियों की आप कल्पना भी नहीं कर सकते। इतनी शक्ति निकलती है जो सूर्य को सौर प्रणाली से बाहर धकेल सकती है। याद रखें कि यदि स्वयं आपके भीतर ऐसी शक्तियाँ जागृत कर दी जायँ तो आपके कार्यो पर निगरानी रखने के लिए एक गुरु बल्कि सद्गुरु का होना अनिवार्य है। तीसरी और महत्वपूर्ण बात, स्मरण रहे कि शक्ति हमें भगवान तक नहीं पहुँचाती। इसके लिए आध्यात्मिक विकास जरूरी है। शक्ति चाहे मानसिक हो या शारीरिक या धारणागत, सभी यही रह जाती है। इसीलिये प्राचीन परम्पराओं में तपस्या की धारणा मिलती है।

मुझे खासतौर पर आसनों से सम्बन्धित एक महत्वपूर्ण बात याद आती है। मैंने मालिक से पूछा कि योग साहित्य में प्राणायाम और आसनों को इतना महत्व क्यों दिया गया है। भारतीयों को इन चीजों का जुनून है। दुर्भाग्यवश, योग नामक अधिकतर सामग्री भारत से निर्यात होती है। इसीलिये मैंने मालिक से पूछा इस पर इतना जोर क्यों दिया जाता है? उन्होंने मुझे खुलासा करते हुये बताया कि प्राचीन समय में जब ऋषि लोग दिनों दिन कभी-कभी महीनों तक ध्यान किया करते थे तब उन्होंने शरीर को दुरुस्त रखने के लिए योग आसन पद्धति विकसित की थी ताकि वे जीवित रहकर ध्यान कर सकें। इससे ज्यादा कोई महत्व नहीं है। फिर उन्होंने इस महत्वपूर्ण तथ्य का उल्लेख किया, जिसका सन्दर्भ यदि आपने पढ़ा हो तो हठ योग प्रदीपिका में आता है। इसमें कहा गया है कि कोई भी आसन तभी कारगर होता है जब उसे कम से कम साढ़े चार घंटे तक किया जाये। अतः अठारह आसनों के लिए हर सुबह बाईस मिनट का कोर्स, सात मिनट में खाना बनाने के प्रयास जैसा है एक मिनट आलू, एक मिनट चावल एक मिनट यह और कुछ भी नहीं पकाया जाता। ऊपर से सात मिनट का ईंधन जाया होता है।

इस प्रकार योग आसनों का विकास उन ऋषियों द्वारा किया गया था जिनके पास घूमने के लिए भी समय नहीं था। अतः ध्यान करते समय वे आधे या एक दिन में आसन परिवर्तन कर लेते थे और उससे उनका शरीर ठीक रहता था। जब उन्होंने पाया कि समाधि में साँस की गति लगभग शून्य हो जाती है और तन्त्र में आक्सीजन की कमी हो जाती है, तब जल्दी-जल्दी श्वास लेने की पद्धति के रूप में प्राणायाम का विकास हुआ ताकि अपेक्षित प्राण वायु आक्सीजन देकर तन्त्र की भरपायी की जा सके। अन्ततोगत्वा इसी से मेरे मालिक द्वारा यह खोज की गयी

कि मानव तन्त्र में एक ऐसा बिन्दु है जिससे भीतर आक्सीजन उत्पन्न होती है। मेरे मालिक ने खुलासा किया कि किस प्रकार ऋषि लोग महीनों या वर्षों तक निष्क्रिय हालत में रह सकते थे, किस प्रकार गुफाओं में धरातल के नीचे गड़े रहते थे। वे आजकल के योगियों की भाँति चौसठ दिन या पिछत्तर दिन तक जमीन में गड़े रहने का रिकार्ड बनाने के लिए इस तरह के कारनामे नहीं करते थे। उनका उद्देश्य ईश्वर साक्षात्कार होने तक जीवित रहना था। प्राणायाम में शरीर में आक्सीजन उत्पन्न होती थी। ऋषि लोग इन दोनों की वजह से अपने लक्ष्य में सफल होने तक ठीक ठाक ढंग से जीवित रह सकते थे। यही इनका उद्देश्य था। इनका उद्देश्य भौतिक दृष्टि से परिपूर्ण ताकतवर शरीर, आत्मिक दृष्टि से परिपूर्ण शरीर बल्कि एक ऐसे शरीर से था, जो जब तक ठीक हालत में बना रहे जब तक कि वह फेंकने लायक न हो जाये। वस्तुतः एक प्रसिद्ध उपनिषद में इन सबका उल्लेख है। आपमें से जो लोग इच्छुक हों, मानव तन्त्र के बारे में उस प्राचीन पद्धति का अध्ययन कर सकते हैं जिसमें मानव तन्त्र को पाँच घोड़ों द्वारा खींचते रथ और मालिक को उस रथ को हाँकते सारथी के रूप में चित्रित किया गया है। इस शिक्षा का सारांश यह है कि शरीर को इतना फिट रखें ताकि वह तुम्हारी जीवन यात्रा पार लगा दे और मानवीय स्थिति से हमें दिव्य बनाकर परमात्मा के साथ मिला दे जो हम सभी मानव प्राणियों का लक्ष्य है।

इसी कारण सहज मार्ग में हमने उन सब पद्धतियों से पूरी तरह परहेज रखा है जिसके बारे में मेरे मालिक ने बार -बार मुझे आगाह किया था हमारे यहाँ शारीरिक दृष्टि से कई कमजोर अभ्यासी हैं और मैं अपने मालिक को सुझाव दिया करता था उन्हें आसन और प्राणायाम अभ्यास की अनुमति क्यों नहीं देते? उनकी चेतावनी थी कि यदि अभ्यास करने से उन्हें लाभ हुआ तो उनका मन मुख्य उद्देश्य से हट जायेगा। अतः उन्होंने हमारी पद्धति में इसकी अनुमति कभी नहीं दी। हम ईश्वरीय प्रकाश पर ध्यान करते हैं और मन को हमेशा एक ही वस्तु पर रखकर उसे नियमित करने का प्रयास करते हैं तथा इसके जरिये एकाग्रता की अवस्था हासिल करते हैं। प्रसंगवश, एकाग्रता को लेकर योग पुस्तिकाओं के अधिकतर अंग्रेजी अनुवादों में एक और गलती पायी जाती है। प्रायः ध्यान को एकाग्रता की तकनीक मान लिया गया है। बहुत साधारण सी बात है ध्यान का मतलब है किसी एक चीज पर लगातार सोचते रहना। बार-बार अभ्यास करके जब हम उस अवस्था को हासिल करने में सक्षम होते हैं तब हममें एकाग्र होने की क्षमता विकसित होती है। इसके बाद हम जब किसी चीज पर अपना मन एकाग्र करते हैं तो हमें उसके बारे में जानकारी हो जाती है।

इस प्रकार मन रहस्योद्घाटन का साधन बन जाता है और इसीलिये कहा जाता है कि ऐसे ऋषि भविष्य और भूत दोनों में झाँक सकते थे। लेकिन यहाँ मेरे मालिक ने पुनः एक चेतावनी दी 'भगवान कोई वस्तु नहीं है और न ही वह कोई भौतिक शरीर है। ब्रह्माण्ड में उनका कोई निश्चित स्थान नहीं है। अतः भगवान एकाग्रता की वस्तु नहीं है। तथापि, मन चाहे कितना ही ताकतवर क्यों न हो और उसमें एकाग्रता की शक्ति चाहे कितनी ही विकसित क्यों न हो, इससे भगवान को नहीं जाना जा सकता।

अब हम अपनी योग पद्धति की आगामी अवस्था पर आते हैं। हम हृदय पर ही ध्यान क्यों करते हैं? आपमें से कई लोग योग अभ्यास जरूर करते होंगे। ध्यान का बिन्दु सामान्यतः भौंहे और नासिका की नोक के बीच में माना गया है। हमारी पद्धति में हम हृदय को लेकर चलते हैं क्योंकि इसे ईश्वर का निवास स्थान माना गया है। हृदय पर ध्यान करके हम हृदय के गुणों जैसे दया, करुणा प्रेम आदि का विकास करते हैं। यदि आप प्राचीन समय के यौगिक साहित्य का अध्ययन करें तो पायेंगे कि किसी भी ऋषि को मुक्ति नसीब नहीं हुई थी। साथ ही उन्हें असीम शक्तियाँ और उन पर असीम नियन्त्रण प्राप्त था। वे प्रेम तथा करुणा जैसे मानवीय गुण विकसित नहीं कर पाये थे। परम्परा में ऐसे संतों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं जो हर किसी को श्राप देते फिरते थे। एक उत्कृष्ट उदाहरण दुर्वासा नामक ऋषि का है जो अपने क्रोध के लिये मशहूर थे। उनके साथ अन्य ऋषियों को भी बहुत सावधानी बरतनी पड़ती थी क्योंकि उन्होंने कुछ ऐसी विलक्षण शक्तियाँ विकसित कर ली थीं कि नजर डालकर वह किसी को भी भस्म कर सकते थे। ऐसा व्यक्तित्व अपार श्रद्धा का पात्र होता है। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि भारत में ये देवताओं के समान पूज्य हैं। मेरे मालिक ने कहा 'यदि मन और चरित्र की पवित्रता न हो और हृदय में प्रेम का अभाव हो तो ऐसे ही ऋषि पैदा होते हैं।' ऐसा ऋषि बिना सोचे विचारे किसी भी व्यक्ति को भस्म कर सकता है, जो उन्हें क्रोधित अथवा अप्रसन्न करे!

इसीलिये आधुनिक युग में मेरे मालिक ने हमारे रिश्तों में प्रेम की जरूरत पर इतना बल दिया है। इनकी और उनके मालिक की खोज यह है कि प्रेम की शक्ति निरपेक्ष होती है। वस्तुतः प्रेम की कोई शक्ति नहीं है, वह निरपेक्ष शक्ति है। हमारे पास शक्ति होगी तो कोई हमसे अधिक शक्ति सम्पन्न व्यक्ति यह शक्ति हमसें छीन सकता है। आधुनिक स्थिति में आप देख सकते हैं कि देश अधिक शक्तिशाली हथियार और बम प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं। जैसे जैसे हथियारों की दौड़

बढ़ रही है हम उनके दुष्परिणामों से उतने भयभीत होते जा रहे हैं। यदि कोई देश विश्व में बहुत शक्तिशाली है तो इसका मतलब यह नहीं है कि उस पर बम नहीं डाला जा सकता। इसका यही अर्थ निकलता है कि जिस विजय के लिये हम लड़ रहे हैं उसे देखने के लिए हम जीवित नहीं रहेंगे। यूनानी परम्परा में इसे 'अर्थहीन विजय' कहा गया है।

प्रेम की शक्ति अलग प्रकार की है। इसे समर्पण से जीता जाता है। इसीलिये मेरे मालिक ने कहा 'ऐसे प्रेम के सामने तो भगवान को भी नत मस्तक होना पड़ता है। भारत में हमें सामानान्तर विधा का विलक्षण उदाहरण देखने को मिलता है जैसे समानान्तर सांस्कृति विकास, भक्ति संस्कृति, जहाँ हर चीज का पूरी तरह खण्डन किया गया है। पातंजलि का अध्ययन तो किया जाता है लेकिन लोग उस पर अमल नहीं करते। उनके लिये यह भक्ति मार्ग है। भगवत प्रेम, भगवत सेवा और भगवत आराधना का मार्ग है। अपने असीम प्रेम से वे भगवान को भी प्रेम करने के लिये विवश कर देते हैं। तब परमतत्व और व्यक्ति का मिलन इतना आसान हो जाता है कि मन को यातनायें देने की जरूरत नहीं पड़ती। कठोर यौगिक परम्परा एक तापसिक परम्परा है। इसमें तप की जरूरत पड़ती है। यह जीवन से परे होने की माँग करती है इसमें ब्रह्मचर्य की जरूरत पड़ती है। प्रेम परम्परा में तप की आवश्यकता को नकारा गया है। इसमें केवल एक बात पर बल दिया गया है भले ही वह एक ईश्वर हो, देवता हो या मालिक हो। यह बहुत आश्चर्यजनक बात है कि प्रेम के जरिये ये वह दिव्य पद प्राप्त कर सकते हैं जो तपस्या करके भी लोगो को नसीब नहीं हुआ।

दूसरी बात यह है कि भारतीय परम्परा में कई बातों का उल्लेख है। इनमें से एक उल्लेख यह भी है कि ऐसे ऋषियों का अभ्यास रोकने के लिये देवताओं को प्रायः धरती पर भी आना पड़ा था क्योंकि ये ऋषि इतने शक्तिशाली होते जा रहे थे कि देवताओं का ऐशो आराम खतरे में पड़ सकता था। प्रेम किसी भी व्यक्ति के लिए ऐसे खतरे खड़े नहीं करता, न प्रेमी के लिये और न प्रेमिका के लिये। यदि प्रेम सफल और लोकोत्तर हो तो ईश्वर प्राप्ति (योग) का मार्ग दिखाता है, जिसे अब किसी विधि से प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

अतः हमारे यहाँ दो धारायें हैं यौगिक परम्परा और भक्ति परम्परा। अपने मालिक की शिक्षा में मैंने इन दोनों का एक स्तर पर समावेश पाया है। जैसा कि मैंने अपने अभ्यास से छः महीने के भीतर समाधि की स्थिति हासिल कर ली थी। मैं आपको बताना चाहूँगा कि मैं किसी भी हालत में योग का सफल और

क्षमतापूर्वक अभ्यास नहीं कर पाता था। गुरु बिना अभ्यास के खतरनाक परिणामों के बारे में मैं पहले ही बता चुका हूँ। मैं अपने आपे में भी नहीं रह पाता था। ऐसा व्यक्ति अपने मालिक के अधीन योगाभ्यास से छः महीने के भीतर समाधि तक पहुँच जाये यह बहुत बड़ी बात है। पता नहीं लोग उस पर विश्वास कर सकते हैं या नहीं। मुझे स्वयं इस पर विश्वास नहीं हुआ था। अतः यदि आप विश्वास न करें तो मैं आपको दोष नहीं दूँगा।

एक बार मैंने अपने मालिक से पूछा "मेरी साँसे लगभग रुक गयी हैं। अब मैं जीवित कैसे रहूँ?' उन्होंने कहा यही तो योग की खूबसूरती है। जब समाधि लग जाती है तो सभी निचली पद्धतियाँ एक प्रकार से ऊपर के नियन्त्रण में आ जाती हैं। प्राणायाम एक हकीकत बन जाता है। हम प्राणायाम नहीं करते बल्कि हमारा तंत्र श्वाँस तंत्र का स्थान ले लेता है जिसकी उस समय जरूरत होती है। ऐसा करने से हमारे अन्दर उत्पन्न हो रही आत्मिक शक्तियों के कुप्रभाव नहीं आ पाते।

अतः आज कहा जा सकता है कि सहज मार्ग एक सुरक्षित और आसान पद्धति है, जहाँ योगाभ्यास किये बिना योगी बनना सम्भव है। यह मेरे मालिक और इनसे पहले उनके मालिक की महत्वपूर्ण खोज है। मैंने मालिक से पूछा 'फिर ध्यान की क्या जरूरत है?' वह हँसने लगे। उन्होंने कहा 'ध्यान अनुशासन के लिए आवश्यक है। मनुष्य में अनुशासन बहुत कम है। इसीलिये मन को विनियमन के तहत प्रशिक्षित करने के लिए अनुशासन के तौर पर मैं ध्यान और अन्य सभी चीजों का सुझाव देता हूँ। यह भी याद रखना चाहिये कि पूर्णतः विनियमित मन भी आपको ईश्वर से साक्षात्कार नहीं करा सकता, लेकिन यह अन्य तरीकों जैसे योग में अनुसंधान के लिए उपयोगी है।' उन्होंने कहा 'हृदय पर ध्यान करने, वहाँ ईश्वर की उपस्थिति का एहसास करने और सतत स्मरण करने से प्रेम विकसित होता है।' यही उनकी महत्वपूर्ण तकनीक है जिसे हम सतत स्मरण कहते है। वह हमेशा कहा करते थे 'हम जिनसे प्रेम करते हैं उन्हीं का स्मरण करते हैं। इस तकनीक से विपरीत स्मरण द्वारा हम अपने हृदयों में अपने इष्ट के प्रति प्रेम उत्पन्न करते हैं। सहजमार्ग पद्धति में ध्यान वह तकनीक है जिसके द्वारा ईश्वर का स्मरण होता है और उनके प्रति प्रेम जागृत होता है। तब भगवान प्रकट होते हैं और कहते हैं 'स्वागतम्'।

इसीलिये हम ध्यान करते हैं। अभी फौस्तो रूसो ने सफाई के बारे में बताया। हमारी यौगिक परम्परा का यह एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। लेकिन मेरे मालिक के शोध से पता चलता है कि जब भी हम सोचते हैं या कोई काम करते हैं तो मन

पर एक छाप पड़ती है। जब इन छापों को बार-बार दोहराया जाता है तो ये गहरी होती चली जाती हैं और इसके कारण हमारे जीवन में स्थूलता आ जाती है। जब तक उन्हें हटाया नहीं जाता हम आध्यात्मिक दृष्टि से निर्मल अर्थात सूक्ष्म नहीं बन सकते। मेरे मालिक की शिक्षा थी 'भगवान का अस्तित्व सूक्ष्मतम है।' इतना सूक्ष्म कि हम बामुश्किल कह सकते हैं कि उनका अस्तित्व है जबकि हम स्पेक्ट्रम के भौतिक छोर पर हैं जहाँ पूर्णतः स्थूलता है। सफाई पद्धति द्वारा हम धीरे धीरे स्थूलता को मिटाते जाते हैं और सूक्ष्मतर होते जाते हैं जब तक कि हम भगवान की सूक्ष्मता के स्तर को प्राप्त नहीं कर लेते। तभी भगवान से योग सम्भव हो सकता है। यह बहुत स्पष्ट बात है। जीव विज्ञान के लिहाज से बात करें तो भी यह कहना होगा कि समान स्तर के दो जीवों में ही **मिलन** हो सकता है। वस्तुतः यही वह विशेषता है जो एक प्रजाति को दूसरी प्रजाति से अलग करती है क्योंकि उनमें प्रजनन क्रिया नहीं हो सकती। अतः मेरे मालिक ने कहा 'भगवान से मिलन में जो चीज आड़े आती है वह यह है कि हम अस्तित्व के अलग-अलग स्तरों में हैं। भगवान का स्तर कुछ और हमारा स्तर कोई और लेकिन तात्विक दृष्टि से हम एक ही हैं।'

उन्होंने जल वाष्प, पानी तथा बर्फ का उदाहरण देकर इसे स्पष्ट किया कि तीनों मूलतः एक ही हैं। एक ठोस है एक नितान्त उन्मुक्त, असीमित तथा व्यापक। पानी इन दोनों के बीच का है तरल तथा गतिशील। बर्फ पूरी तरह ठोस होती है तथा गर्मी पाकर जल वाष्प में परिवर्तित हो जाती है और उन्मुक्त होकर चारों ओर मण्डराती रहती है। इस प्रकार मेरे मालिक ने जो कुछ बताया उसमें कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है और न कोई रहस्य है। यह अत्यन्त सीधी सरल शिक्षा हैं कि जब तक आप स्थूलता त्यागकर भगवान के समान सूक्ष्म नहीं हो जाते तब तक आपका भगवान के साथ **योग** सम्भव नहीं हो सकता।

सफाई प्रक्रिया सहज मार्ग अभ्यास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण पहलू है इसमें इस बात पर बल दिया गया है कि हमें हर शाम एक शिष्य की भाँति सफाई प्रक्रिया में भाग लेना चाहिये। यह बहुत प्रभावी है। मालिक समय समय पर हमारी उतनी सफाई कर देते हैं जितनी ध्यान का अभ्यास करने के लिए जरूरी है। जैसे जैसे हम सूक्ष्मतर होते जाते हैं हमारी रहन सहन की आदतें भी बदलती जाती हैं।

अब हम मेरे मालिक की शिक्षा के एक बहुत महत्वपूर्ण मुद्‌दे पर आते हैं हिन्दू पद्धति और यौगिक परम्परा में सन्यास एक महती जरूरत है। इस परम्परा में ऐसे व्यक्तियों की कहानियाँ भरी पड़ी हैं जो अपनी पत्नियों बच्चों का त्याग करके

ध्यान तप करने के लिए जंगल में चले गये थे। मेरे मालिक की शिक्षा बिल्कुल अलग थी। उन्होंने कहा 'हम संन्यास नहीं लेते। जैसे-जैसे हमारा जीवन स्तर बदलता है वैसे वैसे अनावश्यक चीजें स्वतः ही दूर होती चली जाती हैं।' जैसे विमान धरातल से उड़ता है तो धरती नीचे रह जाती है। वह इस बारे में एक मजाक किया करते थे 'ऐसे विमान की कल्पना करो जो उड़ता है तो धरती को नीचे अंतरिक्ष में धकेलता है।' है न बेवकूफी की हद तक असंभव सी बात। जब विमान उड़ता है धरती तो पीछे ही रह जाती है।

इस प्रकार हमारी पद्धति में वास्तव में किसी चीज का त्याग किये बिना ही सन्यास सम्भव हो जाता है। शायद सबसे बड़ा सन्यास जीवन के प्रति आसक्ति की धारणा है जिसे हम मौत के भय के रूप में अनुभव करते हैं। मेरे विचार में कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो मौत के भय से हर वक्त मुक्त रहता हो। हम आयु में जितने अधिक बड़े होते जाते हैं मौत का भय हमें उतना ही अधिक सताता है। लेकिन मेरे मालिक की इस विलक्षण पद्धति से जब हमारा अन्तर्मन जितना अधिक परिष्कृत और सूक्ष्मकर बनता है दिव्यता के असीम अस्तित्व की भाँति मौत का भय भी दूर हो जाता है। इसका कारण यह नहीं है कि हम मौत के बारे में सोचते हैं और उसे नकारते हैं लेकिन हम सहज ढंग से शाश्वत जीवन जिसे दिव्य जीवन कहा जाता है के साथ एका कायम कर लेते हैं। यह शरीर उस कामयाबी का मात्र वाहक बनकर रह जाता है। इसे छोड़ना उतना ही आसान है जितना घर आने पर कार से बाहर निकलना। मेरे मालिक ने मानव जीवन की चरम अवस्था को **अपने असली घर में वापसी** के रूप में परिभाषित किया है।

सहज मार्ग राजयोग पद्धति का संक्षिप्त विवरण है जिसमें यह बताया गया है कि इस पद्धति में क्या होता है इसका हमारे लिये क्या उपयोग है, इसमें हमारे लिये क्या संभावनायें व्यक्त की गयी हैं, इसके अभ्यास का आसान तरीका क्या है। मेरे मालिक ने एक सार्वभौमिक पद्धति के रूप में बार-बार इस पर बल दिया था कि मनुष्य इसका अभ्यास कभी भी कहीं भी कर सकता है। उन्होंने कहा 'मैं इसे एक व्यावहारिक और सार्वभौमिक पद्धति कहता हूँ क्योंकि इसमें किसी चीज के बारे में कोई सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं किया गया है बल्कि यह बताया गया है कि आपको कुछ बनने के लिए क्या करना चाहिये। मैंने कहा 'हर आदमी यही कहता है।' उन्होंने कहा 'नहीं थोड़ा सा अन्तर है। अन्य पद्धतियों में आपकी सुन्दर काया, ताकतवर काया, देवतत्व आदि पाने के लिये अभ्यास करने को कहा जाता है लेकिन यह नहीं बताया जाता कि **कुछ** कैसे बना जाये। अतः हमारे लिये कुछ बन

पाने की सम्भावना उस चीज की तुलना में बहुत असाधारण है जिसे हम आये दिन अनुभव करते हैं। पुरुषों को अपनी पत्नियों से प्यार नहीं मिलता। महिलाओं को अपने पतियों से प्यार नहीं है। बच्चों को माँ बाप से प्यार नहीं। यह **सब कुछ** होते भी **कुछ न बनने** की त्रासदी है। इसीलिये सहज मार्ग ने पूरी प्रवृत्ति को बदलकर रख दिया है। कुछ बनें और फिर देखें कि आपके पास क्या है।

धन्यवाद।

6

संस्कार

हायरस, फ्रांस

11 अगस्त, 1988

आप क्या सुनना चाहेंगे भाषण या कहानी? कहानी! ठीक है पहले एक कहानी सुनाता हूँ। मैं आपको बताऊँगा कि संस्कारों के बारे में बाबू जी क्या कहा करते थे। भौतिक जीवन में कोई भी व्यक्ति संस्कारों से बच नहीं सकता। संस्कारों का व्यक्ति के स्तर से कोई सम्बन्ध नहीं है। यहाँ तक कि महान से महानतम हस्तियाँ जब मानव रूप में जीवन यापन करती हैं तो उनके भी कुछ संस्कार होते हैं। आपको इसके बारे में चिन्ता नहीं करनी चाहिये। इनकी भी कोई व्यवस्था करनी होगी। जैसे हम घर की सफाई करते हैं और सारा कूड़ा कचरा अच्छे से प्लास्टिक के थैले में भरकर बाहर रख देते हैं और फिर निश्चिन्त हो जाते हैं उसी तरह संस्कारों से भी मुक्ति पाना जरूरी है। इसके पीछे यह धारणा है कि स्वयं को संस्कारों से यथा सम्भव सीमा तक मुक्त रखा जाये। इस बारे में आपकी मदद करना प्रशिक्षक और मालिक का काम है।

हमारे यहाँ हिन्दू परम्परा में एक परम्परा यह है कि गुरु शिष्य के संस्कारों को अपने ऊपर ले लेता था। इसीलिये गुरु लोग बहुत अधिक शिष्यों को दीक्षा नहीं देते थे। धार्मिक परम्परा में इस तथ्य को स्वीकार किया गया है। इसीलिये गुरु, शिष्यों का चयन बहुत सावधानीपूर्वक किया करते थे और उनसे यह भी कह देते थे कि दीक्षा के बाद इस ढंग से जीवन यापन करें कि संस्कार नहीं बनें क्योंकि सब संस्कार बेचारे गुरु को ही ढोने पड़ते थे। धार्मिक परम्परा में यह बात सच है।

सहजमार्ग की आध्यात्मिक परम्परा में यह कहना सत्य नहीं है कि यहाँ भी वही परम्परा लागू होती है। बाबू जी ने मुझे कई बार कहा कि हमें कुछ संस्कार अवश्य रखने होते हैं जब हम थोड़ी सी श्रद्धा अथवा एकाग्रता से सफाई करते हैं तो संस्कार खिंचते हैं लेकिन बहुत ही कम। बाबूजी यह भी कहा करते थे कि लाला जी वह स्वयं और कोई महान हस्ती, जिसका धरती पर अस्तित्व है केवल कुछ संस्कारों की वजह से मौजूद हैं। यदि अभ्यासियों के सभी संस्कार मिटा दिये जायें तो उनका भी अस्तित्व नहीं रह सकता। यह असम्भव है। अतः मानवीय स्थिति में रहने के लिए कुछ संस्कार जरूरी हैं कभी कभी बाबू जी हँसकर कहा करते थे। 'मैं अपने उन अभ्यासियों का ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे जीवित रहने के लिए कुछ

संस्कार दिये हैं।

यह पूरी कहानी संस्कारों के बारे में है। अभ्यासियों को इस बात की जानकारी होना अच्छी बात है कि उन्हें आध्यात्मिक दृष्टि से सही ढंग से जीवन यापन करना चाहिये ताकि उनमें और अधिक संस्कार न बन सकें। तब उनकी प्रगति आसान होगी अन्यथा यूनानी तथा अन्य परम्पराओं में प्रचलित प्राचीन मिथकों की भाँति चार कदम चढ़ने और पाँच कदम उतरने जैसी स्थिति आ जाती है। अब यह मालिक की समस्या है क्योंकि सहजमार्ग में ब्रह्माण्ड के पूरे संस्कारों को स्वीकार कर उन्हें मिटाने की एक महान परम्परा है। यह कोई समस्या नहीं। समस्या तो तब आती है, जब हम संस्कार बनाते चले जाते हैं।

जैसा कि बाबूजी ने कहा था 'लोग शाहजहाँपुर में तीन दिन के लिए मेरे पास आते हैं। मैं उनके भले के लिए जो कुछ बन पड़ता है करता हूँ। मैं उनकी पूरी तरह सफाई करता हूँ लेकिन जैसे ही वे मेरे दरवाजे से रवाना होते हैं पुनः संस्कार बनाना शुरू कर देते हैं मुझे याद है कुछ अभ्यासी बसंत उत्सव के लिए आये और बाबूजी के साथ तीन सप्ताह तक रहे। मैं भी वहीं था। फिर उनमें से कुछ बनारस चले गये और कुछ काठमांडू। वे पुनः शाहजहाँपुर आये। उस दौरान बाबू जी दो दिन तक बीमार रहे। उनकी बीमारी का कारण उन अभ्यासियों के संस्कार नहीं थे क्योंकि बाबूजी तो एक भट्ठी के समान थे। यदि भट्टी में कुछ पत्तियाँ अथवा लकड़ियाँ डाल दी जायँ तो वह बुझने वाली नहीं क्योंकि अग्नि को ईंधन से नहीं बुझाया जा सकता। मेरे विचार से उनकी बीमारी का कारण इस बात की विरक्ति था कि उनके परिश्रम का कोई अंत नहीं है। सफाई करो, फिर गन्दगी, फिर सफाई फिर गंदगी। उन्होंने कहा, 'देखो ये लोग ऐसा करते हैं। मैं उनके लिए काम कर करके मरता रहता हूँ और देखो बसंत के बाद उनकी क्या बढ़िया स्थिति थी और अब क्या हो गयी है।' तब उन्होंने उन अभ्यासियों को बुलाया और कहा 'यदि तुम्हें बनारस, काठमांडू और अन्य गंदे स्थानों पर जाना भी हो तो भगवान के लिए पहले चले जाया करो और फिर मेरे पास आया करो ताकि मैं तुम्हारी हमेशा के लिये सफाई कर सकूँ। फिर सीधे घर जाया करो। कम से कम कम घर पहुँचने तक तो उस स्थिति को कायम रखने का प्रयास किया करो।'

भारत में भी यह प्राचीन परम्परा है। यदि मंदिर पूजा पर इसे लागू करके देखें तो भी यह सही है क्योंकि शिष्यों अथवा भक्तों से कहा जाता है कि जब वे मंदिर जायें तो उसके बाद उन्हें सीधे घर जाना चाहिये। पाश्चात्य दिमाग हमेशा उद्दीपन (टाइटिलेशन) के फिराक में रहता है। मुझे नहीं मालूम कि फ्रांसीसी भाष में आज

टाइटिलेशन के लिए कोई शब्द है या नहीं। इसका अश्लील अर्थ होता है। मैं आपको वह अश्लील अर्थ सही ढंग से समझाना चाहता हूँ कि ताकि आप समझ सकें कि इस प्रवृत्ति की परिणति क्या होती है। इसकी तुलना उस आदमी से की जा सकती है जो टब में बैठकर आधे घंटे तक खूब मलमल कर स्नान करे सारे इत्र आदि सौन्दर्य प्रसाधनों का इस्तेमाल करे और फिर जाकर कीचड़ में लोट कर आ जाये। ऐसे व्यक्ति को आप क्या कहेंगे?

इस प्रकार यह आपके भले के लिये है। सौभाग्यवश हमें विशेषकर बाबूजी महाराज जैसे आध्यात्मिक गुरु मिले हैं जो इतने दयालु हैं कि हमारे लिए अपना जीवन, आराम और स्वास्थ्य सब कुर्बान करने को तैयार रहते हैं। वह किसी की कभी आलोचना नहीं करते थे और उसके लिये वे कुछ किये बिना नहीं रह सकते थे। इसीलिये दुःखी रहते थे। जब भी अभ्यासी आते जाते तो बाबूजी कम से कम एक दिन तक बीमार रहते। जैसे-जैसे उनकी उम्र बढ़ती गयी उनकी बीमारी भी बढ़ती चली गयी। भले ही वे स्वयं भगवान थे लेकिन थे तो मानव शरीर में। इसीलिये बीमार रहते थे।

अतः मेहरबानी करके यह अनावश्यक बोझ अपने ऊपर मत डालो। मैंने एक सच्ची बात कही थी कि मालिक आपके संस्कारों को अपने ऊपर नहीं लेते, भले आहार के जरिये कुछ संस्कार अवश्य ग्रहण करते हों। लेकिन उन्हें आपकी पीड़ा का भार तो ढोना ही पड़ता है। आपकी स्थूलता नहीं बल्कि आपकी पीड़ा उनकी बीमारी का कारण है। जब लोग मूर्खतापूर्ण, गन्दी अश्लील पाप भरी बातें करते हैं तो उन्हें रोकना कोई आलोचना की बात नहीं है। जब बाबूजी कहते थे 'मैं उनके लिए इतना करता हूँ और जब वे पुनः आते हैं तो हर बार बीमार, दुखी, गंदे, पाप से भर कर लौटते हैं' उसमें उनका दुःख झलकता है। इस प्रकार मालिक दुखी रहते हैं और सोचते हैं कि उनका जीवन व्यर्थ नष्ट हो रहा है। भले वह हमारे लिए कुछ भी करना चाहें, हमारी वजह से उन्हें सफलता नहीं मिलती। इन गुरुओं को यही सबसे बड़ी पीड़ा है। हमें उनके प्रति सहानुभूति रखनी चाहिए, उन पर दया करनी चाहिए। एक मिथक है कि कोई व्यक्ति लोहे की एक गेंद को धकेलकर पहाड़ पर ले जाने का प्रयास कर रहा था। जैसे ही वह चोटी पर पहुँचने को होता, गेंद लुढ़ककर फिर नीचे आ जाती। मेरे विचार में किसी सद्‌गुरु के जीवन की यही सही तस्वीर है।

सद्‌गुरु को प्रसन्न रखने का एक ही तरीका है। याद रखें अपना सुव्यवस्थित विकास करके ही हम उन्हें प्रसन्न रख सकते हैं। आप जितना शीघ्र विकास करेंगे,

मालिक उतने ही अधिक प्रसन्न होंगे। आपकी सफलता ही उनकी सफलता है। यह धोबीघाट जैसी स्थिति नहीं है जहाँ हम लोगों को अपने कपड़े गन्दे करते देखकर धोबी को प्रसन्नता होती है क्योंकि उसका कारोबार बढ़ेगा। वहाँ पैसे का सवाल है। धोबी कहता है 'ओह आप अपने कपड़े दिन में तीन बार धुलवाना चाहते हैं क्यों नहीं' लेकिन यहाँ स्थिति भिन्न है।

परिवार नियोजन को लेकर बाबूजी मजाक किया करते थे कि असली परिवार नियोजन तो हम सहजमार्ग में कर रहे हैं क्योकि उन्होंने जिस आत्मा को जन्म मरण के चक्र से मुक्त किया वह पुनः कभी नहीं आयी। अतः सही अर्थ में एक आत्मा इस जीवन से हमेशा के लिए मुक्त हो गयी। जब हम शीघ्र विकास नहीं करते तो हम उस दैवी कार्य में दखलंदाजी करते हैं और पर्वतारोहण, समुद्री नौका विहार, डेल्टा प्लानिंग जैसे कार्यो में उलझकर अपने जीवन के साथ खिलवाड़ करते हैं।

फ्रांस का दक्षिणी भाग मशहूर है। यहाँ सभी प्रकार की शराब बनती है। अधिकांश पाप **कोट डी आजूर** में आकर जमा हो गये हैं यहाँ लोग अपने जीवन का जुआ खेलते हैं और यह स्थान पतित शैतानों की जन्मभूमि बन गया है। मैं ऐसा इसलिये कह रहा हूँ क्योकि ये सारे अवरोध आध्यात्मिक पथ के खतरे हैं। आप में से कुछ लोगों को याद होगा कि कोरमेटीज में शुरू के सप्ताहों में मौसम खराब था। लेकिन मैं बेहद खुश था। हर व्यक्ति ने सोचा होगा कि मैं भी उन सनकी भारतीयों में से हूँ। लेकिन मेरी खुशी का कारण यह था कि खराब मौसम की बदौलत हम सभी लोग एक स्थान पर डटे रहे। जब मौसम अच्छा होता है तो सभी लोग पर्वतारोहण, समुद्री नौका विहार करने तथा साधारणतः अपने जीवन का कचरा करने चले जाते हैं।

इस प्रकार आध्यात्मिक जीवन और भौतिक जीवन में यह अन्तर हमेशा रहता है। यदि आप अच्छे अभ्यासी हैं तो इस बारे में कोई समझौता नहीं कर सकते। आप यह नहीं कह सकते, 'मैं एक घंटा ध्यान करूँगा और फिर छह घंटे डेल्टा प्लानिंग करूँगा।' यदि आप अच्छे अभ्यासी हैं तो आधे घंटे भी डेल्टा प्लानिंग नहीं कर सकते। हाँ यदि आप ध्यान में मात्र ऊपरी तौर पर दिलचस्पी रखते हैं तो स्वयं को एक दार्शनिक, मनोवैज्ञानिक तथा चिंतक साबित करने का प्रयास कर रहे हैं तो आपकी मर्जी। लेकिन आप असली अर्थ में आध्यात्मिक व्यक्ति कभी नहीं बन पायेंगे। डेल्टा प्लानिंग अथवा पर्वतारोहण या तैराकी कोई बुरी बात नहीं है बशर्ते कि आप.अपने मन को मालिक से जोड़कर देखें।

लेकिन मैं उन संभावित डेल्टा प्लेयर्स को, जो सतत स्मरण में ये सब करना

चाहते हैं हिदायत देना चाहूँगा कि वे बहुत शीघ्र धरातल पर आ जायें। दोनों कार्य एक साथ करना सम्भव नहीं है। ऐसा नहीं है कि दोनों करने में कोई बुराई है। दोनों को करना सम्भव नहीं है। जब आप अन्य काम करने में समर्थ होते हैं, तो इसका यह अर्थ होगा कि आपने उस क्षण आध्यात्मिक कार्य को स्थगित रखा है।

फिर सतत स्मरण का सवाल ही कहाँ है? अमेरिका में एक छोटे से बच्चे ने मुझे एक बात कही, जिसे बार-बार दोहराने में मुझे हमेशा खुशी मिलती है। उसने बहुत गम्भीरता से मुझे कहा 'चारी, मैं एक दिन में कई बार सतत स्मरण करता हूँ।' सतत स्मरण का क्या अर्थ है आप समझ सकते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिक लक्ष्य, आध्यात्मिक प्रेरणा और आध्यात्मिक स्मरण से अपना ध्यान हटाकर भौतिक चीज में लगाने में यही खतरा है। मैं दोहराना चाहूँगा कि मैं भौतिक जीवन की आलोचना नहीं कर रहा हूँ। यह उन्हीं व्यक्तियों के लिए अच्छा है जो इसमें खुश रहने के लिए तैयार हों मैं यह मानकर चलता हूँ कि आप भौतिक जीवन से ऊपर उठकर आध्यात्मिक प्रेरणा लेकर यहाँ पर आये हैं अब हमें दोनों में से एक रास्ता चुनना होगा। मैं मानता हूँ कि निर्णय करना मुश्किल है। लेकिन कब तक? यह मुश्किल तभी तक है जब तक आप दृढ़तापूर्वक कोई निर्णय नहीं कर लेते।

मैंने हमेशा इस बात को महसूस किया है कि किसी बच्चे को खिलौनों की दुकान पर ले जाकर एक खिलौना खरीदने के लिये कहा जाय तो यह उसके लिए बहुत मुश्किल घड़ी होती है। वह तो हर चीज खरीदना चाहता है। एक खिलौना उठायेगा फिर कहेगा वह वाला, फिर कहेगा यह वाला। कभी-कभी तो मैं सोचता हूँ कि वास्तव में समझदार बच्चा तो बेचारा सनक जायेगा। कोई नासमझ बच्चा ही एक खिलौना लेकर बाहर आयेगा। हमारी भी ऐसी स्थिति होती है। जब कोई पुरुष किसी महिला को पसन्द करता है तो उसके मन में भी यही हलचल रहती है। वह सोचता है कि हैलन से शादी करूँगा या जॉन से या मैरी से। आप जानते हैं कि ऐसे आदमियों की कमी नहीं है। कार खरीदनी हो तो सोचेंगे कि ये खरीदूँ या वो खरीदूँ? खाने में पीजा खाऊँ या आइसक्रीम? या दोनों खाऊँ?

जब आप भौतिक जीवन में प्रवेश करते हैं, तो चुनाव करने की क्षमता न होने के कारण उतावले हो जाते हैं। आजकल लोग कहते हैं "मुझे चुनाव करने की आजादी होनी चाहिए।" स्वतंत्रता समता और बंधुत्व की जन्म स्थली फ्रांस में स्वतंत्रता का मतलब भोग विलास नहीं हैं मैं कुछ भी चुनूँ, मदिरा पीकर स्वयं को मृत्यु की तरफ धकेलूँ इसे स्वतंत्रता कैसे कहा जा सकता है? यह तो बेवकूफी है। यह तो आपको जेल या पागलखाने तक पहुँचा देगी। लोग इतने बेवकूफ होते हैं

कि उन्हें मालूम ही नहीं होता कि खासकर जब चीजें समान रूप से अच्छी नजर आयें, तो चुनाव करना कितना मुश्किल होता है।

एक हिन्दू स्त्री के बारे में बहुत प्रसिद्ध कहानी है। वह भगवान कृष्ण से प्यार करती थी। भगवान ने उसके प्यार की गहराई मापने के लिए उसके सामने स्वयं को अनेक रूपों में प्रस्तुत करके पूछा, बताओ इनमें से असली कृष्ण कौन सा है 'शुरू में तो वह पहचान नहीं सकी क्योंकि सभी चेहरे एक जैसे थे। कहानी आगे कहती है कि वह महिला बहुत पुण्यात्मा थी। उसके दिल में भगवान के अलावा कोई नहीं था। अतः उसने आँखें बंद कर भगवान को याद किया। जैसे ही उसने आँखे खोली भगवान को साक्षात अपने सामने पाया। अन्य सभी आकृतियाँ लुप्त हो गई।

अतः हमें चुनाव इस प्रकार करना चाहिये। अच्छी या बुरी चीज में से तो अनाड़ी आदमी भी चुनाव कर सकता है। लेकिन आज कल हर चीज अच्छी है। हमारी स्थिति खिलौनों की दुकान में लाये गये बच्चों जैसी है, जहाँ हर खिलौना अच्छा लगता है। लेकिन माँ-बाप के पास केवल एक खिलौना खरीदने लायक पैसा है। ऐसे में आप क्या करेंगे? अतः आध्यात्मिक विज्ञान कहता हैं, "चिन्ता मत करो। हर खिलौना अच्छा है। उनमें केवल आकृति और चलने के तरीके का अन्तर है।" आप काँच की दुकान में जाते हैं और सोचते हैं यह गिलास खरीदूँ या वह खरीदूँ? आध्यात्मिकता कहती है, मूर्ख मत बनो। जब आप तीन फ्रैंक में एक गिलास खरीद सकते हैं तो उसके लिये छः सौ फ्रैंक मत खर्च करो दोनों को ही टूटना है। हमारी भी यही हालत है। भले ही आप अमीर हो, दार्शनिक हो, कवि हों, या फिर संसार में महानतम कलाकार हों, जब मौत आती है तो हम सबके लिए समान होती है। अतः आध्यात्मिकता कहती हैं, " जीवित रहते आपकी अलग पहचान नहीं हो सकती है। यहाँ अन्तर सतही होता है। मौत ही असली पहचान है। यदि आप समुचित ढंग से जीवन यापन करते हैं तो आपकी पिछली तकदीर जैसी भी रही हो, आपकी मौत ऐसी होगी कि आपको इस जीवन-चक्र में लौटकर नहीं आना पड़ेगा। अन्य लोग इस भौतिक जगत में पुनः आयेंगे।"

आध्यात्मिक जीवन का असली अन्तर इस बात में नहीं है कि हम धरती पर कैसे जीते हैं बल्कि इस बात में है कि आखिर हमारी मौत कैसे होती है। जैसा कि बाबूजी महाराज हमेशा कहा करते थे, "यह सबसे बड़ी त्रासदी और सबसे बड़ा रहस्य है कि मनुष्य अनुभव से सीखता है।" हमें कम्प्यूटर सीखने के लिए कम्प्यूटर को अपने हाथों से चलाना पड़ता है। बच्चा जब सीखता है तो गिरता है उठता है फिर गिरता है और फिर कभी नही गिरता। लेकिन असंख्य बार मरकर भी हम सही

ढंग से मरना नहीं सीख पाये। ये मौत की त्रासदी है। मौत की त्रासदी यह नहीं है कि हम मरते हैं बल्कि त्रासदी यह है कि हम सही ढंग से मरना कभी नहीं सीखते। जैसे एक व्यक्ति दरवाजा खोलता है बन्द करता है फिर खोलता है और फिंर बन्द करता है, लेकिन यह हमेशा अन्दर ही रह जाता है। अथवा बड़े-बड़े होटलों में चार खण्डों वाले पीतल के सुन्दर से चमकदार दरवाजे लगे होते हैं जिनका बच्चे गोल-गोल झूले की तरह इस्तेमाल करते हैं। वे उनके चारो ओर गोलाई में घूमते रहते हैं लेकिन कहीं नही पहुँच पाते। एक ही जगह खड़े रहते हैं।

हम जीवन और मृत्यु को इन घुमावदार रास्तों की तरह लेते हैं। अनन्त काल से हम इनमें घूम रहे हैं। किसी ने वास्तव में इन्हें **शाश्वत वापसी** की संज्ञा दी है। अब इसमें किसका दोष है? हम हमेशा भगवान को दोष देना चाहते हैं। हम भाग्य को दोष देना चाहते हैं। हम हर चीज को दोष देना चाहते हैं लेकिन स्वयं को दोष नहीं देते। इसलिए अध्यात्म-विज्ञान कहता हैं इस ढंग से जियो कि यह मौत तुम्हारी अन्तिम मौत हो। तुम्हारा पुनः जन्म न हो। तभी जीवन सार्थक माना जायेगा और मौत अमरता का द्वार साबित होगी। अब मृत्यु का सही काम आपको भौतिक जीवन से निकालकर उच्चत्तर जीवन में प्रवेश कराना होगा। हमें यह भी सीखना पड़ेगा। कोई तो होना चाहिये जो हमे यह सिखा सके। हम ध्यान द्वारा यही तो सीखते हैं।

मुझे याद है जब मैं पहली बार गहरी समाधि में गया था। बाबूजी को मुझे वापस लाने में कई मिनट लगे थे। उन्होनें कहा "पूजा सम्पन्न हुई।" लेकिन मैंने अपनी आँखें नहीं खोलीं। उन्होंने कई बार और जोर से कहा। अंत में उनको मुझे छूना पड़ा। तब मैंने कहा कि क्या हुआ। उन्होंने कहा "यह वह अनुभव है जो तुम्हें मौत के समय होना चाहिये था।" वास्तव में ध्यान द्वारा हम मरने की कला सीखते हैं। मैंने उनसे कहा कि लोगों को इस बारे में समझाना बहुत मुश्किल होगा क्योंकि मरना तो कोई भी नहीं चाहता। लोग तो यह सीखना चाहते हैं कि कैसे जियें, कैसे अधिक खुशहाल और भरपूर आनन्द से जीवन यापन करें। उन्होंने कहा, 'वे नादान हैं। उन्हें इस रहस्य का ज्ञान नहीं हैं कि जिसे मरना नहीं आता, उसे जीना भी नहीं आ सकता।' कितना सरल सत्य है। आज सबसे बड़ी और सबसे प्रचलित आधुनिक बीमारी मौत का भय है। यह कई रूपों में दिखाई देता है। इसीलिए हम गहरे ध्यान में जाते हैं। बाबूजी ने मुझे बताया,"यदि मालिक की कृपा नहीं होती तो आज तुम वापस नही आये होते। मैंने कहा 'आप मुझे वापस क्यों लाये? वह जरा से मुस्करायें और शांत रहे। उन्होंने कहा, 'लेकिन यह सच है कि जब तुम

उस स्तर तक चले गये तो तुम्हारी आत्मा वापस नहीं आयी। इसीलिए मुझे पुनः जगाने में चार मिनट लगे। यह इसकी मूल दशा है, असली दशा है, सहज दशा है।

हमें इस शरीर में रहने की आदत पड़ गई है। हम अपने अस्तित्व, अपनी खुशियों को शरीर से जोड़ते हैं। यह हमारी विचित्र सोच है कि जब शरीर का विलय हो जाता है, तो हमारी मौत हो जाती है। ऐसा नहीं हो सकता। यदि जीवन का अस्तित्व है, तो शरीर के मरने से हमारी मौत कैसे हो सकती है? जब मैंने कहा कि ध्यान हमें मरना सिखाता है, तो इसका तात्पर्य है कि ध्यान द्वारा हमें यह ज्ञात होता है कि असली मौत होती ही नहीं। यह तो अस्तित्व की वह दशा है जिसे हम मौत कहते हैं। लेकिन जब हम ध्यान में जाते हैं तथा उस स्थिति में गहराई तक डूबते चले जाते हैं और मालिक की कृपा हमें बारबार उबार कर लाती है, तभी हमें जीवन और मृत्यु का ज्ञान होता है। वह हकीकत है, यह कृत्रिमता। मैं ऐसे अभ्यासियों को जानता हूँ जो ध्यान से वापस आकर रोते-बिलखते हुए मालिक से प्रार्थना करते थे,"आप मुझे वहीं क्यों नहीं छोड़ देते? क्यों मुझे प्रताड़ित करने बार-बार यहाँ लाते हैं?" बाबूजी की ऐसे लोगों के साथ सहानुभूति होती थी। बोले, "हाँ मैं तुम्हारी मानसिक स्थिति समझ सकता हूँ। लेकिन मुझे इस प्रकार तुम्हारा जीवन छोटा करने की इजाजत नहीं है। मुझे इस बात की खुशी है कि तुम्हें यह अनुभव हुआ। इसकी वजह से तुम्हारा मन इस बेहूदा भौतिक जीवन से विरक्त होगा।" मैंने उनसे पूछा,"आप इस जीवन को बेहूदा क्यों कहते हैं?" इसमें यश, कीर्ति और परमानंद के अवसर भी तो हैं।" उन्होंने कहा,"यह बेहूदा हैं क्योंकि यह शाश्वत नहीं है। उच्चतम परमानंद के अवसर भी क्षणिक होते हैं। सर्वाधिक खूबसूरत और प्रफुल्लित तंदुरुस्ती कुछेक वर्षो की मेहमान होती है। औरत का सौंदर्य भी फूल की भाँति शीघ्र मुरझा जाता है जो औरतें समझदार होती हैं, इस बात को स्वीकार कर लेती हैं और फिर उम्र की डगर पर शालीनता से चल पड़ती हैं। बुढ़ापे में भी उनके सौन्दर्य में कमी नहीं आती। उनका सौन्दर्य बरकरार रहता है। जब हम उम्र की इस सच्चाई की अवहेलना करके बनावटी जीवन जीते हैं तो सुन्दरता कुरूपता में बदल जाती है यह दयनीय स्थिति है कि पाश्चात्य जगत में हम मुखौटों के इतने आदी हो चुके हैं कि सुन्दरता की सही अवधारणा ही भूल गये हैं।

मुझे याद है कि मैं अपनी पत्नी के साथ पहली बार यूरोप आया था। कुछ सुन्दर लड़कियों के बारे में मैं मजाक कर रहा था तभी मेरी पत्नी ने कहा, "यदि आप जाकर उसका चुम्बन लें तो आपका मुँह मोम ग्रीस और पेन्ट से भर जायेगा। इन

चीजों के नीचे आपको असली लड़की नहीं मिलेगी।" बात वास्तव में कड़वी लेकिन सही थी। जब मैं अमेरिका गया, तब मुझे इसका अहसास हुआ। भारत में जब हम किसी लिफाफे को बन्द करते हैं तो पानी का इस्तेमाल करते हैं। लेकिन मैं जल्दबाजी में था इसलिए मैंने उसे जीभ से चाट लिया। उसका स्वाद मीठा था। मैंने कहा क्या बात है ! आपके तो लिफाफे भी मीठे हैं। उन्होंने कहा हाँ चारी। हम हर चीज को चाटते हैं इसीलिए हर चीज मीठी बनायी जाती है। देखा आपने हम बच्चों को ही **लॉली पॉप** नहीं देते अपने लिये भी अलग-अलग प्रकार की बोन-बोन (मिठाई) तैयार करते रहते हैं।

यह स्थिति का बनावटीपन है, जिसे बाबूजी पसन्द नहीं करते थे। उनकी प्रमुख शिक्षा थी कि भौतिक जीवन वह वाहन है जो हमें अपनी मंजिल तक पहुँचाता है। यह जरूरी है अन्यथा हम यहाँ नहीं होते। यह उस नाँव की भाँति है जिसका उपयोग हम नदी पार करने के लिए करते हैं। जब हम नदी पार करके दूसरी ओर चले जाते हैं तो उस नाव को वहीं छोड़ देते हैं। लोगों को अपनी कारों के ऊपर बड़ी छोटी नावें ढोते देखकर मुझे हमेशा आश्चर्य होता है। मैं प्रायः सोचता हूँ कि क्या मनुष्य बौद्धिक दृष्टि से गिरकर घोंघे के स्तर पर आ गया है, जो अपना घर पीठ पर लादे घूमता रहता है। इन सबका मूल कारण हमारा अवकाश पर जाने की भावना से अभ्यस्त होना है। अवकाश क्या हैं? यह जीवन से पलायन है। यह अजीबो गरीब भावना है। आश्चर्यजनक बात हैं कि लोग इन चीजों का मजा लेते हैं। लोग कहेंगे कैसे अजीब आदमी हो? स्वयं आनन्द लिये बिना आप कैसे समझ पायेंगे? मानों आत्महत्या करने वाला व्यक्ति कह रहा हो तुम नादान हो क्योंकि तुमने कभी आत्महत्या नहीं की। अथवा गोबर खाने वाला व्यक्ति कहता हो कि तुम क्यों नहीं खाते खाकर देखो कितना अच्छा लगता है।

हम अपनी सहजानुभूति की क्षमता से जान लेते हैं कि क्या अच्छा है और क्या बुरा। जीवन में हमें हर चीज को चखकर देखने की आवश्यकता नहीं होती। मुझे प्रायः उन लोगों से कोफ्त आता है जो कहते हैं, "लेकिन चारी हमें हर चीज का अनुभव तो होना चाहिये न। यह किसने कहा? मैं इसकी जरूरत को नहीं समझ पाता। अतः हम ऐसी परिस्थितियों में फँस कर रह जाते हैं और फिर छाती पीट-पीटकर रोते हैं, सहायता के लिए पुकारते हैं। अन्ततोगत्वा, जैसा कि प्लेटो के रिपब्लिक में गुफा का एक प्रसिद्ध उदाहरण है, हम अपने तुच्छ व्यक्तित्व के इतने अभ्यस्त हो चुके हैं कि जब मालिक चाबी लेकर दरवाजा खोलने आते हैं तो उन्हें अंदर बुलाने को तैयार हो जाते हैं और कहते हैं "आइये बाबूजी हमारे जीवन का रस लेकर देखिये। देखो, यह कितना अच्छा लगता है लेकिन स्वयं उनके साथ

बाहर जाने के लिए तैयार नहीं होते। आपके साथ यही सब तो होता है। जब आप आधे घण्टे के लिए ध्यान करने आते हैं और फिर तेइस घण्टे अपने काम-धंधों में लगे रहते हैं, स्वयं को मूर्ख बनाते रहते हैं मानों किला फतह कर लिया हो।

हमें यह भली-भाँति समझना होगा कि आध्यात्मिकता में केवल चोंच मारने से कोई फायदा नही है। आध्यात्मिकता सम्पूर्ण जीवन पद्धति है। जब हम स्कूल जाते हैं तब भी हमें किसी स्तर पर अपना मन बनाना होता है रसायन विज्ञान लूँ या भौतिक शात्र लूँ? गणित लूँ या इंजीनियरिंग? मैडीसिन अथवा कम्प्यूटर? क्या लूँ? आपको कभी न कभी इन सबके बारे में अपना मन बनाना पड़ता है। आप यह नहीं कह सकते क्यूँ न मैं हर विषय थोड़ा-थोड़ा पढ लूँ। ऐसा करने से हमारी स्थिति धोबी के कुत्ते जैसी हो जाती है। यह तो केवल उदाहरण की बात है। भौतिक जगत में हम चाहे जो करें कोई फर्क नहीं पड़ता।

कुछ ऐसे महान संत भी हुए हैं जो पेशे से कसाई थे। एक युवा व्यक्ति के बारे में बहुत प्रसिद्व कहानी है। वह ध्यान करके आत्मज्ञान प्राप्त करना चाहता था। उसने बीस वर्षो तक जंगल में एक पेड़ के नीचे बैठकर ध्यान किया और उच्चतम शक्तियाँ प्राप्त कर लीं। तभी एक कौए ने उसके सिर पर कुछ गिरा दिया। उससे उसकी शान्ति भंग हो गई। उसे क्रोंध आया। उसने आँखें खोलकर गुस्से से कौवे की तरफ देखा। बेचारा कौआ तत्काल जलकर भस्म हो गया। महात्मा प्रसन्न हुआ यह मेरी साधना की पूर्णाहुति है। वह शहर की ओर चल पड़ा। माना जाता है कि संत लोग भिक्षा माँगा करते थे।। वे काम नहीं करते और न अपने लिये अन्न पैदा करते। उसने एक घर के दरवाजे पर दस्तक दी। एक युवती आई और पूछा 'क्या चाहिए।" उसने कहा "मुझे भोजन चाहिये।" महिला ने कहा,"ठहरो, मैं अभी आती हूँ।' वह दो घण्टे बाद लौटी। महात्मा को बहुत गुस्सा आया। जब वह युवती आयी तो उन्होंने उसकी तरफ घूरकर देखा। महिला बोली, "क्या तुमने मुझे जंगल का कौआ समझ रखा है कि तुम्हारी दृष्टि पढ़ते ही मैं भस्म हो जाऊँगी।" उसे धक्का सा लगा तुम इस बारे में कैसे जानती हो? युवती बोली "बेटा" महात्मा वृद्ध थे और वह एक नव-यौवना थी। लेकिन उसने कहा मेरे बेटे! तुमने अभी तक कुछ नहीं सीखा। तुम्हें मेरे ऊपर गुस्सा आ रहा है क्योंकि मैं देर से आयी हूँ। लेकिन मैं विवाहिता हूँ। मेरा पहला कर्तव्य अपने पति के प्रति है। जब तक उनका काम खत्म नहीं हो जाता मैं तुम्हारा सत्कार नहीं कर सकती। अब यदि तुम यह जानना चाहते हो कि मुझे तुम्हारे बारे में सब कुछ कैसे पता लगा तो यह बता दूँ कि पड़ोसी गाँव में एक संत रहते हैं। उनके पास जाओ और उनसे विनम्रता, ज्ञान और आत्मा

का विज्ञान सीखो महात्मा ने पूछा मैं उन्हें कैसे पहचान पाऊँगा? युवती बोली उस गाँव में वह अकेला कसाई है।

इस प्रकार हम क्या करते हैं कैसे करते हैं ये सब चीजें अप्रसांगिक हैं। मैं यह बात इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि पाश्चात्य जगत में हर चीज के बारे में यहाँ तक कि साधना के बारे में भी अजीबोगरीब धरणाएं हैं। हम इस बात को भूल जाते हैं कि जो काम करें उसे पूरी तन्मयता के साथ करें ताकि अच्छे-बुरे का विचार हमारे मन में नहीं आये। इस शिक्षा का सार यह है कि जब तक हमें पाप-पुण्य, सुन्दरता-कुरूपता और काले-गोरे का अहसास रहेगा हम इसी संसार में उलझे रहेंगे। इसलिए इन चीजों की ओर ध्यान न दें और न इनके बारे में विचार करें। केवल भगवान के बारे में विचार करें जो निर्गुण होते हुये भी सब गुणों का स्रोत हैं शक्ति न होते हुए भी सभी शक्तियाँ वहीं से आती हैं और ज्ञान न होते हुए भी ज्ञान का भण्डार है।

हमें इन सब चीजों से ऊपर उठने की शिक्षा दी जाती है। इसीलिए इस भौतिक संसार की आसक्ति और विरक्ति दोनों ही खतरनाक है। हमें किसी चीज से न आसक्त होना चाहिये और न ही विरक्त। असली संत अथवा आध्यात्मिक व्यक्ति को इन चीजों का अन्तर ही ज्ञात नहीं रहता। मुझे याद है जब कोई अभ्यासी आता था तो बाबूजी उसकी ओर देखा करते थे। उन्हें किसी का नाम तो याद नहीं रहता था, लेकिन वह तत्काल बता दिया करते थे कि उन्होंने पिछली मीटिंग में या छह वर्ष पहले या पंद्रह वर्ष पहले उस पर क्या काम किया था। उन्होंने मुझे कहा देखो यह आदमी शायद 2 अगस्त, 1976 को मेरे पास आया था। मैंने उसे सिटिंग दी थी। उस समय इसकी इतना बढ़िया स्थिति थी जो उसने नष्ट कर ली है "मैं उनसे पूछा करता था, बाबूजी जब आपको यह सब याद है तो इसका नाम क्यों याद नहीं? उन्होंने कहा, "मेरे लिए उसका नाम महत्वपूर्ण नहीं बल्कि उसकी स्थिति महत्वपूर्ण है।"

अतः सारांश यह हैं कि आपको यह ज्ञान रहना चाहिये कि आपको करना क्या है। जौहरी को हीरे की परख होती है। वह आपका चेहरा नहीं देखता। उसकी निगाहें तो हीरे पर टिकी होती है। रोशनी में उसे उलट-पलट कर जाँचता परखता रहता है। उसी प्रकार जब हम मालिक के सामने जाते थे, तो वह केवल हमारे हृदय पर नजर डालते थे, अन्य किसी जगह नहीं। आप में से जो व्यक्ति बाबूजी से मिल चुके हों, उन्हें यह याद होगा। जब आप पहली बार उनके सामने खड़े होते तो वह पहले आपके हृदय पर निगाह डालते, आसमान की ओर देखते पुनः एक बार हृदय

पर नजर डालते और फिर अपना हुक्का गुड़गुड़ाने लगते थे। इतना ही पर्याप्त था। उनके कम्प्यूटर रूपी दिमाग में सब कुछ हमेशा के लिए दर्ज हो जाया करता था।

इस शिक्षा का मर्म मुझे तब ज्ञात हुआ जब कुछ पाश्चात्य अभ्यासियों ने उनसे प्रथम बार मनुष्य के सृजन के समय व्याप्त मूल स्थिति को दर्शाने का आग्रह किया। उन्होंने कहा "मेरे सामने बैठो।" बाबूजी तीन बार जोर से हिले और मुझे उनकी स्थिति का आभास हो गया था। यह अत्यंत दहशत की स्थिति थी। उन्होंने हम सब से पूछा कैसा लगा? अधिकतर लोग तो जवाब ही नहीं दे पाये। मैंने उन्हें बताया कि मुझे केवल दहशत की अनुभूति हुई। उन्होंने कहा 'तुम केवल दहशत क्यों कहते हो? इसके अलावा तुम्हें किस अनुभूति की अपेक्षा थी?' तब उन्होंने कहा 'उस समय केवल दहशत की स्थिति ही थी। मनुष्य को पहली बार इस विशाल ब्रह्माण्ड के सामने रखा गया था और उसे यह जानकारी नहीं थी कि वह कहाँ हैं, क्यूँ हैं ओर उसे क्या करना है यह दहशत का उद्बोधन था।' कई बार मुझे लगता है। कि उस उद्बोधन से हम ताउम्र दूर भागते रहे हैं क्योंकि हमें सुरक्षा की बहुत जरूरत महसूस होती है।

आध्यात्मिकता का महान सबक है कि जब तक हमें स्वयं की स्मृति रहेगी तब तक अपने अस्तित्व का स्वस्थ, खुशहाल और विवेकशील रहने तथा सुरक्षा की जरूरत का आभास भी कायम रहेगा। ईश्वर का सुमिरन करो, बाकी सब भूल जाओ। असली सुरक्षा, असली तन्दुरुस्ती, असली संरक्षण केवल मालिक के सुमिरन से ही आता है। मैं यह नहीं कहता कि इसकी वजह से हमारे भौतिक शरीर में कोई परिवर्तन हो जाता है। परिवर्तन हो भी सकता है। यह हमारे संस्कारों और बाबूजी की इच्छा पर निर्भर करता है कि वह हमारे लिए क्या चाहते है। लेकिन इसकी वजह से हमारे अस्तित्व में बहुत बुनियादी परिवर्तन आता है हम अपने बारे में सोचना बंद कर देते हैं। अभ्यासी के रूप में यदि आपके जीवन में यह परिवर्तन नहीं आता तो ध्यान तथा सफाई से आपको जो भी लाभ होंगे, वे अस्थायी ही रहेंगे।

इसीलिए यह बहुत बड़ी त्रासदी है। मैं देखता हूँ लोग बार-बार एक ही समस्या को लेकर आते हैं। अधिकतर लोगों की समस्याएं भी एक जैसी होती हैं। हरेक सोचता है कि उसकी समस्या अलग है विचित्र है ओहो तुम मेरे दुखों की कल्पना नहीं कर सकते।" यदि आप उनसे कहें मैं इसके बारे में सब कुछ जानता हूँ तो वे नाराज हो जायेंगे। आपको धैर्यपूर्वक उनकी बात सुननी पड़ेगी उन्हें एक सिटिंग देनी होगी सफाई करनी होगी। लेकिन यदि आप उन्हें सलाह दें तो वे पुनः नाराज हो जाते हैं। यह त्रासदी उस कुएं और बाल्टी जैसी है जो कुएं में बार-बार जाती

है और खाली लौट आती है। यदि बाल्टी के पेंदे में सुराख न हो तो यह कैसे सम्भव है?

हम हर चीज को अपनाते हैं और काम निकालकर उसे फेंक देते हैं। यह बात केवल भौतिक जगत पर ही लागू नहीं होती। पाश्चात्य समाज को उपभोक्ता समाज कहना गलत है। यह **फेंकू समाज** है यहाँ हर चीज भले ही वह कार हो औरत हो या अन्य कोई चीज उपयोग करने के बाद फेंकने योग्य है। खूबसूरत काले प्लास्टिक के थैलों में लिपटे होने से उनकी कीमत और जोखिम कम नहीं हो जाता। दुर्भाग्यवश आध्यात्मिक जीवन में यह एक बहुत बुरी आदत है। भौतिक जीवन में इसकी कोई अहमियत नहीं है। आप दुनिया को कितना प्रदूषित कर सकते हैं? नदियों और समुद्रों के प्रदूषण की बातें निरर्थक हैं। ऐसा लगता है मानों हम खुदा हों। यदि इस धरती पर बीस वर्षो तक कोई इंसान न रहे, तो वह उतनी ही साफ सुथरी हो जायेगी, जितनी सृजन के समय थी।

मुझे याद है, करीब चालीस साल पहले मैंने विलियम वैंलून द्वारा लिखित एक पुस्तक पढ़ी थी। वह एक डच लेखक था। पुस्तक में चार लाइन का खूबसूरत वाक्य था। लेखक कहता है कि यदि पूरी मानव जाति को एक डिब्बे में भरना हो, तो एक मील लम्बा X एक मील चौड़ा X एक मील ऊँचा = एक घनमील, अर्थात् डेढ़ किलोमीटर X डेढ़ किलोमीटर X डेढ़ किलोमीटर आकार के डिब्बे की जरूरत पड़ेगी। उसने लिखा यदि मानव जाति को इसमें भरकर डिब्बे को ठीक से बंद कर दें और पहाड़ की चोटी पर रख कर हल्का धक्का दे दिया जाये तो अगले साल उस स्थान पर बहुत अच्छी घास उगेगी। अन्ततोगत्वा हम जमीन के लिये खाद का काम ही तो करते हैं।

इस अंहकार को भूल जाइये। यह सोचना भी एक अंहकार और गर्व की बात है कि हम उस दुनिया को प्रदूषित कर सकते हैं। हम दुनिया का नाश नहीं करते बल्कि स्वयं का नाश करते हैं। भगवान की इस दुनिया को नष्ट करना मानव के बस की बात नहीं हैं। किसी लेखक ने मनुष्य को दो पाँव वाले जानवर की संज्ञा दी है जो ऐसे उछलता घूम रहा है मानो दुनिया का मालिक हो। यह बात शायद शैक्सपीयर ने लिखी थी क्योंकि वास्तव में ऐसी कटु आलोचना करने का दमखम उन्हीं में था या फिर बर्नाडशा ने लिखा हो, "Well clothed bipeds strutting about as if they owned this world." इसलिए हमारा यह विचार अंहकार और अहम से भरा हुआ है कि हम किसी चीज को नष्ट कर सकते हैं। पागल आदमी तो स्वयं का ही नाश करता है लेकिन बहुत पढ़ा लिखा उच्च

ओद्यौगिक समाज सारी दुनिया का सर्वनाश कर रहा है। अन्ततोगत्वा नुकसान मनुष्य का ही होगा।

यह समझना जरूरी है कि हमारी निर्माण शक्तियाँ उतनी ही सीमित हैं जितनी विनाश-शक्तियाँ। एक वैज्ञानिक अपनी प्रयोगशाला में सैकण्ड के दसवें हिस्से तक सूर्य का तापमान पैदा कर सकता है लेकिन सूर्य को तो भगवान ही बना सकते हैं। हम इतने दुःखी हैं मानों हमें शैतान ने अपने बस में कर रखा हो। लेकिन शैतान को भी तो भगवान ने ही बनाया है। इसलिये हम शैतान कभी नहीं बन सकते। ये सब काम हमें भगवान को वापस सौंप देने चाहिये और अपना काम पूरी जिम्मेदारी के साथ करना चाहिये। हमें यह सोचना चाहिये कि हम यहाँ क्यों है और हमारा जन्म क्यों हुआ। जैसा जीवन में जी रहा हूँ वह असल में क्या है? हमें यह भी याद रखना चाहिये कि मानव जीवन विकास का उच्चत्तम स्तर है। यह जीवन का वह स्तर है जो संतों के अनुसार मनुष्य को वरदान स्वरूप प्राप्त होता है। हम इस वरदान को मौजमस्ती में जाया कर रहे हैं। मेरा तात्पर्य है कि जीवन को यूँ नष्ट करना बच्चे के हाथ में चीनी मिट्टी का एक बेशकीमती बर्तन देने से भी अधिक मूर्खतापूर्ण कार्य है।

इस प्रकार हम अपने जीवन के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। आइये, हम संसार को भूलकर, राजनीति को भूलकर, अर्थशास्त्र को भूलकर, प्रदूषण को भूलकर, अपने स्वयं के अस्तित्व को पहचाने। मैं आपकी तरह बहुत चिन्तित रहा करता था। मैंने बाबूजी से पूछा कि किसी दिन यदि पाश्चात्य जगत की इन भयावह शक्तियों को मुक्त कर दिया गया तो क्या होगा। बाबूजी ने कहा तुम चिन्तित क्यों हो रहे हो? जब तक तुम सही ढंग से जीवन यापन करते रहोगे तुम्हारा बाल भी बाँका नहीं हो सकता।" तब उन्होंने मुझे एक कड़वी सच्चाई से अवगत कराया। उस दिन अखबार में विश्व के दो बड़े राष्ट्रों के आणविक हथियारों के बारे मे एक लेख प्रकाशित हुआ था। मैं जिन दो बड़े राष्ट्रों की बात कर रहा हूँ वे अपनी विनाश शक्ति के लिहाज से बड़े है। आज कैसी दयनीय स्थिति है? जो लोग विनाश कर सकते हैं उन्हें बड़ा कहा जाता है। जो लोग निर्माण कर सकते हैं उन्हें बड़ा नहीं कहा जाता। हम सब बैठे हुये आपस में इसी बारे में चर्चा कर ही रहे थे कि बाबूजी आये और बोले तुम सारे इस पर इतनी गम्भीरता से क्यों विचार कर रहे हो? हमने उन्हें आणविक हथियारों के बारे में बताया। उन्होने अपने खास अन्दाज में हँसते हुये कहा मैं तुम्हें बता रहा हूँ यदि कोई उच्च कोटि का संत हो तो वह इन हथियारों को एक सैकण्ड में प्रभावहीन कर सकता है। मुझे थोड़ी-सी जिज्ञासा हुई। मैंने कहा

"बाबूजी आप कैसे करेंगे? उन्होंने कहा बहुत आसान है। अणु में कोई बैरियर रख दो ताकि उसमें किसी भी चीज से विस्फोट न हो सके। ऐसा करना उतना ही आसान है जितना आसान आने- जाने के लिए दरवाजा खोलना-बंद करना है। संत के पास ही ऐसी शक्तियाँ होती हैं। इस धरती पर या बह्माण्ड में ऐसी कोई भौतिक शक्ति नहीं है जो किसी उच्च क्षमताओं के धनी संत की शक्तियों से श्रेष्ठ हो।

आप में से कई लोगों को अमरीकी प्रशिक्षक ग्रेस किमबाल द्वारा पूछा गया बहुचर्चित प्रश्न याद होगा। धीर-गम्भीर स्नेह से सराबोर किमबाल मालिक के साथ बैठी थी। उसने कहा "बाबूजी, इस दुनिया पर अपना प्रभुत्व दिखाने के लिये वास्तव में आप क्या कर सकते हैं?" "अपनी बच्चों जैसी अबोध मुस्कान के साथ उन्होंने कहा "मैं ब्रह्माण्ड को ढक्कन की भाँति घुमा सकता हूँ।" आप सभी बाबू जी को जानते हैं। यह कोई खाली डींग नहीं थी। उस रात मुझे महसूस हुआ कि ब्रह्माण्ड को घुमाने की उन्हें क्यों जरूरत पड़ेगी। यह तो पहले से घूम रहा है। किसी ने तो इसे अवश्य घुमाया होगा।

निःसंदेह आधुनिक विज्ञान तथा आधुनिक दर्शन-शास्त्र की कुछ दुर्भाग्यपूर्ण प्रवृत्तियों द्वारा भगवान को अनावश्यक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। भगवान क्यों जरूरी हैं? हाल ही में प्रकाशित एक पुस्तक में जो गत छह सप्ताह से न्यूयार्क टाइम्स की सबसे ज्यादा बिकने वाली पुस्तकों की सूची में शामिल है यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि ब्रह्माण्ड के सृजन अथवा विनाश के लिये भगवान की आवश्यकता नहीं है। इसे सिद्ध करने के लिए लेखक ने एक सौ साठ पृष्ठ लिखे हैं। मैं तो यही कल्पना कर सकता हूँ कि लेखक स्वयं भगवान से भयभीत है। इसीलिए उसने यह धारणा पेश की है कि भगवान का अस्तित्व नहीं है हम अपनी कमजोरियों को नकार कर उनका पर्दाफाश करते हैं। एक व्यक्ति जो पानी से डरता है पानी के अन्दर चला जाता है अथवा पहाड़ों की ओर भाग जाता है उसी प्रकार जो व्यक्ति भगवान से भयभीत है वही इस तरह की अवधारणा पेश करता है कि इस ब्रह्माण्ड में भगवान का अस्तित्व नहीं हैं। तब हमें किसी का भय नहीं रहता हमें दण्ड देने या स्वर्ग तथा नरक का सृजन करने वाला कोई नहीं होता। हम सैन्ट्रोपेज अथवा कैन्स अथवा मोनाको में खुशहाल रह सकते हैं। यह जीवन खूबसूरत नजर आता है।

यह मानव जीवन की त्रासदी है कि एक विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न लेखक यह सिद्ध करने का प्रयास कर रहा है कि वह आइन्स्टीन, न्यूटन तथा गैलिलियो जितना महान है। ऐसा महान व्यक्ति यह प्रमाणित करने का प्रयास करे कि भगवान

नहीं है यह बुद्धि तथा प्रतिभा का दुरुपयोग नहीं तो और क्या है? इससे उसका आगे का अनुसंधान रुक जाता है। भौतिक जीवन की यह त्रासदी विज्ञान तथा दर्शन शास्त्र का यह मर्म कितना विचित्र है। इन सबका मिला जुला रूप रहस्यवादी दुनिया में इस रूप में दिखाई देता है कि दर्शन-शास्त्र का जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। यह एक ऐसा विषय है जो स्कूलों और कॉलेजों में पढ़ाया जाता है। जीवन में नैतिकता का कोई स्थान नहीं है। यह चर्चा का विषय है। वे यह भूल जाते हैं कि विज्ञान भगवान का मोहताज नहीं है।

इस प्रकार हम अपनी प्रकृतियों में यह बहुत ही बुनियादी दरार पैदा कर रहे हैं। जीवन को नियंत्रित करने, विनियमित करने और दिशा देने के लिये ज्ञान तो हमारे पास है लेकिन इसमें दिव्यता नहीं है। जीवन है लेकिन नैतिकता नहीं है और हम भूल रहे हैं कि नैतिकता हमारे जीवन को उद्देश्य और शक्ति प्रदान करती है। मानसिक अस्तित्व है लेकिन वास्तविक दर्शन का अभाव है जिसके कारण यह मात्र शतरंज का खेल बनकर रह गया है। रहस्यवादी मन जीवन को दो भागों में बाँटकर शून्यता पैदा कर रहे हैं। अतः हमारे यहाँ टूटते परिवार, खण्डित व्यक्तित्व और मानवीय आत्मा की सहनशीलता की चरम सीमा आदि के बहुत से मामले देखने को मिलते हैं। मानों कोई बर्फीली खाई को कूदकर पार करने का प्रयास करते हुए उसी में गिर जाता है। खाई का अस्तित्व बर्फ के दोनों खण्डों पर निर्भर करता है। दोनो को मिला दें तो वहाँ खाई नहीं रहती।

इस प्रकार वास्तव में हमें जीवन से जुड़ी इन दो-दो बातों को फिर से कायम करने की जरूरत है-आध्यात्मिक मूल्यों द्वारा संचालित भौतिक जीवन, आध्यात्मिक मूल्यों से सज्जित भौतिक जीवन तथा उच्चतम दार्शनिक परम्पराओं और यथार्थ द्वारा संचालित मानसिक जीवन। भौतिक जीवन हमें उस लक्ष्य तक ले जाने का वाहन है जिसका उल्लेख दर्शन शास्त्र आध्यात्मिकता और नैतिकता में हमेशा से मिलता है। मेरा सुझाव है कि सहज मार्ग में हम जीवन का व्यापक ओर निरपेक्ष संश्लेषण कायम करने का प्रयास करें। यदि हमारा यह प्रयास सफल हो जाये तो न केवल व्यक्ति के जीवन में सम्पूर्णता आयेगी बल्कि संत और निपुण व्यक्ति पैदा होंगे। यहाँ पर बाबूजी का बार-बार दोहराया गया यह वक्तव्य याद रखना चाहिये दिव्य जीवन पूरी तरह संतुलित जीवन होता है। इसमें कहीं कोई अतिशयोक्ति नहीं होती। संत का बुद्धिजीवी अथवा अमीर अथवा ताकतवर होना जरूरी नहीं है। उसे इनमें से किसी चीज की जरूरत नहीं पड़ती। यही वह शून्यता है, जिसकी आध्यात्मिकता में सम्भावना जतायी जाती है। इसे पाकर व्यक्ति अपने भीतर

ब्रह्माण्ड की हर चीज उत्पन्न करने की क्षमता पैदा कर सकता है। उसका कोई नाम, कोई रूप और कोई गुण नहीं होता। वह यथा सम्भव उच्च श्रेणी का दिव्य व्यक्ति होता है।

इस प्रकार मानव जीवन का लक्ष्य यही नहीं है कि वैवाहिक समस्यायें हल हो जायें अथवा बीमार व्यक्ति तन्दुरुस्त हो जाये। दुर्भाग्यवश अधिकतर लोग यही तुच्छ उद्देश्य लेकर सहज मार्ग में आते हैं। यह तो ऐसी बात हुई मानों कोई बैंक ऑफ फ्रांस में जाकर एक सैन्ट का चैक प्रस्तुत करे। हालाँकि बैंक आपको पैसे का भुगतान करेगा क्योंकि आपका पैसा वहाँ जमा है लेकिन वहाँ लोग आप पर हसेंगे। जब हम मालिक के पास जाते हैं और कहते हैं बाबूजी मुझे यह चीज दे दो जैसा कि उन्होंने वॉइस रीयल (Voice Real) में स्वयं लिखा है। मालिक हमें वह चीज दे देते हैं। क्योंकि यह उनका स्वभाव है यह उनकी उदारता है यह उनका हमारे प्रति प्रेम है। लेकिन हम इतनी मामूली चीज माँग बैठते हैं कि उन्हें भीतर ही भीतर हम पर रोना आता है क्योंकि वह हमें कुछ बड़ी चीज देना चाहते हैं।

अब मैं हमारी बहिन की स्थूलता सम्बन्धी विचारों पर लौटता हूँ। मुझे नहीं लगता कि गुरु कभी स्थूलता से भयभीत रहता हो। यह केवल अग्नि में घी का काम करता है। मानों एक छोटी सी चिंगारी कहे मेरे ऊपर और ईंधन मत डालो मैं बुझ जाऊँगी।" आप जितना अधिक ईंधन डालोगे आग उतनी ही तेज होगी। मालिक को स्थूलता की चिन्ता क्यों होनी चाहिये? वह तो एक दिव्य मशीन के समान है जो स्थूलता को हटाती है और हमें स्वयं से रूबरू कराती है। धीरे-धीरे हम उनके जैसे बनते चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में हमारे पास भय का कोई कारण नहीं रहता। यदि हम मालिक को खुश रखना चाहते हैं तो हमारे पास एक ही रास्ता है कि हम वैसा बन जायें जैसा मालिक हमें बनाना चाहते हैं। उम्मीद करता हूँ, प्रार्थना करता हूँ कि आपके साथ ऐसा ही हो।

धन्यवाद।

7

प्रेम तथा अनुशासन

एक्स एन प्रोबिन्स, फ्रांस

18 अगस्त, 1988

हम बाबूजी और लालाजी के बारे में और हमारे ऊपर उनके विशेष प्रभाव के बारे में काफी बात कर चुके हैं। निःसन्देह विगत काल में कई अन्य हस्तियाँ हुई हैं, जिनका उनके शिष्यों पर इसी तरह का प्रभाव था। जब हम इन हस्तियों का अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि उनका ऐतिहासिक और भौतिक परिवेश तथा जीवन-पद्धतियाँ अलग अलग थीं। उनका सम्पूर्ण सन्दर्भ अलग रहा है। यदि मैं थोड़ा और विश्लेषण करूँ तो यह कहना चाहूँगा कि इनमें से कुछ महान हस्तियाँ वास्तव में एक ही व्यक्ति के कई अवतार थे।उनका शरीर ही अलग था। मानों एक ही नदी अलग-अलग राज्यों से होकर गुजर रही हो। यदि मैं एक खास हस्ती का नाम लूँ, तो कई लोग आपत्ति करेंगे और कहेंगे, "लेकिन यह कैसे सम्भव है कि उनका अलग-अलग शरीरों में पुनर्जन्म हुआ है?" मैं कोई भ्रान्ति या समस्या नहीं खड़ी करना चाहता।

यद्यपि मेरी मान्यता है कि ऐसा हो रहा है, हो चुका है, भविष्य में भी होता रहेगा। कभी-कभी मुझे यह भी आश्चर्य होता है कि क्या एक ही व्यक्ति एक ही काल में कई शरीरों में जीवित रह सकता है मुझे इसमें कोई आशंका नजर नही आती। यदि वे वास्तव में महान हस्तियाँ थीं और उन्हें दिव्य स्थिति प्राप्त थी और उनके पास भगवान की निरपेक्ष शक्तियाँ थीं, तो वे एक ही युग में कई शरीरों में विद्यमान क्यों नही हो सकते। मैं ऐसा कहकर मजाक नहीं कर रहा हूँ। यह बहुत गम्भीर बात है।

हमारे यहाँ प्राचीन भारतीय परम्परा है कि पुत्र में पिता का पुनर्जन्म होता है। कई लोगों ने इस पर बहस की कि यह कैसे सम्भव है कि एक बाप पाँच या छः या दस या बीस बेटों में कैसे विराजमान रह सकता है। इनमें से कुछ पुराने परिवारों में सत्ताइस बच्चे थे। कुछ लोग कहते है कि पिता का पुनर्जन्म सबसे बड़े बेटे में होता है। कुछ लोग कहते है सबसे छोटे बेटे में। लेकिन मैं तो इसकी तुलना एक नदी से करना चाहता हूँ जो समुद्र के निकट जाते-जाते कई सहायक नदियों अथवा वितरिकाओं में बँट जाती है। उनमें एक नदी का पानी होता है, लेकिन उनके नाम शायद अलग अलग होते हैं अथवा इसकी तुलना एक पेड़ से की जा सकती

है जिसका शुरू में एक तना होता है और बाद में अलग अलग शाखायें निकल आती हैं। लेकिन हम हर शाखा को अलग पेड़ का नाम नही देते। उन सबको मिलाकर एक पेड़ बनता है। मैं यह सब कहकर आपकी अन्तर चेतना में असीम एकता का भाव पैदा करने का प्रयास कर रहा हूँ। पुन: नदी या पेड़ के पास चलते हैं। नदी जहाँ से शुरू होती है, वहाँ कई सहायक नदियाँ आकर मिलती हैं और इसी तरह एक पेड़ में बहुत सी जड़ें होती हैं, जो उसका पोषण करती हैं। इस प्रकार हम अनेक से शुरू होकर एक हो जाते हैं और फिर अनेक में विभाजित हो जाते हैं। यही कुदरत का नजारा है।

अब हम सब मिलकर एक छोटी सी समस्या का विश्लेषण करेंगे। शायद आपकी सहायता से हमें इसका कोई समाधान मिल सके। यह निर्णय करने का सवाल नहीं है। हम निर्णय नहीं कर सकते, यह तो आन्तरिक ज्ञान का सवाल है। हमारे यहाँ यह विचारा धारा है कि अनेक चीजें मिलकर एक हो जाती हैं। यही बात हमारे परिवार पर लागू होती है। यहाँ कई पीढ़ियों के पूर्वज रहते हैं। हमारे ऊपर कई सांस्कृतिक और अनुवांशिक प्रभाव होते हैं। इसीलिये हम देखते है कि नवविवाहित दम्पत्ति को जब बच्चा पैदा होता है, तो माँ और बाप में सामान्यत: बहस होती है। माँ कहती है, "बच्चा मेरे जैसा दिखता है।" बाप कहता है, "मेरे जैसा दिखता है।" फिर चार दादा-दादी, नाना-नानी आते हैं और अपने-अपने दावे पेश करते हैं। इस प्रकार हमारे निर्माण में कई सहायक कारक होते हैं। जिस प्रकार जड़ें पेड़ का पोषण करती हैं और आगे कई शाखाओं को जीवन-दान देती हैं, उसी तरह हमें इस परम्परा को आत्मसात और स्वीकार करके अपने गुरुओं की शिक्षाओं का प्रचार-प्रसार करना होगा।

प्राय: मुझे बहुत खुशी होती है कि सूफी और बौद्ध अनुयायियों ने सहज मार्ग में अपने-अपने धर्म की कुछ बातों का समावेश पाया है। हिन्दुओं ने भी सहज मार्ग में हिन्दूत्व की कुछ बातें पायी हैं। लेकिन सहजमार्ग का इनमें से किसी चीज से सम्बन्ध नहीं है, हालाँकि इसमें प्रत्येक धर्म की कुछ बातों का समावेश है। पुन: उसी बच्चे का उदाहरण लेते हैं, जिसकी नाक दादी जैसी कान दादा जैसे और ठोड़ी अपने बाप जैसी है। महान परम्पराओं में पवित्रता और अपवित्रता जैसी कोई चीज नहीं है। याद रखें। जीवन में पवित्रता-अपवित्रता का मिश्रण दिखाई देता है, लेकिन वास्तव में ऐसा नहीं है। इसमें हर कोई समानता तलाशने का प्रयास करता है। एकता को इसके घटकों में विभाजित नहीं किया जा सकता। उन्हें घटक कहना भी गलत है। मानव तंत्र में घटक नहीं होते।

हमें विभाजित होने का प्रयास कभी नहीं करना चाहिये। जब हम ध्यान की बात करते हैं, तो यह समस्या आती है। कई लोग आकर कहते हैं, ''ओह, मैं ध्यान कर रहा हूँ।'' ''मैं भी ध्यान करता हूँ।'' कोई कहता है, ''तुम भी वही कर रहे हो, जो मैं कर रहा हूँ।'' ध्यान रहे सहज मार्ग के बारे में लोग कहते हैं कि ''क्या अन्तर है? लाला जी और बाबू जी एक ही हैं।' अन्य कोई कहता है, ''नहीं लाला जी की शिक्षा अलग थी, बाबू जी की शिक्षा अलग है और अब हम नया करने का प्रयास कर रहे हैं।'' ये समस्यायें तब उठती हैं जब हम पेड़ को काटने का प्रयास करते हैं। तना एक है, पत्तियाँ और शाखायें अनेक हैं जड़ें अनेक हैं।

हमारी पद्धति को लोग भले ही अलग-अलग ढँग से देखें लेकिन यह हमेशा एक जैसी रही है। हमें जो कुछ भिन्न दिखाई देता है, हम उसे भिन्न रूप में देखने के अभ्यस्त हो चुके हैं, जैसे कोई कहता है यह सूफीवाद का हिस्सा है अथवा यह बौद्ध धर्म का हिस्स है। हमें अपनी रुचि के आधार पर अलग-अलग चीजें दिखाई देती हैं। मूलतः यह बात गुरुओं के प्रेम के बारे में भी लागू होती है। मुझे नही लगता कि प्रेम में भिन्नता हो सकती है। लाला जी कैसे अलग ढंग से प्यार कर सकते हैं बाबूजी का प्यार किस प्रकार भिन्न हा सकता है। मानों कोई कहे कि इस मोमबत्ती का प्रकाश उस मोमबत्ती के प्रकाश से अलग है। यह सम्भव नही हैं यदि आप निकट आयें तो एक ज्यादा गर्म हैं जबकि दूसरी इतनी गर्म नही हैं क्योकि आप इससे दूर हैं। यदि आप उनसे समान दूरी पर खड़े हैं तो उनमें कोई अन्तर नहीं हो सकता। यहाँ हम भौतिक अन्तर की बात नहीं कर रहे हैं। हम गुरुओं से आन्तरिक निकटता अथवा दूरी की बात कर रहे हैं। यदि आप विचार की दृष्टि से वास्तव में गुरु के निकट हैं, तो हम लाला जी और बाबू जी के बीच कोई अन्तर नहीं कर सकते क्योकि मूल रूप से दोनों एक ही हैं।

इसीलिए जब बाबूजी अपने मालिक के बारे मे बात करते थे, तो उनकी आँखे खुशी के मारे छलक पड़ती थी। लेकिन वह हमेशा खुश रहते थे। कभी-कभार उन्हें थोड़ा कष्ट भी होता था। उनकी खुशी, प्रसन्नता और आसूँ सब अपने मालिक के प्रेम के प्रतीक थे। यह इस बात पर निर्भर करता था कि उस क्षण उन्हें अपने मालिक के प्रेम की किस रूप में अनुभूति हो रही थी। अपने परिवारों में भी हमें ऐसा ही कुछ देखने को मिलता है। खास तौर पर बच्चों को यह बात याद रखनी चाहिये क्योंकि कभी बाप मिठाई देता है, तो कभी पिटाई। ये दोनों एक ही प्रेम की अभिव्यक्तियाँ है, लेकिन हम यह मानने के अभ्यस्त हो गये हैं कि हमें जो चाकलेट और मिठाई देता है, गले लगाकर चूमता है, वहीं प्यार करता है। जब माँ-बाप हमें अनुशासन

में लाने का प्रयास करते हैं, तो हमें बुरा लगता है और हम उन्हें कठोर बाप की संज्ञा देते हैं। मेरी मातृ-भाषा तमिल में एक कहावत है कि जो हाथ पिटाई कर सकते हैं, वहीं गले लगाने के हकदार हैं। ये हाथ माँ-बाप के होते हैं। हमें यह हमेशा याद रखना चाहिये। यदि माता पिता हमें सुधारते, अनुशासित करते हैं, तो यह उनका हमारे प्रति प्यार है। एक दिन कोई मुझे कह रहा था "मेरे माता पिता बहुत कठोर हैं, बहुत अनुशासन बरतते हैं। हम उन्हें कैसे सहन करें?" मैंने दुनियाभर में बच्चे देखे हैं। जब माँ-बाप उनमें रुचि नहीं रखते अथवा अनुशासन नहीं सिखाते, तो उन्हें प्यार का अभाव खलता है। ऐसे बच्चे तत्काल बिगड़ जाते हैं, क्योंकि उन्हें घर में प्यार नहीं मिलता। "मेरे पिताजी कतई ध्यान नहीं रखते कि मैं क्या करता हूँ। मेरी माँ तो इतनी भी परवाह नहीं करती। फिर मैं किसके लिए जीऊँ?"

माँ-बाप को याद रखना चाहिये कि जब बच्चे अनुशासन का विरोध करते नजर आते हैं, तो यह उनका केवल दिखावा है विंरोध नहीं। कोई भी समझदार बच्चा अपने माँ-बाप के उचित अनुशासन के प्रति विद्रोह नहीं करेगा। दुर्भाग्यवश पाश्चात्य समाज में माँ-बाप और बच्चे दोनों इस बात को भूल गये हैं। इसीलिये उनमें पारिवारिक रिश्ते नहीं हैं मानो परमाणु में केन्द्रक ने इलैक्ट्रोन्स को अचानक अनियन्त्रित छोड़ दिया हो और चीजें सभी दिखाओं में उड़ने लगी हों। आज हमारे समाज में अफरातफरी का माहौल इसीलिए है। यदि परमाणु साथ नहीं रह सकते तो अणुओं को कैसे साथ रखा जा सकता है? पदार्थ को कैसे साथ रखा जा सकता है? समझदार माँ-बाप को इस बात से कभी भयभीत नहीं होना चाहिये कि वे अपने अनुशासन की वजह से अपने बच्चों का प्यार खो बैठेंगे। बच्चे जानते हैं कि माँ-बाप उनसे प्यार करते हैं, इसीलिए उन्हें अनुशासन सिखाना चाहते हैं।

अभ्यासी के तौर पर हमें गुरु जो शिक्षा देते हैं, वह भी अनुशासन है। मैं समझ नहीं पाता कि कुछ गुरु अपने शिष्यों को मदिरापान और धूम्रपान जैसी चीजों की अनुमति कैसे दे देते हैं और दावा करते हैं कि शिष्य के आध्यात्मिक कल्याण में उनकी रुचि है। मैं कहना चाहूँगा कि उन्हें तो अभ्यासी के शारीरिक कल्याण में भी रुचि नहीं है। बहरहाल, मैं आप लोगों को आगाह करना चाहूँगा कि जो गुरु कहे कि आप मनमाने ढंग से जीवन यापन कर सकते हैं, उससे सावधान रहें। ऐसा गुरु केवल अपने हित-चिन्तन में रुचि रखता है। उसकी निगाहें आपके धन पर टिकी होती हैं और उसे आपसे उपहार आदि की उम्मीद रहती है। उसके बदले में वह केवल झूठी आजादी दे सकता है, जिसके परिणाम बहुत ही घातक हो सकते हैं। इसलिए इस आजादी से सावधान रहें, यही मेरी सलाह है।

मैंने कई वर्षों तक इस **आजादी** के बारे में चिंतन किया। असली आजादी तो वहीं होती है, जहाँ प्यार होता है। इससे हमें संयमित और नियन्त्रित ढँग से जीवन की डगर तलाशने में मदद मिलती है। मैं हमेशा पालतू कुत्तों का उदाहरण दिया करता हूँ। जब आप घूमने जाते हैं, तो कुत्ता आपके आगे-आगे चलता है, लेकिन वह रुककर पीछे मुड़कर भी देखता है कि आप आ रहे हैं या नहीं। फिर आगे-आगे चलने लगता है। वह बंधन में नहीं रहना चाहता, लेकिन वह आपसे अधिक दूर भी नहीं जाना चाहता। इसी तरह तीन से आठ वर्ष के छोटे-छोटे बच्चे भी अपने माँ-बाप के चारो और घूमते रहते हैं। कुछ दूर तक जायेंगे फिर आकर अपनी खोज खबर हमें देते हैं, "पिताजी आपने यह देखा? अम्मी आपने यह देखा?" यह सूचनाओं का आदान प्रदान नहीं बल्कि प्यार का आदान प्रदान है। यदि बच्चे को लगे कि उस समय माँ-बाप की रुचि नहीं है, तो वे उनका ध्यान आकर्षित करने का पुनः प्रयास करते हैं। माँ-बाप को तब बच्चे की ओर अवश्य ध्यान देना चाहिये क्योंकि बच्चें उनके ध्यान के लिए तरसते हैं और उसे अपने लिए माँ-बाप का प्यार समझते हैं। ध्यान प्यार का प्रतीक है। यह बच्चों तक ही सीमित नहीं रहता। यह सिलसिला ताउम्र, हमारे बूढ़े होने तक और शायद मौत के कगार तक जारी रहता है। इसीलिए श्रद्धांज्जलि कालम में प्रायः यह देखकर मुझे खुशी होती है कि फलाँ व्यक्ति का जिसकी उम्र नब्बे वर्ष थी, अपने परिजनों के बीच स्वर्गवास हुआ। मृत्यु-शैय्या पर हमारे आस-पास पूरा परिवार क्यों रहना चाहिये? क्योंकि यह उनका आपके प्रति प्यार है और इससे जाहिर होता है कि जरूरत पड़ने पर वे सब आपके साथ सहयोग करने के लिए तैयार खड़े हैं। इसीलिए हम लोग रेलवे स्टेशन तथा हवाई अड्डे पर लोगों को विदा करने जाते हैं। मानो कहते हों, "चिंता मत करो। तुम अकेले नहीं हो। हम सब भी तुम्हारे साथ हैं।" चूँकि हम शारीरिक रूप से आप के साथ नहीं जा सकते, इसलिए हमारी दुआ है, "भगवान आपका ख्याल रखें।"

अतः भारत में कहा जाता है कि बच्चा अकेला पैदा होता है, लेकिन जब बूढ़ा होकर मरता है, तो अनेक लोगों से घिरा होता है। यही जीवन का रहस्य है। जैसा कि बाबूजी कहा करते थे, "सृजन हमेशा लोगों की निगाहों से परे होता है।" इसलिए पूरब में सृजन को पवित्र कार्य माना जाता है। यह रहस्य की बात नहीं है। हर व्यक्ति जानता है कि क्या कुछ होता है, लेकिन फिर भी यह पवित्र कार्य है क्योंकि नव जीवन के सृजन में प्रेम का पदार्पण होता है। अतः यह सृजनात्मक प्रक्रिया पूरी तरह परदे में रखी जाती है। जब हम इसे अश्लीलता का रूप देते हैं, तो यह पार्कों, गेराजों और मोटर साइकिल की चीज बन कर रह जाती है और

सृजन का इतना महान और दिव्य कार्य वास्तव में पाशविक कार्य बन जाता है। इस बारे में क्या कहूँ? वस्तुतः पूरब में यह परम्परा प्रेम अभिव्यक्ति की हद तक व्यापक है। इसीलिये हमारे यहाँ खुलेआम चुंबन लेने, गले लगाने, हाथ में हाथ डालने का रिवाज नहीं है। इसे दो प्रेमियों के बीच बहुत पवित्र चीज माना गया है। गुरु और शिष्य के सम्बन्धों में भी प्रेम के प्रति यही श्रद्धा भाव होना चाहिये।

मुझे याद है कि एक बार बाबूजी ने मेरे एक पत्र के जवाब में एक पत्र लिखा। मैंने लिखा था, "मुझे यह नहीं मालूम कि प्रेम का विस्तार कैसे हो सकता है। ऐसा लगता है कि प्रेम के विस्तार की कोई सीमा नहीं है।" मेरा आशय मालिक के प्रति शिष्य के प्रेम से था। उन्होंने मुझे लिखा,"यह सही है कि प्यार असीम होता है और मैं भी तुम्हें प्यार करता हूँ लेकिन मुझे इसे दोहराना नहीं चाहिये।" जब प्यार का खुलेआम दिखावा किया जाता है, ऐसा लगता है मानो बीज को काटकर उसके भीतर व्याप्त जीवन का प्रदर्शन किया जा रहा हो। काटने पर बीज मर जाता है। अतः यहाँ उपस्थित सभी नौजवानों को यह बात ध्यान रखनी चाहिये। क्यों? ताकि कम से कम आगामी पीढ़ी प्रेम को आशा के दुर्ग, अमरता के दुर्ग सम्पूर्णता के दुर्ग और सृजन की सम्पूर्णता के दुर्ग के रूप में फिर से कायम कर सके।

यदि ऐसा नहीं किया गया तो यह मात्र फिल्म देखने जैसी घटना बनकर रह जायेगी। यह पहला सबक है। दूसरा सबक है कि प्रेम में परिवर्तन नहीं हो सकता। एक बार प्रेम होने पर हमेशा के लिए प्रेम हो जाता है। यह बात मानवीय सम्बन्धों पर भी लागू होनी चाहिये। दिव्य सम्बन्धों पर तो यह और भी लागू होनी चाहिये। अन्यथा क्षमा करें यह फ्रेंच लव जैसा होगा। दुनियाभर में फ्रेंच लव को हीन दृष्टि से देखा जाता है। ऐसा प्यार जो बिकाऊ हो, जिस पर सट्टे लगाये जा सकते हों, सौदा किया जा सकता हो। मैं इस शब्द से सहमत नहीं हूँ। लेकिन फ्रांस के प्रति दुनिया का यही नजरिया है। मुझे याद है, जब 1972 में बाबू जी यहाँ पहली बार आये थे, तब हम लोग कुछ दिनों तक पेरिस में रुके थे। उसके बाद हम लंदन चले गये और वहाँ बाबूजी को घुटन-सी महसूस होने लगी। उनको वहाँ का माहौल साफ करना पड़ा ताकि जीवित रह सकें। वीरा डेविस ने उनसे कहा, "लेकिन बाबूजी आप तो पेरिस से आ रहे हैं। यदि आप वहाँ के माहौल को सहन कर सकते हैं तो यहाँ के माहौल को सहन क्यों नहीं कर सकते?" बाबूजी ने जवाब दिया, "मुझे नहीं मालूम कि तुम लंदन की तुलना पेरिस से क्यों कर रही हो।" उसने कहा, "बाबूजी आप भी बड़े भोले हैं। पेरिस इस दुनियाँ में पाप का घर है।" मैं आपको हुई हूबहू बात बता रहा हूँ। बाबूजी ने कहा, "लेकिन मुझे तो वहाँ का वातावरण

इतना स्थूल नहीं लगा, जितना यहाँ लंदन में लग रहा है।" यह सच है कि आपकी नाम प्रतिष्ठा अच्छी नहीं है। यह बाबूजी का अनुभव था और यह गलत नहीं हो सकता। तथापि, जैसा कि भारत में कहा जाता है, **प्रतिष्ठा बनाना बहुत मुश्किल है, इसलिए हमें अपनी प्रतिष्ठा के प्रति बहुत सतर्क रहना चाहिये।** इसीलिए प्रेम गीत और प्रेम-काव्य तथा, जैसा कि मैं कहा करता हूँ, प्रेम की बदलती भाव-भंगिमायें मनुष्य के लिए नहीं है।

हम पक्षियों और पशुओं की दुनियाँ के बारे में यह जानकर हमेशा रोमांचित हो उठते हैं कि कुछेक प्रजातियों में जीवन में एक ही बार **मिलन** होता है। यदि एक मर जाये, तो दूसरा प्राणी जीवन भर अकेला रहता है। मुझे कई बार अफसोस होता था कि हम पशु पक्षियों की इन कहानियों से इतने प्रभावित क्यों होते हैं? बात बहुत स्पष्ट है। हम अन्य मानव प्राणियों के साथ अपने सम्बन्धों में ऐसे ही स्थायित्व की चाहत रखते हैं। आज समाज में अनिश्चितता की परिस्थितियाँ दिखायी देती हैं। कोई नहीं जानता कि स्थिर सम्बन्ध कैसे होते हैं। मुझे आश्चर्य होता है कि इतने लोग आध्यात्मिकता में क्यों चले आ रहे हैं? क्या वे वास्तव में आध्यात्मिक बनना चाहते हैं? मुझे प्रायः संदेह होता है। क्षमा करें, मैं आपकी भावनाओं की सच्चाई पर सन्देह नहीं कर रहा हूँ। आप आध्यात्मिकता के पीछे क्यों पड़े हैं, यह आप जानें। लेकिन जिस ढंग से अभ्यासी बाबूजी और लालाजी के बारे में बातें करते हैं, उससे मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ, जो सही भी हो सकता है और गलत भी हो सकता है, कि वे वास्तव में मानव प्राणियों के साथ स्थिर चिरस्थायी और यथा सम्भव शाश्वत सम्बन्ध बनाना चाहते हैं। इसीलिये लोग मेरे गुरुओं की शरण में आते थे।

हमारे सत्संगो में इतनी महिलायें क्यों हैं? महिलाओं की संख्या पुरुषों की संख्या से अधिक होती है। भारत में भी साठ प्रतिशत से अधिक महिलायें हैं। महिला सतत और स्थायी सम्बन्ध की चाहत रखती हैं, ताकि अपने परिवार का भरण पोषण कर सकें और स्थिरता के साथ इसकी देखभाल कर सकें। मुझे लगता है कि आज के पुरुषों और उनकी लूट खसोट की प्रवृत्तियों को देखते हुए महिलाओं को मालिक में एक मानवीय पुरुष की छवि दिखाई देती है। उनके साथ वे सम्मानजनक चिर-स्थायी **प्रेम सम्बन्ध** कायम कर सकती हैं, जहाँ उनका शोषण नहीं हो। आज प्रेम में शोषण जैसी घटनाएं हो रही हैं। मुझे इस बात की खुशी है कि कम से कम हमारे लालाजी तथा बाबूजी जैसे सच्चे आध्यात्मिक गुरुओं के दिलों में सहज अन्तर्ज्ञान है कि आप हमारी इस दुनिया में ऐसा सम्बन्ध कायम कर

सकते हैं।

यही कारण है कि समाज में अनैतिकता और अफरा-तफरी का माहौल जितना अधिक होगा, आध्यात्मिक जीवन के प्रति आसक्ति उतनी ही अधिक बढ़ेगी। शुरुआत में आध्यात्मिकता केवल सम्बन्धों को लेकर होती है, लेकिन यदि यह सम्बन्ध कायम रहें, तो धीरे-धीरे मालिक हमारे लिए कल्पनातीत वस्तु के प्रतीक बनते चले जाते हैं और दिव्य प्रेम उनकी हिफाजत करता है। दिव्य प्रेम आपको अनुशासित करता है ताकि आपका सही माहौल में विकास हो सके। वस्तुतः अनुशासन हमारे शरीर की त्वचा की भाँति हैं, जो हमारे विकास में बिना बाधक बने शरीर को सँभाल कर रखती है। त्वचा के बिना हम जीवित नहीं रह सकते। साथ ही यह प्राचीन युग में धारण किए जाने वाले लोहे के रक्षा कवच जैसी भी नहीं है। इसका हमारे साथ विकास होता रहता है। जो त्वचा हमारी बचपन में होती है, वही बड़े होने पर रहती है और दस्तानों की भाँति शरीर को सुरक्षित रखती है। त्वचा हमारी अन्तर्रात्मा और बाहरी प्रतिकूल माहौल के बीच एक महत्वपूर्ण अवरोध का काम करती है। अनुशासन के बारे में भी हमारी यही धारणा होनी चाहिये। प्रेम ऐसा कवच है जो हमें सुरक्षा प्रदान करता है और बाहरी प्रतिकूल माहौल से हमारी हिफाजत की गारण्टी देता है। इसी प्रकार आध्यात्मिक अनुशासन तथा आध्यात्मिक कानून के भीतर हमारा विकास होता है और साथ ही अनुशासन का भी विस्तार होता रहता है।

इस सच्चाई को वही समझ सकता है, जिसने अनुशासन में रहकर जीवन रूपी लम्बी यात्रा तय की हो। ऐसा व्यक्ति समझ सकता है कि अभ्यासी के रूप में वह कभी अनुशासित नहीं था। एक विकसित अभ्यासी के रूप में उसने काफी उन्नति की है लेकिन अनुशासन की लक्ष्मण-रेखा के भीतर रहकर। शायद गुरु के रूप में भी अनुशासन उनके जीवन का नियामक पैमाना होता है। शायद दिव्यता अर्जित करने के बाद भी अनुशासन रूपी कवच हमारी रक्षा करेगा।

शुरू-शुरू में अनुशासन हमारे लिये कुछ अजनबी सी चीज होता है, जिससे हमें चिढ़ और शायद नाराजगी होती है। धीरे-धीरे यह हमारा हिस्सा बन जाता है। फिर हमें पता ही नहीं रहता कि अनुशासन क्या है क्योंकि तब आप और आपका अनुशासन एक ही संगठन, एक पद्धति का हिस्सा बन जाते हैं, जिसे **मेरा** कहा जाता है। किसी व्यक्ति को अपनी त्वचा से कभी कोई परेशानी नहीं होती। इसी प्रकार सच्चा अनुशासन उस फ्रेमवर्क के भीतर आपके विकास को कभी नहीं रोक सकता। जैसा कि मैं पुनः कहना चाहूँगा अनुशासन आपको परम तत्व की बाहरी

हद तक ले जा सकता है। ऐसा अनुशासन प्रेम से ही सम्भव हो सकता है और यही हमारे भीतर अनुशासन को स्वीकार्य बनाता है।

मेरे विचार में यही कारण है कि जब तक अभ्यासी और मालिक के बीच प्रेम नहीं रहता, तब तक सच्चा आध्यात्मिक विकास सम्भव नहीं है। हमारे प्रति प्रेम की वजह से ही मालिक हमारे साथ कष्ट उठाते हैं, हमारे लिए संघर्ष करते हैं और अनुशासन तैयार करते हैं। हमारे लिये उनका दिव्य प्रेम ही उन्हें हमारी झल्लाहट और विद्रोह को सहन करने में सक्षम बनाता है। यदि हमारे मन में मालिक के प्रति प्रेम हो तो अनुशासन सहज और स्वीकार्य बन जाता है। मालिक का दिव्य प्रेम इसे सम्भव बनाता है।

इसीलिए सहज मार्ग परम्परा में प्रेम पर इतना अधिक बल दिया गया है। इससे विश्वास सम्भव होता है। इससे भरोसा सम्भव होता है। इससे आस्था सम्भव होती है। अन्ततोगत्वा, इससे समर्पण सम्भव होता है। मेरे विचार से विश्वास से भरोसा, भरोसे से आस्था तथा अन्त में सर्मपण की यह प्रगति हमारे लिये मालिक के प्रेम की अधिकाधिक अनुभूति ही तो है, जिसके द्वारा हम यह समझ पाते हैं कि प्रेम का अर्थ क्या है। मेरे लिये प्रेम हमेशा ही बीजारोपण करने और समय पाकर उसे फल फूलकर पेड़ बनने की आजादी का प्रतीक रहा है। यह आध्यात्मिक जीवन की सच्चाई है। जब बाबूजी ने कहा था, "मैं शिष्य या गुलाम पैदा नहीं करता। मैं तो मालिक बनाता हूँ," तो मेरे विचार से उनका भी यही आशय था। उनके इस कथन का यह अर्थ लगाना भारी भूल होगी कि हर व्यक्ति मालिक बन सकता है। लेकिन हर व्यक्ति अपने कार्य के प्रत्येक क्षेत्र में मालिक जैसा तो बन ही सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेम से वशीभूत होकर ही मालिक बीजारोपण करते हैं। उनके बीज क्या हैं और कहाँ बोये जाते हैं? मालिक स्वयं बीज हैं और वह उसको हृदय रूपी क्षेत्र में बोते हैं। यह दिव्य पौधा हमारे दिल के अन्दर पनपता है और बड़ा होकर अन्त में फल-फूल देता है। प्रेम हमें अपार आशीर्वाद देता है लेकिन साथ ही हमारे ऊपर दायित्व भी डालता है। यह ऐसा खजाना है जो हमें आगामी पीढ़ी के सब लोगों को पुनः बाँटने के लिए प्राप्त होता है। दिव्य धारा इसी तरह विकसित होती है और आगे चलकर परमतत्व, सनातन शाश्वत जीवन में विलीन हो जाती है।

बीज में असीम क्षमता होती है। कहा जाता है कि जब तक एक भी बीज उपलब्ध हो, तब तक किसी प्रजाति का विनाश नहीं हो सकता क्योंकि बीज में उस

प्रजाति का इतिहास समाया होता है। यही अभिलाषा मनुष्य जाति में पायी जाती है। बच्चे पैदा करने की चाहत इसी की अभिव्यक्ति है। कुछ समाजों में कई बच्चों की चाहत होती है ताकि कम से कम एक व्यक्ति परम्परा को आगे बढ़ा सके। इसी कारण प्रकृति में इतनी अपार उदारता है। पेड़ जानता है कि जिन बीजों को बोया जाता है, उन्हें बहुत कष्ट उठाने पड़ते हैं। इसके बावजूद पेड़ एक मिलियन बीज तैयार करता है ताकि कोई एक बीज परिपूर्ण वातावरण में पहुँच कर उसके जैसा बन सके।

प्रकृति उन खतरों को पहचानती है, जो उसने स्वयं के लिए पैदा कर रखे हैं। इसी खतरे को हमें पहचानना होगा। बतौर अभ्यासी हमारी एक भीतरी प्रकृति है, जो बाहरी माहौल को जन्म देती है। हम इस बाहरी माहौल से भयभीत रहते हैं क्यों इसकी वजह से हमें ऐसे परिणाम झेलने पड़ सकते हैं, जो हमारे उत्थान की बजाय पतन का कारण बन सकते हैं। आपके आंतरिक पवित्र गुप्त संसाधनों पर बाहरी एजेंसी के इस कार्य को रोकने का नाम ही अनुशासन है ताकि हम अत्यंत व्यावहारिक माहौल में भगवान के प्रेम की छत्रछाया में सुरक्षित रूप से विकास कर सकें।

अतः मैंने हमेशा महसूस किया है कि अनुशासन केवल प्रेम की अभिव्यक्ति है। प्रेम के बिना अनुशासन नहीं होता। इसीलिए हमारे यहाँ ऐसे माँ-बाप के उदाहरण मिलते हैं, जिन्होंने अपने बच्चों की ऐसी बेकदरी कर रखी है मानों कुत्ते का पट्टा खोलकर उसे आवारा छोड़ दिया गया हो। तथापि, उन्हें अपराध-बोध इतना सताता है कि वे अपने बच्चों की खुशामद करते हैं, "तुम्हे जो कुछ चाहिये, ले लो।" जो क़ार्य वे प्यार के साथ नहीं कर पाये, उसे रिश्वत से करने का प्रयास करते हैं। यहाँ पर मौजूद नई पीढ़ी के बच्चों से मैं कहना चाहूँगा, "उन माँ-बाप से सावधान रहें, जो आपको कोई चीज सहज ही दे देते हों।" उन माँ बाप से प्यार करो, जो तुमसे पूछें, कहाँ जा रहे हो? क्यों जा रहे हो? कब तक वापस आओगे? किसके साथ जा रहे हो?" ऐसे व्यक्तियों से प्यार करना चाहिये क्योंकि वे आपसे इतना प्यार करते हैं कि आपकी सलामती के लिये ये सब प्रश्न पूछते हैं। ऐसे माँ बाप के लिये बच्चे उनके अपने ही प्यार के निवेश होते हैं।

लेकिन आधुनिक समाज की त्रासदी है कि बच्चे प्रेम की पैदायश नहीं बल्कि साधारण सम्पर्क की पैदायश होते हैं। बच्चे भी इस बात को जानते हैं और उसे महसूस करते हैं। वे इसका विरोध करते हैं और इससे घृणा करते हैं। अतः सुव्यवस्थित समाजों में भी बच्चे विद्रोह और गुंडागर्दी करते हुए पाये जाते हैं, स्कूल

छोड़ देते हैं और नशे की लत के शिकार हो जाते हैं। ये सब वे अपनी मर्जी से नहीं करते बल्कि अपने माँ बाप को यह जताने के लिये करते हैं, "यदि आपने ऐसा किया है, तो हम आपसे एक कदम आगे निकल सकते हैं।" मैं समझता हूँ कि यह बच्चों का अपने माँ-बाप से प्रतिशोध लेने का एक तरीका है। समाज के पूरे वर्ग में यह माहौल व्याप्त है। पुरानी और नयी पीढ़ी के बीच यह विद्रोह चल रहा है। हम देखते हैं कि खासकर अमेरिकी शहरों में नवयुवकों के गिरोहों से लोग बहुत डरते हैं। यदि आप उनसे व्यक्तिगत रूप से बात करें, तो आपको लगेगा कि वे बहुत अच्छे बच्चे हैं, लेकिन अपनी पुरानी पीढ़ी से इतने नाराज हैं कि यहाँ तक कह देते हैं कि "भाड़ में जाओ।" वे एक प्रश्न हमेशा पूछते हैं, "जब मेरे माँ-बाप ने ऐसा किया, तो मैं ऐसा क्यों नहीं कर सकता?" अतः प्राचीन संस्कृत में यह वैदिक कहावत कि "बाप बेटे के रूप में पुनर्जन्म लेता है" बहुत सही है। यदि बाप नशाखोर है, तो उसका बेटा क्या बनेगा? अतः पुरानी पीढ़ी के लिए यह एक बहुत असुविधाजनक सिद्धान्त है कि, "जब तक आप स्वयं अनुशासित नहीं हैं, आप अपने बच्चों को अनुशासित नहीं कर सकते।" इसीलिए ऐसे माँ बाप सात आठ वर्ष की नासमझी की अवस्था तक तो अपने बच्चों पर काबू रखने में सफल रहते हैं लेकिन बड़े होने पर जब बच्चों को असलियत का ज्ञान होता है, तो वे माँ-बाप की अवहेलना करने लगते हैं।

बरसात तथा ईश्वर कृपा की भाँति अनुशासन ऊपर से आता है अर्थात अनुशासित माँ-बाप के अनुशासित बच्चे पैदा होते हैं। प्रेम करने वाले माँ-बाप के प्यारी औलादें पैदा होती हैं। इसलिए माँ-बाप के लिए यह सबक है। हम बच्चे की अनुशासनहीनता, विद्यार्थी की अनुशासनहीनता और युवाओं की अनुशासनहीनता की बात कर रहे हैं, लेकिन इस सारी अनुशासनहीनता का असली स्रोत माँ-बाप हैं। अब भी अधिक देर नहीं हुई। जब बच्चे बदल सकते हैं, तो माँ-बाप को स्वयं को भी बदलने के लिए तत्पर रहना चाहिये। जब माँ-बाप स्वयं को बदलने के लिए तत्पर हो जायेंगे, तो बच्चे उन्हें इस कदर प्यार से चूमकर गले लगा लेंगे कि उन्होंने जीवन में इसकी कभी कल्पना भी नहीं की होगी। बच्चों के लिए यह उस वायदे का पुनः सृजन है कि "आप से ही मुझे प्यार मिलेगा, विकास के लिए सुरक्षा भी आपसे ही मुझे मिलेगी और अन्ततः मैं ही आपकी परछाईं बनूँगा। आपने ही इस माहौल को नष्ट कर दिया, तो हम क्या कर सकते हैं? यदि आप अपनी गलतियों को पहचान कर स्वयं को सुधारने में पर्याप्त सच्चाई, ईमानदारी और सर्वाधिक महत्वपूर्ण स्नेह का परिचय देंगे और हमारे लिये वह माहौल फिर से कायम करेंगे,

तो हम आपको और भी अधिक प्यार करेंगे।" इसलिए माँ-बाप को खासकर बच्चों के साथ अपनी गलतियों को स्वीकार करने में संकोच नहीं बरतना चाहिये। अपने बच्चे का स्नेह और प्यार हमेशा के लिए जीतने का यही एक मात्र अचूक तरीका है। यदि बच्चों को नियंत्रण में रखने के लिए आपको माँ-बाप के नाते अपने अधिकार पर भरोसा है, तो सच मानिये यह अधिकार बहुत शीघ्र छिन्न-भिन्न हो जायेगा।

सहज मार्ग में इस सिद्धान्त का समावेश है कि मालिक को स्वयं अनुशासित जीवन-यापन करके अपने शिष्यों के लिए उदाहरण पेश करना चाहिये। मान लीजिये, मालिक अपने कमरे में एकांत में बैठकर व्हिस्की पियें और अपने शिष्यों से कहें, "तुम्हें शराब नहीं पीनी चाहिये" तो वे कहेंगे, "क्यों नहीं? यदि आप शराब पी सकते हैं, तो हम भी पी सकते हैं।" मुझे याद है, एक बार मैं शाहजहाँपुर में बाबूजी के साथ था। दिसम्बर या जनवरी का महीना था। उस दिन कड़ाके की सर्दी थी। हम उनके कमरे में फर्श पर बैठे प्रातः तीन बजे तक बातें कर रहे थे। ठंड के मारे मैं काँप रहा था। अचानक बाबूजी ने मेरी तरफ देखा और कहा, "तुम्हें इतनी ठंड लग रही है?" मैंने कहा, "हाँ बाबूजी, मैं दक्षिण भारत से हूँ, ना।" उन्होंने कहा, "मेरे पास बढ़िया सी नेपोलियन ब्रांडी है। मैं थोड़ी-सी तुम्हें दूगाँ। इससे तुम गर्म हो जाओगे।" "लेकिन बाबूजी सहज मार्ग में आप शराब पीने की इजाजत तो देते नहीं।" उन्होंने कहा," तुमने काफी प्रगति कर ली है। अब तुम्हें इन चीजों की चिन्ता नहीं करनी चाहिये। सिद्ध आत्मा के लिये कुछ भी निषेध नहीं है।" मैने कहा, "बाबूजी यह तो खतरनाक सिद्धान्त है। यदि किसी ने आपकी उपस्थिति में मुझे शराब पीते देख लिया, तो कल से दूसरे लोग भी पीना शुरू कर देंगे।" उन्होंने कहा, "हाँ, हमें उसका भय तो रहना ही चाहिये।"

किसी सिद्ध व्यक्ति का अनुशासन इतना नरम और लचीला होता है कि आप अनुशासन की परम सीमा तक उसमें छूट ले सकते हैं। तथापि, दूसरों के लिये उदाहरण प्रस्तुत करना बहुत जरूरी है। अतः उन्होंने मुझे न तो शराब दी और न मैंने स्वीकार की। हालाँकि बाद में मुझे विचार आया कि शायद वह भी मेरी परीक्षा थी।

बाबूजी और लाला जी के बारे में एक और उदाहरण दिया जाता है। जब बाबूजी बीमार थे, तो डाक्टरों ने उन्हें चिकन खाने की सलाह दी थी। बाबूजी लालाजी के पास गये और कहा, "मैं क्या करूँ? डॉक्टर लोग स्वास्थ्य की खातिर मुझे चिकन खाने का आग्रह कर रहे हैं।" लालाजी ने कहा, "देखो, रामचन्द्र यदि मैं तुम्हें

अनुमति दे दूँ, तो हर दूसरा अभ्यासी चिकन खाना चाहेगा। अतः मेरी अनुमति मत माँगो।" कैसा अनुशासन है, जहाँ हमारी भलाई के लिए कुछ चीजें हमसे अलग रखी जाती हैं। यदि हमें उनकी अनुमति दे दी जाये, तो ये जहर बन जाती हैं। मालिक को स्वयं उदाहरण बनना पड़ता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि एक व्यक्ति में कैसी विरोधाभासपूर्ण स्थिति है, वह दिव्यात्मा हैं और पूरी तरह स्वतन्त्र हैं, फिर भी उन्होंने हमारी खातिर स्वयं को अपने ही अनुशासन में बाँध रखा है मानो कह रहे हों, "देखो, मैं भी अपने अनुशासन से परे नहीं हूँ।" जब हम उनकी हद तक विकास कर लेते हैं तब हमें पता चलता है कि उनके लिये अनुशासन कभी जरूरी नहीं था। वह स्वयं सृजनकर्ता हैं, लेकिन उन्होंने हमारे प्रति अपने असीम प्रेम की खातिर स्वयं को अनुशासन में बाँध रखा है ताकि हमें भी स्वयं को इसी तरह अनुशासन में बाँधने की प्रेरणा मिल सके।

अब हम प्रेम की आगामी अवस्था पर आते हैं जिसका अर्थ है कि दूसरों को अनुशासित करने से पहले स्वयं को अनुशासित करना चाहिये। अतः माँ बाप को अपने बच्चों में अनुशासन में लाने से पहले, स्वयं को अनुशासित करना पड़ेगा। यह पुनः नदी की भाँति है। मैं नदी से प्रभावित हमेशा रहता हूँ। यदि नदी के दो किनारे नहीं होते, तो वह नदी नहीं होती। अनुशासन का अर्थ जीवन को आकार प्रदान करना है ताकि आपका विकास हो सके। प्रेम हमारे लिए अनुशासन उपलब्ध कराता है। यदि किसी को हमसे प्रेम नहीं होता, तो उसे हमारी तनिक परवाह नहीं होती। मैंने बाबूजी से पूछा, "आप यहाँ पश्चिम में क्यों आते है?"क्षमा कीजिए मैं आपको सच्चाई बयान कर रहा हूँ, कई अवसरों पर उन्होंने अपने सिर पर हाथ रखते हुए कहा, "लालाजी ने मुझे मानवता की दल-दल में क्यों भेज दिया?" मैंने पूछा, "यूरोप में आने की कोई जरूरत नहीं है। भारत में साठ करोड़ लोग हैं। यहाँ थोड़े से अभ्यासियों के लिये स्वयं को क्यों मार रहे हैं?" उन्होंने कहा, "वे भी मानव प्राणी हैं। वे भी मेरे दायित्व का हिस्सा हैं।" अब कल्पना करके देखिये कि उन्हें हमसे इतना प्रेम था कि वह मानवता के दलदल में उतरने के लिये भी तैयार थे। जब आप किसी से प्रेम करते हैं, तो उसके लिए नदी में भी कूद सकते हैं अथवा किसी डूबते को बचाने के लिये तालाब में भी छलाँग लगा सकते हैं।

यह मेरे मालिक का अपने अभ्यासियों और मानवता के लिये प्रेम है क्योंकि अभ्यासियों और गैर अभ्यासियों में अन्तर बहुत ही सरल सा है। मालिक सभी से समान रूप से प्रेम करते हैं। अभ्यासी वे हैं, जिन्होंने मालिक के प्रेम को अनुशासन से, स्वेच्छा से स्वीकार कर लिया है। गैर-अभ्यासियों ने उनके प्रेम को बिना

अनुशासन के स्वीकार किया है। जब वे अनुशासन को स्वीकार कर लेते हैं, तो हमारा हिस्सा बन जाते हैं। इसको लेकर मालिक कोई भेदभाव नहीं करते हैं। जब मालिक कहते हैं, "मेरा प्रेम स्वीकार करो या न करो, मेरा अनुशासन स्वीकार करो या न करो, विकास के लिये तैयार रहो या न रहो, तुम मेरे हो। आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों तुम्हें आना ही पड़ेगा" तो यह मालिक के दिव्य प्रेम की असीम सीमा है। अन्ततः यह हमारा घर है। जब हम घर से बाहर रहते हैं, तो सोचते हैं, हम स्वतन्त्र हैं, चाहे जो करें। लेकिन जैसे ही अँधेरा घिरता है, हमें घर जाने की तलब लगती है। यह कोई रहस्य की बात नहीं है कि चारों ओर इतना अँधेरा है और हमारे अधिक से अधिक बच्चे घर लौट रहे हैं।

अतः अपने मालिक की भावनाओं के अनुरूप, उनके प्रेम के अनुरूप हम सब उनका दिल खोलकर स्वागत करें। यदि हम अपने मालिक से प्रेम करते हैं और उनकी सेवा करना चाहते हैं, तो यही उदारता हमारे दृष्टिकोण में भी होनी चाहिये। किसी प्रशिक्षक अथवा अभ्यासी को किसी अन्य व्यक्ति को परखने का अधिकार नहीं है। यदि हम मालिक के प्रेम के काबिल हैं, तो हम इसी अधिकार के लिये किसी दूसरे व्यक्ति को नहीं नकार सकते, भले ही उसके बारे में हमारी कुछ भी राय क्यों न हो। यह असीम दिव्य प्रेम की असीम उदारता है, जो कह सकता है, "आओ, तुम सब मेरे हो।"

धन्यवाद।

8

लोक वार्ता

कोरमैटिस, फ्रांस

20 अगस्त, 1988

बहिनों और भाइयों, नमस्कार!

मैं तीन महीने से यहाँ हूँ। मुझे नहीं मालूम कि इस बात का कैसे खुलासा करूँ कि हम आज ही क्यों मिले।यहाँ हमारे प्रवास के अंतिम सप्ताह का आज पहला दिन है।

यह खेद का विषय है कि हम पहले नहीं मिले। जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे, "समय खोया तो कुछ नहीं खोया" जो कि समय के बारे में ठेठ पूर्वी दृष्टिकोण है। यूरोप में जहाँ हमारा नारा है "समय ही हमारा धन है," कई लोगों को इस दृष्टिकोण से आपत्ति हो सकती है। पूरब में हमारे यहाँ समय के बारे में एक विचित्र सी धारणा है, जिसे यदि सही ढंग से समझें तो यह एक रोचक विषय है। दुर्भाग्यवश पूरब में हमने इसे बहुत अच्छी तरह से नहीं समझा इसलिए पूरबी समाजों के लोग साधारणतः आलसी होते हैं और कोई काम धाम नहीं करते। आमतौर पर इन्हें भाग्यवादियों की उपाधि दी जाती है। भाग्यवादी लोग समय और कार्य में विश्वास नहीं रखते बल्कि अपने भाग्य पर भरोसा रखते हैं। दुर्भाग्यवश यह एक बड़ी भ्रांति है। आप समय को पैसे में बदल रहे हैं जबकि पूरब के लोग समय को अमरता में बदलने का प्रयास कर रहे हैं। दुर्भाग्यवश दोनों ही सही नहीं हैं। इसलिए जब मेरे मालिक ने कहा था "समय कभी नष्ट नहीं होता", तो उनका भी यही आशय था। जैसे अंग्रेजी में कहा जाता है, "There are more fish in the sea than ever came out of it."

हम जितना समय खर्च या उपयोग करते हैं, समय हमेशा उससे कहीं अधिक होता है। जहाँ तक समय के उपयोग का सवाल है हम समय को सैकेण्ड, मिनट और घंटों में नहीं मापते बल्कि समय की माप इस लिहाज से की जाती है कि हमने समय से, समय रहते क्या उपलब्धियाँ हासिल की हैं। इसीलिए अमरता का पूर्वी सिद्धान्त समय से परे है।

मेरे मालिक के अनुसार समय अपने आप में एक ठोस चीज है और समय का समुचित उपयोग उसकी पकड़ से बाहर निकलना है। वे मुझे कीड़े-मकोड़ों का उदाहरण दिया करते थे, जो सम्भवतः चौबीस घंटे में जन्मते और मरते हैं और उन

चौबीस घंटों में ही उनका पूरा जीवनकाल समाप्त हो जाता है। वे जन्म लेते हैं, बड़े होते हैं, वयस्क बनते हैं, प्रजनन क्रिया करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं और फिर मर जाते हैं। इसलिए समय को वर्षों के लिहाज से मापना पूरी तरह व्यक्ति परक विषय है। मेरे मालिक की शिक्षा थी, "समय की चिन्ता मत करो। इसका न उपयोग होता है और न दुरुपयोग। इसे मापा नहीं जाता। लेकिन हमें अपने जीवन पर समय के आधिपत्य पर विजय पानी है, उससे परे जाना है और ऐसे आयाम में प्रवेश करना है, जहाँ से समय स्वयं धरती पर बहती नदी जैसा प्रतीत हो।" इस प्रकार मेरे मालिक के अनुसार हमें समय की सीमा से आगे निकलना चाहिये।

यह हुई समय की बात। हमारे पास समय का अभाव है। हमारे पास जरूरत से ज्यादा समय है। हम समय नष्ट करते हैं। हम समय का उपयोग करते हैं। ये सारे शब्द और धारणायें मूलतः भौतिक जीवन पर लागू होती हैं। अपने मालिक के पास आने से पहले मैं प्राचीन भारतीय साहित्य का अध्ययन किया करता था और मुझे यह बात हमेशा अविश्वसनीय लगती थी कि कोई ऋषि पच्चीस या पचास हजार वर्षों तक ध्यान कर सकता है जबकि मनुष्य का पूरा जीवन काल एक सौ बीस वर्ष से ज्यादा नहीं होता अथवा यदि इसे चाहें तो खींच तान कर दो सौ वर्ष या चार सौ वर्षो तक माना जा सकता है। लेकिन इसका असली अर्थ मुझे तब समझ में आया जब मेरे मालिक ने योग के कुछ पहलुओं का खुलासा करते हुये बताया कि जब हम ध्यान में बैठते हैं और अपने अन्तर्मन की गहराइयों में जाते हैं, तो हम वह बन सकते हैं, जिसे बनने में हजारों वर्ष लग सकते हैं।

अपने मालिक के चरणों में बैठकर उनकी उपस्थिति में ध्यान करना मेरा पहला अनुभव था। जब मुझे ध्यान करते हुए करीब डेढ़ घंटा हो गया और जब मालिक ने कहा, "पूजा सम्पन्न हुई" तो मुझे लगा कि मानो पाँच मिनट हुये हों। उन्हें बहुत अच्छा लगा उन्होंने कहा, "अपनी घड़ी देखो।" जिसे मैं पाँच मिनट समझ रहा था, वास्तव में डेढ़ घंटा था। दूसरे अवसर पर मैंने पाँच मिनट तक ध्यान किया और मुझे लगा मानो ध्यान करते हुए वर्षों बीत गये हों। मेरे मालिक ने कहा, "यह समय की फितरत की व्यक्तिपरकता है। इसलिए अपने जीवन को घंटों, दिनों और मिनटों में मत मापो। जीवन की असली माप उसकी उपलब्धियों से होती है।" अतः हमारे यहाँ छोटे लड़कों और ऋषियों के मिथक हैं, जिन्होंने छः, सात या आठ वर्ष की उम्र में तपस्या शुरू कर दी थी और जिनके बारे में यह कहा जाता है कि वे हमेशा सोलह वर्ष के हैं। ये कुछ ऐसी चीजें हैं, जिन्हें समझना न केवल मुश्किल बल्कि मूर्खतापूर्ण प्रतीत होता है। कोई व्यक्ति सोलह वर्ष का कैसे रह सकता है?

लेकिन जब हम यह विचार करते हैं कि उनके लिए समय रुक जाता है, तो बात समझ में आ जाती है। हम अभी समय के अधीन हैं। वे समय के परे हैं।

यदि आप इस अवधारणा को स्वीकार कर लें तो ऐसा लगेगा मानों हम स्वयं भगवान की उम्र निर्धारित करने का प्रयास कर रहे हों। भगवान की उम्र क्या है? क्या इस ब्रह्माण्ड की भाँति उनकी उम्र खरबों वर्ष है? व्यक्ति ने ब्रह्माण्ड की उम्र का कुछ अन्दाजा लगा रखा है। यह पन्द्रह से बीस बिलियन के बीच मानी गयी है। आपमें से कुछ लोगों ने हाल में पढ़ा होगा कि एक नई आकाश गंगा की खोज हुई है जिसकी उम्र पन्द्रह बिलियन वर्ष तय की गई है। अब प्रश्न उठता है, "यदि उसकी उम्र पन्द्रह बिलियन या पच्चीस बिलिंयन हो, तो क्या स्वयं सृष्टिकर्ता की अपनी कोई उम्र है? हम पूर्णतः मानवीय अर्थ में सोचने का प्रयास करते हैं कि जब मैं पैदा हुआ था तो मेरे पिता जी की उम्र पच्चीस वर्ष थी। भारत में जब पहला बच्चा पैदा होता है, तो पुरुष की औसत आयु बीस से पच्चीस वर्ष हुआ करती है। इससे हमें अपने बाप की उम्र का मोटा सा अन्दाजा लग जाता है। "आपकी उम्र क्या है?" "पैंतालीस वर्ष।" "आपके पिताजी तो करीब़ सत्तर वर्ष के अवश्य होंगे।" यह बहुत आसान सा निष्कर्ष है। भगवान की बात तो भूल ही जाइये, यहाँ तक कि ऋषियों की भी कोई उम्र नहीं होती। जैसा कहा जाता है, जब वे पच्चीस हजार वर्षों तक ध्यान करते हैं, तब तक मनुष्य की कम से कम अस्सी पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं।

ये सब मुझे कई बार बहुत भ्रांतिपूर्ण और समझ से परे लगता है। हिन्दू परम्परा के बारे में मेरी बहुत घटिया राय थी, क्योंकि, हिन्दू परम्पराओं के बारे में मेरा ज्ञान पाश्चात्य लेखकों से आया था, जिन्होंने संस्कृत साहित्य क़ा अनुवाद किया था और मैंने स्वयं संस्कृत का अध्ययन नहीं किया था। इस प्रकार हमें मोनियर बिलियम्स अथवा मैक्स मूलर जैसे व्यक्तियों पर आश्रित रहना पड़ता था और हम उनके निष्कर्षों को ही अपना निष्कर्ष बना लेते थे। यह समस्या तब आती है जब हमारी मूल पाठ पर पकड़ नहीं हो और हमें व्याख्याओं, अनुवादक की व्याख्याओं पर निर्भर रहना पड़े और खास कर जब अनुवादक पूर्णतः भिन्न संस्कृति से ताल्लुक रखता हो।

यह मेरे जीवन की पहली भयावह भूल थी। आश्चर्यजनक बात यह है कि मैं वैज्ञानिक कथा-साहित्य के माध्यम से यह समझ पाया कि यह सच हो सकता है। जब हम वैज्ञानिक कथा-साहित्य पढ़ते हैं, तो अंतरिक्ष की यात्रा करते हैं और यह पाते हैं कि प्रकाश के वेग से यात्रा करें तो डेढ़ वर्ष की यात्रा पूरी हो जाती है लेकिन जब हम वापस पृथ्वी पर आयेंगे तो यहाँ कुछ भी नहीं मिलेगा। हजारों और सैकड़ों

वर्ष बीत गये हैं। इस प्रकार समय की फितरत का यह मेरा पहला आभास था। दुर्भाग्यवश अधिकतर यूरोपवासियों की भाँति दर्शन शास्त्र का मेरा ज्ञान विज्ञान पढ़ने से ही आया था। वैज्ञानिक कथा साहित्य ने वास्तव में योग के यथार्थ और योग परम्परा के प्रति मेरी आँखे खोलीं। उसने मुझे दिखाया दो संभावनायें हुआ करती हैं पहली, प्रकाश की गति अथवा वेग की अवधारणा को समझना, जिसमें कहा गया है कि यदि प्रकाश के वेग से यात्रा की जाये तो फिर कोई समय सीमा नहीं रहेगी। समय का अस्तित्व समाप्त हो जायेगा। यह असीम, अनन्त होता है। दूसरी ओर योग कहता है, " यदि आप अपने आप में समा जायें तो ट्यूब के दूसरे छोर से बाहर निकल सकते हैं और समय के अस्तित्व की सीमा से परे जा सकते हैं अर्थात आप वहाँ पहुँच जाते हैं जहाँ समय का सृजन नहीं हुआ था और अपरिमित द्रव्यमान की बजाय शून्य द्रव्यमान बन सकते हैं बशर्ते कि ऐसी संभावनायें हों।" यही बातें मेरे मालिक ने भिन्न शब्दों में मुझे समझायी हैं कि जिसे हम भगवान अथवा केन्द्र मानते हैं वह कुछ नहीं बल्कि सूक्ष्मतम वस्तु है। इसे "वस्तु" कहना भी हास्यास्पद है क्योंकि वस्तु की पहचान जरूरी है उसका आकार जरूरी है और उसका नाम जरूरी है। उसके अस्तित्व को परिभाषित करने के लिये उसकी कुछ भौतिक विशेषतायें जरूरी हैं, लेकिन इस असीम अस्तित्व के बारे में आप यही कह सकते हैं, "इसका अस्तित्व ऐसा है, मानो कोई अस्तित्व न हो।" अथवा जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे, "इसमें शून्यता का गुण है।"

इसे समझना बहुत जरूरी है क्योंकि अन्य दर्शन शास्त्र में अनन्त को शून्यता के रूप में परिभाषित किया गया है। लेकिन यह शून्य नहीं हो सकता। यह शून्यता का गुण है अर्थात यह कोई चीज है लेकिन इसकी परिभाषा सम्भव नहीं है इसका कोई गुण, कोई नाम, कोई रूप और समय के लिहाज से कोई अस्तित्व नहीं होता क्योंकि जिस चीज का समय के हिसाब से अस्तित्व है उसका समय के हिसाब से अन्त होना भी लाजिमी है फिर भी रहस्यों का रहस्य यह है कि हर चीज उसी में से आती है। इसे समझना भी कुछ कठिन है। शून्यता में से कोई चीज कैसे आ सकती है। मुझे The Sound of Music नामक फिल्म में एक गाने में अपनी उस उलझन की झलक पाकर बहुत खुशी हुई, जहाँ एक लड़की घूम-घूम कर गाती है Nothing comes from nothing. Nothing ever could. लेकिन यहाँ रहस्य इस बात का है कि विज्ञान शोध के उस स्तर पर आ गया है, जहाँ ब्रह्माण्ड के अस्तित्व की मूल अवस्था को एकरूपता, अपरिमित द्रव्यमान का आयाम रहित बिन्दु, अपरिमित गुरुत्वाकर्षण माना जाता है, जिसमें किसी समय विस्फोट हुआ और इस असीम ब्रह्माण्ड की रचना हुई, जिसका अब भी विस्तार

हो रहा है।

अब मैं फिर से दोहराना चाहूँगा कि अस्तित्व का यह भौतिक छोर है। हम शून्यता के दूसरे छोर पर जाने का प्रयास करते हैं, जिसमें कुछ पैदा होना हमेशा शून्यता का गुण रहा है। यदि यह भी समझ से परे है तो विज्ञान के भी कई और उदाहरण हैं जैसे- कीमियागीर का स्वप्न, दार्शनिक का पत्थर जिसे पारसमणि कहा जाता था। उसे छूकर हर चीज सोने की बन जाती थी। लेकिन फिर एक और सपना है जो किसी कीमियागीर का नहीं बल्कि आध्यात्मिक दृष्टि से अधिक विकसित कीमिया (alchemy) का है, जिसमें वे किसी दार्शनिक का पारसमणि चाहते थे ताकि पारसमणि जब किसी चीज को छू जाये, तो वह चीज दूसरा पारसमणि बन जाये। यही असली सृजन है।

यदि आप सृजन की मानवीय धारणा पर विचार करें तो पायेंगे कि आज की रचनात्मक क्षमता कहीं अधिक विकसित है और हमारे पास असीम वैज्ञानिक शोध, तकनीकी विकास है, इंजीनियरिंग दक्षता का सहारा है, लेकिन एक क्षण के लिए सोचें, हम ऐसी चीजों का सृजन करते हैं जो हमारे लिये नहीं है। इस प्रकार रचनात्मक क्षमता की असली कसौटी यह है कि क्या हम अपने जीवन के उच्चतम स्तर पर अपने जैसी किसी चीज का सृजन कर सकते हैं। "अपने जीवन का उच्चतम स्तर" ये शब्द बहुत जरूरी हैं, अन्यथा हम में से हरेक कह सकता है, "हाँ, मेरा एक बेटा है, मेरी एक बेटी है।" "वह मेरे जैसी है अथवा मेरे जैसा है।" लेकिन यहाँ भी वैज्ञानिक कथा-साहित्य अपनी क्लोनिंग अवधारणा लेकर उपस्थित हो जाता है। क्लोनिंग का अर्थ है कि हमारी हूबहू डुप्लीकेट कॉपी। लेकिन यह भी अपने आप में सम्पूर्ण अवधारणा नहीं है।

इस प्रकार विज्ञान, वैज्ञानिक कथा साहित्य और विभिन्न दर्शन शास्त्रों की संभावनाओं को समाप्त करते हुए मैं 1964 में अपने मालिक की शरण में आ पाया। उन्होंने जो कुछ मुझे पढ़ाया, उसे समझ पाना मेरे लिये बहुत आसान था क्योंकि इन आवश्यक बातों को पढ़ने से मेरा दिमाग उनकी शिक्षा को ग्रहण करने के लिये अनुकूल बन गया था। जब मैंने उसके बारे में अपने मालिक से चर्चा की तो उन्होंने कहा, "शिक्षा का असली अर्थ यही तो है। शिक्षा का तात्पर्य आपको कोई विषय पढ़ाना या डिग्रियाँ प्रदान करना नहीं होना चाहिये, बल्कि मूलतः इसका अर्थ मन को अपने नियंत्रण में लाने का प्रशिक्षण देना तथा मानसिक समझ का स्तर विकसित करने का प्रशिक्षण देना होना चाहिये।" मन का उपयोग करके आप जीवन की सच्चाई, ब्रह्माण्ड की सच्चाई, दिव्यता की सच्चाई और भगवान के

विभिन्न रूपों को समझ सकते हैं। यही इसका अन्त नहीं है।

मन का अगला गुण "**क्या है**" जानने के बाद अवधारणा के तौर पर "**क्या हो सकता है**" को समझना और स्वयं को "**क्या हो सकता है**" का विषय बनाना तथा अपने मन का उपयोग करके अपना विकास करना होना चाहिये ताकि इससे आपका स्वयं का विकास हो सके। अपने मन को, "**क्या हो सकता है**"में बदलने के लिए सक्षम बनाना चाहिये ताकि मन का इस्तेमाल करके मैं "**मैं क्या हूँ**" से "**मुझे क्या होना चाहिये**" बन सकूँ।

मुझे याद है कि एक बार डेनमार्क में कुछ लोगों ने मेरे मालिक से पूछा, "कुछ लोग कहते हैं आप मालिक हैं। कुछ लोग आपको रामचन्द्र कहकर बुलाते हैं। कुछ लोग आपको बाबू जी कहकर बुलाते हैं असल में आप क्या हैं?" उनका उत्तर था, "मैं वही हूँ जो मुझे होना चाहिये।" मेरे विचार से वह कोपेन हैगेन रेडियो का रिपोर्टर था। उन्होंने कहा, "लेकिन क्या हम वह नहीं है, जो हमें होना चाहिये?" मेरे मालिक मुस्कुराये और बोले, "आप वही हैं जो आप हैं, फिर भी आप वह नहीं हैं जो आपको होना चाहिये।" एक विकसित और अविकसित व्यक्ति के बीच यही छोटा सा अन्तर है। आश्चर्यजनक बात यह है कि राजयोग के विज्ञान द्वारा इसे अनुभव करना सम्भव हुआ है। "**मैं क्या हूँ**" यह अनुभूति प्रथम सोपान है। फिर मन का इस्तेमाल करके उसका शोधन करके प्रशिक्षित और विनियमित करके एक सम्पूर्ण साधन बनाया जाता है, जिसका मैं अपने स्वयं के विकास के लिये इस्तेमाल कर सकता हूँ, उच्चतम जीवन की वास्तविकता को समझ सकता हूँ और फिर मन का पुनः इस्तेमाल करके "**जो हमें बनना चाहिये,** वह बनता हूँ।" इसीलिये इसे राजयोग कहा जाता है, क्योंकि मन को हमारे मानव जीवन की क्रीम माना जाता है। हमारे तन्त्र में इसका महत्वपूर्ण स्थान है। संस्कृत में इसे राजा कहा जाता है। इसीलिए यह राजयोग है। इस प्रकार अपने मन के इस्तेमाल द्वारा मन को नियमित और प्रशिक्षित करने तथा इसका इस्तेमाल, "**जो अभी तक नहीं है बनने की सम्भावना**" का विचार मेरे मन में आया।

जब मैं अपने मालिक के पास आया था, तब मेरी उम्र बत्तीस या तैंतीस वर्ष हो चुकी थी। यहाँ आने से पहले मैंने कम से कम बीस वर्षों तक इन चीजों का अध्ययन किया होगा। मुझे लगा कि ये सब समय की बरबादी है। मैंने अपने मालिक से पूछा, "बाबू जी, मैंने कितना समय नष्ट कर दिया है।" वह मुस्कुराये और बोले, "तुम समय को लेकर ऐसे बात कर रहे हो जैसे यह कोई वस्तु हो। समय का कोई आदि और अंत नहीं है, यह एक नदी के समान है जो हमेशा पानी

से उफनती रहती है। नदी की भाँति समय का कोई आदि और अन्त नहीं होता। लेकिन नदी में तो आप आज नहीं नहाते, तो कल नहा सकते हैं। इसके लिये आपको इतना ही करना है कि पानी में उतर जायें और डुबकी लगा लें।" इसके बाद उन्होंने एक अच्छी सलाह दी, "बैठे रहने और बीते समय को लेकर स्वयं को कोसने के बजाय कम से कम अब तो इसका सही इस्तेमाल करने का प्रयास करो।"

जब हम चिन्ता करते हैं कि क्या हो गया है और क्या होना चाहिये तब भी हम वास्तव में अपना समय गवाँ रहे हैं। मेरे मालिक ने चिन्ता की परिभाषा भटकते विचार के रूप में की है। इसीलिए यह सोचना होगा कि हमें क्या हासिल करना है। हमें लोगों से विपरीत बैठकर यह विचार नहीं करना है कि हमने क्या किया। हमें यह पता चलता है कि हममें से अधिकतर लोग मन के कार्य को रोकने में असमर्थ हैं। इसका कारण यह नहीं है कि हम चाहते नहीं, बल्कि हम ऐसा कर नहीं पाते। क्या कोई ऐसा व्यक्ति है, जो चिन्ता नहीं करना चाहता? आजकल हर कोई यही कहता है, "यदि सम्भव हो तो कृपया मेरे मन के काम को बन्द करवा दें।" इसके लिए हमारे यहाँ मनोरंजन के सभी रास्ते मौजूद हैं और रासायनिक तथा इलैक्ट्रिक साधनों द्वारा मन को शान्त करने का प्रयास किया जाता है जिससे ये और अधिक कमजोर होता चला जाता है। कोई भी डाक्टर आपको बतायेगा कि उत्तेजक चीजों का सेवन करने से आपका तन्त्र कमजोर होता है। शायद यह दुखद सत्य है कि हमारा मन चाहे जितना कमजोर हो जाये और मन के ऊपर चाहे जितना नियंत्रण खो दें, इसे नियंत्रित और नियमित करने के लिए अपने स्वयं के प्रयासों के अलावा और कोई रास्ता नहीं है। इसलिए सभी अन्य साधनों से अस्थायी आराम तो मिलेगा, सुधार के लक्षण भी दिखाई देंगे और मानसिक कार्य में नया जोश भी आयेगा, लेकिन अन्ततोगत्वा ये सब साधन हवा हो जाते हैं।

इस प्रकार योग खासकर राजयोग कहता है, "बैठ जाइये।" आपके मन को नियंत्रित करने के लिये बहुत ही सरल तकनीक है। धीरे-धीरे इसे प्रशिक्षित करें ताकि यह एक विचार पर केन्द्रित हो जाये। यही ध्यान है। दुर्भाग्यवश कई लोग ध्यान के बारे में बहुत सी चीजों का जिक्र करते हैं और मेरा विचार है कि संस्कृत साहित्य का इसमें बहुत बड़ा दोष है, क्योंकि यहाँ ध्यान पर चर्चा करने की बजाय एकाग्रता पर अधिक चर्चा की गई है। हर व्यक्ति से यही सुनने को मिलता है, "मैं एकाग्र कैसे हो सकता हूँ? मेरा मन ही मेरा नहीं है। मैं किसी चीज के बारे में दो मिनट से ज्यादा सोच नहीं सकता और आप एकाग्रता की बात कर रहे हैं।" मेरे

मालिक ने इसका बहुत अच्छे ढँग से खुलासा किया। उन्होंने कहा, "किसी चीज के बारे में लगातार सोचना ध्यान है। यह एक प्रक्रिया है। इसके लिए आपको प्रयास करने पड़ते हैं और धीरे-धीरे आपका मन किसी विचार पर लम्बे समय तक टिकने लगता है। जब मन पूरी तरह उस विचार पर टिका हुआ हो, उस अवस्था को एकाग्रता कहते है।

एकाग्रता एक प्रक्रिया का परिणाम है। एकाग्रता मन की दशा है। दुर्भाग्यवश, अधिकतर लोग एकाग्रता की चर्चा ऐसे करते हैं मानो कॉफी की मशीन से कॉफी बना रहे हों, कोई संघटित घोल तैयार करने के लिए भौतिक चीजों का उपयोग कर रहे हों, पानी उबाल रहे हों। इन सब बातों पर विश्वास करना आपको सहज न लगता हो, लेकिन मैं आपको बता सकता हूँ कि मेरे मालिक के कई शिष्य अपने अभ्यास की शुरुआत से कुछेक महीनों के भीतर ही समाधि की दशा तक पहुँच गये थे। जबकि भारत के परम्परागत यौगिक साहित्य के अध्ययन से पता चलता है कि विश्वामित्र ने पच्चीस हजार वर्षों तक ध्यान किया, वशिष्ठ ने पचास हजार वर्षों तक ध्यान किया। हम उलझन में पड़ गये। "यह कैसे सम्भव है? क्या मैं वास्तव में समाधि में हूँ?" यह सच है। ऐसा होता है। जब हम सही काम करते हैं, तो उसके परिणाम आने में कितना समय लगेगा? बिलकुल समय नहीं लगना चाहिये। जैसा कि मेरे मालिक ने कहा था, "यदि आप ध्यान करना जानते हैं, तो आँखें बंद करते ही समाधि में पहुँच जायेंगे।" आजकल मैं प्रायः उसी स्थिति में रहता हूँ। जैसे ही आँखे बंद करता हूँ समाधि में पहुँच जाता हूँ और फिर होश नहीं रहता। इसकी शुरुआत तब से हुई जब से मैंने अपने मालिक की पद्धति अपनायी है।

मैं एक संगीत कार्यक्रम में गया था और मेरी पत्नी मेरे बगल में बैठी संगीत में खोयी हुई थी। मैंने अपनी आँखे बंद की और जब मेरी पत्नी ने झकझोर कर जगाया तो कार्यक्रम सम्पन्न हो चुका था। वह मुझसे बहुत नाराज हुई। बोली, "हर व्यक्ति आपकी तरफ देख रहा था। आप इतने मँहगे कार्यक्रम में आये और यहाँ आकर सो रहे हैं।" मैं उसे कभी विश्वास नहीं दिला पाया कि मैं सो नहीं रहा था। जब मैंने यह बात अपने मालिक से कही तो वे हँसने लगे। उन्होंने कहा, "उसकी व्याख्या तो बहुत सरल है। ध्यान द्वारा तुमने अपने मन को एकाग्र होने का प्रशिक्षण दे दिया है। अब जब तुम किसी चीज पर अपना मन एकाग्र करते हो, तो उसमें खो जाते हो। यही होता है।"

सहज मार्ग वह पद्धति है जिसमे समाधि सम्भव है। पातंजलि की पद्धति में

इसकी बहुत प्रशंसा हुई है। समाधि के बारे में मेरे मालिक की राय बहुत अच्छी नहीं थी। उन्होंने कहा, "समाधि का क्या उपयोग है? ठीक है, तुमने समाधि प्राप्त कर ली है। तुमने तो इसे देखा है। इसका क्या उपयोग है? यदि तुम समाधि में जाते हो और जैसे गये वैसे ही बाहर आ जाते हो, तो यह तो वही बात हुई एक गंदा आदमी नदी में डुबकी मारे लेकिन गंदा ही वापस निकल आये।" इसलिए हमारी सहज मार्ग पद्धति में समाधि का कोई महत्व नहीं हैं, सिवाय इसके कि इससे यह पता चलता है कि अब आपका मन आपके नियंत्रण में है। जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे, " अब यही योग की शुरुआत होती है।" ध्यान और समाधि वे स्थितियाँ हैं, जिसका विकास के साथ कोई विशेष महत्व नहीं है। मेरे मालिक का दृढ़ मत था कि विगत काल का सारा यौगिक अनुसंधान समाधि पर आकर रुक गया था। उससे आगे नहीं बढ़ पाया था। उनकी यही हमारे लिए शिक्षा रही है।

हम समाधि में विश्वास नहीं करते। यदि होती है, तो हो। जैसे हमें नीद आती है और हम फिर जागते हैं। यह हमारी यौगिक साधना का लक्ष्य नहीं है। हमारी साधना का लक्ष्य स्थूलता त्याग कर सूक्ष्म से सूक्ष्मतर बनना और अंत में दिव्यीकरण की अंतिम अवस्था को प्राप्त करना है। मनुष्य होते हुए भी हम अपने भीतर शून्यता का गुण विकसित करके देव तुल्य बन सकते हैं। सहज मार्ग का यही उद्देश्य है।

यहाँ मैं परम्परागत योग के बारे में कुछ और बताना चाहता हूँ। मेरा मकसद कोई समस्या या मतभेद पैदा करना नहीं बल्कि यह बताना है कि पश्चिम व पूरब में जिस रूप में योग का अभ्यास किया जा रहा है, उसका कोई महत्व नहीं है। भारत में हम देखते हैं कि ये योगी विभिन्न नदियों के तटों पर सिर के बल खड़े होते थे और सब तरह के आसन आदि करते थे। इससे शायद उन्हें शारीरिक क्षमता प्राप्त होती थी। कुछेक को थोड़ा बहुत आत्मिक नियंत्रण प्राप्त हो जाता था जो वास्तव में आश्चर्यजनक है। लेकिन जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे ,'ये आपको कहाँ ले जायेगा?' इनमें से कई लोगों ने सूक्ष्मदर्शी शक्तियाँ विकसित कर ली हैं। मेरे मालिक कहा करते थे,'आज आपके पास टेलीफोन तथा टेलीविजन हैं। आप हजारों मील से बात कर सकते हैं और हजारों मील से चीजें देख सकते हैं।' तब उन्होंने मुझे आदि शंकराचार्य की कहानी सुनाई, जिनका जीवन-काल नौंवी शताब्दी में माना जाता है। वे आज की दार्शनिक पद्धति 'अद्वैत वेदांत' के संस्थापक थे, जिसका रामकृष्ण परमहंस और उनके महान शिष्य स्वामी विवेकानंद द्वारा विश्व में व्यापक प्रचार-प्रसार किया गया था।

कहा जाता है कि एक आदमी जो साठ वर्षों से हठयोग का अभ्यास कर रहा था, शंकराचार्य के पास आया। वह अपने बारे में बहुत खुश था। शंकराचार्य ने उससे पूछा, 'तुमने क्या हासिल किया है? वह क्या चीज है जो तुमने प्राप्त की है और जिसे दूसरा व्यक्ति भी प्राप्त कर सकता है?'' उसने कहा, ''स्वामी, साठ वर्षों के बाद मैं एक पक्षी की भाँति उड़ सकता हूँ।'' शंकराचार्य हँसे और बोले, ''हर पक्षी साठ वर्ष तक बिना अभ्यास करे ही आसमान में उड़ सकता है। तुमने शायद उतने संस्कार संचित कर लिये हैं कि तुम अगले जन्म में पक्षी के रूप में जन्म लोगे।'' यह बात नौंवी सदी में कही गयी थी। हम बीसवीं सदी में हैं और इक्कीसवीं सदी में प्रवेश करने वाले हैं।

इस प्रकार मानवीय प्रकृति में कोई परिवर्तन नहीं आया है। अभिलाषाओं में कोई परिवर्तन नहीं हुआ अर्थात आज भी हम उन्हीं चीजों की चाहत रखते हैं, जिन्हें हम देख सकते हैं और तौल सकते हैं। लेकिन दुर्भाग्यवश असली राजयोग में उन चीजों की सम्भावना नहीं है, जिन्हें किसी भी तरह से तौला जा सकता हो, अथवा देखा जा सकता हो अथवा महसूस किया जा सकता हो अथवा छुआ जा सकता हो। कई लोग मेरे मालिक से पूछा करते थे, ''किसी आध्यात्मिक व्यक्ति को कैसे परखा जाये? कैसे जानें कौन आध्यात्मिक है और कौन नहीं? उन्होंने कहा, ''सड़क पर आपको आधा दर्जन लोग दिखायी देते हैं, क्या तुम बता सकते हो कौन शिक्षित है कौन नहीं? यदि वे शान्त रहें और कुछ न बोलें और कोई मूर्ख व्यक्ति अच्छे कपड़े पहने हुये न हो, तो आप अच्छे कपड़े पहने हुये व्यक्ति को विवेकशील व्यक्ति मानने की भूल कर बैठेंगे।''

जब शिक्षा को बाहरी रूप से नहीं पहचाना जा सकता बशर्तें कि व्यक्ति आप से बातचीत और अपने ज्ञान का दिखावा न करे, तो आध्यात्मिक विकास जैसी सूक्ष्म चीज को आप कैसे परख सकते हैं? तथापि, उन्होंने हमें एक कसौटी दी। जब आप वास्तव में आध्यात्मिक रूप से विकसित व्यक्ति के पास बैठते हैं, तो आपको एक चीज अवश्य महसूस होती है और वह यह है कि आप अपने आपे में होते हैं, आपका मन शान्त होता है और ऐसी शान्ति महसूस होती है जो आप अन्यथा महसूस नहीं कर सकते थे। यह पहली कसौटी है। हठयोग और उसके विभिन्न रूप, असीम शक्तियों, कुण्डलिनी जैसी सर्वश्रेष्ठ शक्तियों से हमें विज्ञान की भयावह शक्तियाँ मिली हैं जैसे बारूद से लेकर न्यूट्रॉन बम।

आश्चर्यजनक बात यह है कि विज्ञान की विनाशक शक्तियों में भी स्थूलता की ओर जाने की प्रवृत्ति है। यदि आप किसी पर लेजर गन से निशाना लगायें, तो

वास्तव में बाहर कुछ नहीं निकलता। मैं यह उदाहरण यह दर्शाने के लिए दे रहा हूँ कि विज्ञान और योग एक ही दिशा में बढ़ रहे हैं अथवा एक ही दिशा में जाते हुए प्रतीत हो रहे हैं। लेकिन मेरा एक विनम्र सुझाव है कि यह सूक्ष्मता की विपरीत दिशाओं में जा रहे हैं। जैसा कि आप जानते हैं, शक्ति का इस्तेमाल दोनों तरह से किया जा सकता है। इसके बाहरी रूप में हम इसका इस्तेमाल विनाश के रूप में करते हैं। यदि हम इसका रुख बदलकर अपनी तरफ कर लें, तो इसका इस्तेमाल विकास की तरफ होता है। दोनों सूक्ष्म सीमाओं की ओर बढ़ रहे हैं। हमारे यहाँ विज्ञान की भयावह कहानियों में से एक कहानी यह है कि आप मात्र एक बटन दबा कर आकाश गंगा के केन्द्र पर निशाना लगाते हैं।

इसके लिये आपको बटन को थोड़ा सा शिफ्ट करना पड़ता है, और एक शक्ति बाहर निकलती है, जिससे आकाश गंगा का पूरा पदार्थ और उसके अनन्त घटक चूर-चूर होकर ब्रह्माण्ड में फैल जाते हैं।

इस प्रकार विज्ञान विनाश के लिए केन्द्र से बाहर की ओर कार्य करता है। योग बाहर से अन्दर की ओर काम करता है, ज्ञान को खींचकर भीतर लाता है, मन की शक्ति को भीतर की ओर लाता है, शरीर की शक्तियों को भीतर की ओर लाता है तथा हर चीज को संकुचित करके एक साथ केन्द्र पर एकत्रित करता है और यह केन्द्र आपके जीवन का केन्द्र बन जाता है। यही राजयोग का उद्देश्य है। वस्तुतः आप सभी ने प्राचीन काल के महान संतों की चेतावनियाँ पढ़ी होंगी, "चमत्कार करने अथवा शक्ति का उपयोग करने वाले इन चक्करों में मत पड़ो क्योंकि इससे आत्मा का नाश होता है।" पूरब हो या पश्चिम, सभी संतो ने एक बात कही है। लेकिन शक्ति का प्रलोभन इतना जबरदस्त है कि कभी-कभी उस पर विजय पाना कठिन हो जाता है। शक्ति के प्रदर्शन का न्यूनतम स्तर, अहंकार को अधिक पुष्ट और आर्कषक बनाने की इच्छा के अलावा कुछ नहीं है। हम अपने व्यक्तिगत साम्राज्य, विजनेस़ साम्राज्य, और राजनीतिक साम्राज्यों का विस्तार करने की इच्छा रखते हैं। आजकल के तकनीक उन्मुखी समाज में सभी बिजनेस स्कूलों में केवल इसके विस्तार की चर्चा होती है। इस वर्ष आपके व्यापार में कितना इजाफा हुआ? मुझे इन सब बातों की अच्छी जानकारी है क्योंकि मैं बत्तीस सालों तक बिजनेस एक्जेक्यूटिव रहा हूँ और कुछ साल पहले ही सेवानिवृत्त हुआ हूँ। ये हर रोज का काम था। "आपकी बिक्री कितनी बढ़ी है? आपका उत्पादन कितना बढ़ा है? कल कितनी पूँजी की जरूरत होगी?" आधी रात तक मुझे पाँच वर्ष का नकद आगम, पाँच वर्ष की बिक्री का आकलन और उत्पादन कार्यक्रमों के ही सपने आते

थे। तथापि सफलता हमेशा दूर रहती थी, जैसी कि प्राचीन कहावत है, "चूहों और आदमियों की सुव्यवस्थित योजना प्रायः बेकार जाया करती है।"

बेहतर कम्प्यूटर साधनों, कम्प्यूटर जनित योजनाओं, कम्प्यूटर जनित फ्यूचरिस्टिक्स आदि के बावजूद हम जो भी काम करते हैं, उसमें हमेशा अनिश्चितता बनी रहती है और गलतियाँ होती रहती हैं। हाल ही की एक दुखद घटना है, जिसमें अपनी नियमित उड़ान पर जा रहा एक नागरिक विमान इसलिये नष्ट हो गया क्योंकि उपलब्ध आधुनिक प्रौद्योगिकी की वजह से आदमी को सोचने का समय नहीं मिला। इसीलिये यह कहा जाता है कि कोई भी काम करें, सोच-समझकर करें। इसीलिए प्राचीन समय में यह कहा जाता था, "पहले सोचो, फिर करो।" हम कम्प्यूटर की कार्य प्रणाली की समानता करने की भूल नहीं करते।

आइये फिर अपने विषय पर लौटते हैं। विज्ञान की उड़ान बहिर्गामी होती है और आध्यात्मिकता की उड़ान अन्तरमुखी होती है। भौतिक दुनियाँ की माँग विस्तार है और यौगिक की माँग अपने में संकुचन है, जब तक कि आप उस मुकाम पर न पहुँच जाये जहाँ आप कह सकें, "मेरे अन्दर शून्यता है।" इसीलिए इस योग को स्वीकार करना इतना कठिन है। इसका कारण यह नहीं है कि योग की जानकारी नहीं है। मैं तो यहाँ तक कहने का साहस करता हूँ कि यूरोप में भारत की तुलना में योग स्कूलों की संख्या अधिक है। लेकिन हम एक मुद्दे पर आकर रुक जाते हैं। हमारी उड़ान हठयोग और प्राणायाम पर आकर रुक जाती है। ये पातंजलि योग के प्रथम चार सोपान हैं और हम इनसे आगे नहीं जाना चाहते क्योंकि यहाँ तक पहाड़ पर चढ़ाई जैसी स्थिति है जिसमें आनन्द आता है। ऐसा कौन सा व्यक्ति है जो हमेशा के लिए पहाड़ की चोटी पर ठहरना नहीं चाहेगा, जहाँ अच्छी हवा है, साफ सुथरा आसमान हैं? लेकिन ऊपर जाने के बाद हमें नीचे आना ही पड़ेगा।मेरे मालिक कहा करते थे, "मेरे दोस्त, योग में भी यह हमारा घर (संसार) नहीं है। ज्ञान-विज्ञान और शिक्षा के इस समस्त विस्तार के बाद हमें अपनी मूल अवस्था दिव्यता में लौटना पड़ेगा जो हर चीज का स्रोत है लेकिन स्वयं में शून्य है। हमें पुनः उसी अवस्था को प्राप्त करना होगा।"

राजयोग इसीलिए अधिक लोकप्रिय नहीं है। लोग इसके बारे में पढ़ते जरूर हैं। स्वामी विवेकानन्द की एक मशहूर पुस्तक है। लेकिन हम तो पहाड़ की चोटी पर जाकर रुक जाना चाहते है पुनः नीचे आना ही नहीं चाहते। यही कारण है कि नशे की हालत में व्यक्ति ऊँची उड़ान होती है। हम हर उस चीज का, हर उस अनुभव को जिसमें कल्पना की ऊँची उड़ान होती है, लम्बे समय तक कायम रखना चाहते हैं। धूम्रपान करने वाला व्यक्ति इस बात को भली भाँति जानता है। वह एक

सिगरेट पीता है, उसे कुछ अनुभूति होती है फिर दूसरी सिगरेट पीता है ताकि वह उस को बनाये रख सके लेकिन अंत में हाथ कुछ नहीं लगता। जो लोग शराब पीते हैं, वे भी इस बात को जानते हैं। उनके साथ भी ऐसा ही होता है।

एक प्राचीन कहावत है जो मैंने बचपन में सुनी थी, "पहले आदमी बोतल को पीता है, फिर बोतल-बोतल को पीती है और अंत मे बोतल आदमी को पी जाती है।" हर लत के साथ ऐसा ही होता है, चाहे ज्ञान की लत हो या फिर धन की लत, जिस चीज पर हम अपना हक जमाना शुरू करते हैं वही चीज अंत में हमारी मालिक बन जाती है। दूसरे शब्दों में हम इन चीजों के दास बन कर रह जाते है, जैसा कि मेरे मालिक बार-बार कहा करते थे, सबसे बड़ी गुलामी सफलता की गुलामी है। यह सबसे भयावह दिल विदारक गुलामी है क्योंकि सफल व्यक्ति, असफल व्यक्ति से बदतर होता है। हम जैसे साधारण लोग सफल होना चाहते हैं, हम सफल होने के सपने देखते हैं। लेकिन सफल व्यक्ति की मुसीबत यह है कि सफलता के उस मुकाम पर वह कायम कैसे रहे।

इसलिए वर्ष दर वर्ष विम्बलडन नामक टेनिस कोर्ट में इस प्रकार के उदाहरण देखने को मिलते हैं कि हर व्यक्ति उच्चतम स्तर पर रहना चाहता है। पूरी मसक्कत करता है अपनी पीठ तुड़वाता है और अंत में दिल तोड़कर बैठ जाता है। गंदी शारीरिक आदत का छोड़ना बहुत आसान है, लेकिन मानसिक आदत जैसे सफलता का विचार, जैसे औरों से ऊँचा बना रहने के विचार को छोड़ पाना बहुत मुश्किल होता है। मानसिक चीजें भौतिक दुनिया से अधिक सूक्ष्म होती हैं और उनका प्रभाव हमारे ऊपर अधिक गहरा होता है। अतः योग विज्ञान में हमेशा चेतावनी दी गई है, "सफलता की पीछे मत पड़ो।" यहाँ मौजूद लोगों को इससे दुखी होने की जरूरत नहीं है। योग में किसी चीज मे सफल होने और किसी चीज में फलने फूलने के बीच अंतर किया जाता है। विकास और सफलता दो भिन्न चीजें है। योग मे हमें चेतवानी दी गयी है कि सफलता का अर्थ अस्थायी है, जो एक उपलब्धि है, जिसका नाश हो सकता है, जबकि विकास एक ऐसी चीज है जो अनवरत है, क्रमिक है, शाश्वत है, अन्तहीन है। अतः समझदार व्यक्ति को सफलता के बजाय विकास के लिए प्रयासरत रहना चाहिये।

महान ऋषियों ने इस नश्वर संसार को छोड़ा और आन्तरिक रहस्यमयी जीवन में विलीन हुये तो उन्होंने यही तर्क दिया था। आश्चर्य इस बात का है कि उन ऋषियों को श्रद्धा और प्रेम से याद किया जाता है। इन महान लोगों के बारे में यह कहा जाता है कि शैतान उन्हें प्रलोभन देने स्वयं आया था। आम आदमी को थोड़े

से धन अथवा एक बोतल शराब से ललचाया जा सकता है। उन महान संतो को ललचाने के लिए स्वयं शैतान को आना पड़ा था। चाहे ईसा मसीह हों या महात्मा बुद्ध या फिर मोहम्मद, यह प्रलोभन हमेशा से उनके साथ जुड़ा हुआ था। यौगिक विचारधारा की हमारी हिन्दू पद्धति में यह कहा जाता है कि, "वह शैतान, जो तुम्हें लालायित करता है, तुम्हारे भीतर विराजमान है।" शैतान जैसी कोई ताकत नहीं है जो बाहर से आकर हमें भगवान की शक्तियों से लड़ने के लिए लालायित करती हो। हमारा जिन चीजों से पतन होता है, वे हमारी स्वयं की आतंरिक लालसा, कामुकता और प्रलोभन हैं। मेरे मालिक ने इसका बहुत अच्छे ढंग से खुलासा किया है। उन्होंने कहा है, "मान लीजिए छः लोग बैठे हुए हैं। उन सबको एक ही चीज लालायित नहीं कर सकती। क्यों? यदि उस चीज में लालायित करने की क्षमता होती, तो उन सबको लालायित होना चाहिये था।" जब मैंने इसका कारण जानना चाहा तो उन्होंने कहा, "तुम्हारी जिस चीज में आसक्ति होती है, वहीं चीज तुम्हें लालायित कर सकती है। चूँकि भीतर से तुम इस सत्य को स्वीकार करने में आनाकानी करते हो कि अपने लालच का कारण तुम स्वयं हो, इसीलिए तुम बाहरी कारणों को दोष देते हो।" उन्होंने कहा, "चेहरे की असलियत उजागर करने के लिए दर्पण को दोष देना मूर्खता है। यदि तुम बदसूरत हो, तो दर्पण क्या कर सकता है?"

जब बाहरी दुनियाँ में हमें ये प्रलोभन दिखाई देते हैं, तो उनसे हमारी आंतरिक स्थिति अवश्य दिखायी पड़ती है। "आह, मेरे भीतर यह खामी है, जो बाह्य स्थिति को देखकर प्रतिक्रिया करती है।" मेरे मालिक के अनुसार, जब शैतान हमारे समक्ष उपस्थित होकर हमें अनंत जीवन, ब्रह्माण्ड के ऊपर असीम आधिपत्य, असंख्य बच्चों और जीवन की अपार खुशियों से लालायित करता है, तो हमारे भीतर गहरायी में दफन सब गुप्त चीजों की उत्कंठा अन्ततः बाहर निकलने लगती है। यही सबसे बड़ा मनोवैज्ञानिक सत्य था, जो उन्होंने मुझे पढ़ाया था। सर्वाधिक भयावह, सर्वाधिक विभीषक, सर्वाधिक शर्मनाक चीजों को हम अपने दिल की गहराइयों में दफन रखते हैं और वे अंत में बाहर आती हैं।

बाबूजी के साथ ध्यान के दस या बाहर वर्षों के उपरांत मुझे एक अनुभव हुआ। मैं ध्यान में बैठा हुआ था। मेरे मालिक के अनुसार मैने आध्यात्मिकता का बहुत उच्च-स्तर हासिल कर लिया था। उसी ध्यान अवस्था में हिन्दू देवकुल की देवी गायत्री प्रकट हुई। उन्होंने साड़ी उठाकर ब्लाउज उतारकर स्वयं को निःवस्त्र करना शुरू कर दिया। मुझे झटका सा लगा। एक देवी ! मुझे बहुत शर्म आयी। मैंने

कहा,"मुझे क्या हो रहा है? मानों मुझे कोड़े लगाये जा रहे हों।" मैं तत्काल अपने मालिक के पास गया। मैने अपनी कम्पनी से एक सप्ताह की छुट्टी ली। मैं मद्रास में रहता था। वे उत्तर भारत में रहते थे। मैंने कहा,"बाबूजी, मुझे नहीं मालूम कि मुझे क्या हुआ लेकिन ऐसा लगता हैं कि मैं विकास के निम्नतम स्तर पर आ गया हूँ ओर आप मेरे विकास की तारीफ कर रहे हैं। वे बहुत बेचैन हो गये। वे जानते थे कि मैं हमेशा गंभीर रहता था। उन्होंने कहा,"क्या हुआ?" क्या कहूँ? मुझे खुलासा करते हुए कठिनाई महसूस हो रही थी। अपने गुरु, अपने मालिक से कैसे कहूँ? बहरहाल मुझे बताना पड़ा। उन्होंने कंधे पर हाथ रखकर कहा, " चिंता मत करो। सर्वाधिक शर्मनाक चीजें मन की गहराइयों में छुपी होती हैं और ये आज बाहर निकल आयी हैं। अब तुम स्वतन्त्र हो।"

हमें योगिक विज्ञान, योगिक तकनीकों, योगिक प्रतिमानों को सही ढंग से समझना होगा क्योंकि यदि उस दिन अपना अनुभव सुनाने और स्पष्टीकरण प्राप्त करने के लिए मेरे पास मेरे मालिक नहीं होते, तो मैंने योग को हमेशा के लिए छोड़ दिया होता। मेरे कहने का अर्थ यह है कि मैं बहुत डरा हुआ था। क्या अजीब चीजें घटित हो रही थीं। जिन चीजों को मैंने अठ्ठारह-बीस वर्षो तक सपने में भी नहीं देखा था, अब उनको पैंतालीस वर्ष की उम्र में देख रहा हूँ। मेरे मालिक ने कहा, "याद रखो किसी योगिक अनुभव की व्याख्या करना बहुत खतरनाक काम है और इसके लिए एक गुरु की जरूरत होती है।"

अब हम अपने योगिक जीवन में गुरु की आवश्यकता पर बात करते हैं। प्रायः लोग पूछते हैं,"हमें गुरु की जरूरत क्यों पड़ती हैं? ठीक इन्हीं चीजों के लिये हमें गुरु की जरूरत पड़ती है।" आपके यहाँ स्वतंत्र राज मिस्त्रियों की प्राचीन परम्परा हुआ करती थी और मेरा विश्वास हैं इसकी शुरुआत कारीगरों से हुई थी। हर काम के जानकार लोग एक साथ मिले और राजगीरी की परम्परा चल निकली। एक गुरु अपने विषय का मर्मज्ञ होता हैं। यहाँ पर विषय है आध्यात्मिकता। यदि आपको इतिहास की जानकारी लेनी हो, इतिहास के अध्यापक के पास जाते हैं। यदि भूगोल की जानकारी चाहिये, तो भूगोल के शिक्षक के पास जाते हो। मुझे नहीं मालूम कि आध्यात्मिकता की जानकारी के लिए आध्यात्मिक गुरु के पास जाने का लोग विरोध क्यों करते हैं। शायद इसका कारण यह है कि उनके नाम के पीछे डिग्रियाँ नहीं लगी होती। अन्य सभी गुरुओं के पीछे डिग्रियाँ लगी होती हैं। कोई प्रोफेसर होता है, कोई असिस्टेंट प्रोफेसर होता हैं। हम उनके प्रिंटेड डिप्लोमा और उनके नाम के साथ लगी हुई डिग्रियों से प्रभावित होते हैं।

यह दूसरी चीज है जो मेरे मालिक ने मुझे बतायी थी। हमं केवल चीजों को बाहर से परखते हैं, भीतर कभी नहीं झाँकते। हम फल को बाहर से देखते हैं, किसी व्यक्ति को उसके चेहरे से देखते हैं और बटुआ को मोटाई से परखते हैं यदि आज आधुनिक जीवन इतना अस्थिर, अविश्वसनीय है और मानवीय रिश्ते इतने तनावपूर्ण हैं, तो इसका कारण यह है कि गुणों की तलाश मन में करने की बजाय हम उन्हें बाहरी रूप से देखते परखते हैं। इस प्रकार आध्यात्मिकता हमें जीवन के मूल में ले जाती हैं। भीतर झाँको। पहले अपने भीतर झाँको। अपनी इन्द्रियों, अपने मन और अपनी सभी ज्ञानेन्द्रियों को भीतर की ओर मोड़ो। क्या बाह्य ब्रह्माण्ड बहुत विशाल हैं? इसका विस्तार बीस मिलियन प्रकाश वर्ष है। आन्तरिक ब्रह्माण्ड उससे भी विस्तृत है। इसकी कोई सीमा नहीं। कोई चीज कितनी बड़ी है, उसकी भी एक सीमा होती है और कितनी छोटी हो सकती है, उसकी भी एक सीमा होती है। छोटे से छोटे, कितना छोटा हो सकता है?

बचपन में मैंने एक बार एक कहानी पढ़ी थी, जिसका रहस्य मुझे बहुत बाद में तीस, चालीस वर्ष बाद ज्ञात हुआ। यह कहानी एक ऐसी वस्तु की थी जिसको रगड़ने से एक जिन्न पैदा होता था। वह हर इच्छित चीज ला सकता था। इस चीज से छुटकारा पाने का एक ही तरीका था, उसे खरीदी गयी कीमत से सस्ते में बेच दिया जाय। पहले आदमी ने इसे एक मिलियन डालर में खरीदा और धीरे-धीरे उसकी कीमत कम होती चली गई। सौ डालर, पचास डालर, बीस डालर, दस डालर और एक सैंट। उसके मालिक की समझ में नहीं आया कि उसका क्या करे। सैंट से नीचे कोई मुद्रा नहीं होती। किसी अर्थशास्त्री ने उसे एक तरीका सुझाया कि उसे लीरा मे बदल लो। यदि एक सैंट की कीमत एक सौ बीस लीरा है, तो उसे एक सो उन्नीस लीरा मे बेंच दो। अंत में जब उसकी कीमत एक लीरा आ गयी तो उसे लगा कि अब क्या करूँ। कहानी कहती है कि तब वह किसी संत के पास गया संत ने कहा कि उसे फेंक दो। इस रहस्य का मर्म कोई व्यक्ति नहीं जान पाया क्योंकि हर व्यक्ति इस सिद्घान्त को लेकर चल रहा था उसे सस्ते में बेचना जरूरी हैं। उसने उसे नदी में फेंक दिया और सारी समस्या हल हो गयी।

सूक्ष्मता की कोई सीमा नहीं होती। विशालता की सीमा जरूर होती है। कोई चीज कितनी बड़ी हो सकती है? कभी-कभी बच्चे आपस में बहस करते हैं, मेरे पिताजी तुम्हारे पिताजी से बड़े हैं। आम तौर पर उसकी शुरुआत बहस से होती हैं और अंत हाथापाई के साथ। इस प्रकार योग में हम हर चीज को भीतर की ओर मोड़ते हैं। हम इस आश्चर्यजनक अनुभव पर पहुँचते हैं कि जिसे हमने अत्यंत छोटा

समझा, वास्तव में वह असीम व्यापकता का स्रोत है। यही अस्तित्व के मूल की सच्चाई है।

हमारी योगिक पद्धति का यह साहसपूर्ण कार्य हैं। शरीर को शांत करने के लिये हम एक मुद्रा में बैठते हैं, जिसे आसान कहा जाता है। मन को शांत करने के लिये हमें ध्यान की एक वस्तु चाहिये। हमारे मामले में दिल में विराजमान दिव्य प्रकाश ध्यान का केन्द्र है अर्थात आप यह कह सकते हैं कि हम मनुष्य जीवन की नैसर्गिक पद्धतियों से विपरीत दिशा में चलते हैं, जैसे कर्म से अकर्मण्यता की ओर, भारी भ़रकम विचार से विचारहीनता की ओर, अत्यधिक श्वाँस लेने से लगभग श्वाँस रोकने की ओर। जैसा कि मेरे मालिक ने कहा, "जब आप वास्तव में उस बिन्दु पर पहुँच जाते हैं, तब यह कहा जा सकता है कि आपकी यात्रा सम्पन्न होने वाली है, क्योंकि अब वह आपको जकड़ना शुरू कर देती है।" फिर हम गहराइयों में गोते लगाना शुरू करते हैं ओर अन्त में ऐसी अवस्था में पहुँच जाते हैं, जहाँ आप "न यहाँ हैं न वहाँ हैं" फिर भी हर जगह व्याप्त हैं। यही भगवान की परिभाषा है। वह सर्वव्यापक हैं। बड़े से बड़ा ओर छोटे से छोटा। ये सब परिभाषायें थोड़ी उलझन भरी लगती हैं।

इस प्रकार योगिक विज्ञान, मानव विकास के उच्चतम स्तर तक की सम्भावना की तलाश करता है बाहर की ओर उन्मुख होकर आप ब्रह्माण्ड को जान सकते हैं, आकाश गंगा की पद्धतियों को माप सकते हैं लेकिन कैंसर की भाँति एक ही प्रकार की कोशिकायें पालते रहते हैं। मुझे अपनी योग पद्धति के बारे में यही सब कहना था। यदि आप में से कुछ लोग इसमें रुचि रखते हैं, तो आपका स्वागत है। हम एक और पूरे सप्ताह तक यहाँ पर हैं। मैं आप सबको आमंत्रित करता हूँ कि आप सब आकर इसका प्रयोग करें।

धन्यवाद।

9
मालिक सर्वव्यापी हैं
कोरमैटिस, फ्रांस
27 अगस्त, 1988

मुझे दो दिन पहले दिल्ली से एक लड़की का पत्र मिला। वह मुझसे बहुत नाराज थी क्योंकि वह कहती हैं "हमने पाँच महीनों से आपको नहीं देखा है" और उसने एक बहुत बढ़िया सुझाव दिया है। उसने कहा,"आप विदेश में रहें और हर साल तीन महीनों के लिए भारत आ जाया करें (हँसते हैं)। उस तरह हम आज की तुलना में आपको थोड़ा सा अधिक समय तक देख पायेंगे।" मैंने उसे कुछ ऐसा लिखा है, जैसा पैट्रिक ने अभी जो कुछ बताया है, उससे थोड़ा हटकर है। पैट्रिक ने कहा कि हम सब ने मालिक की आवाज को अपने भीतर सुनना सीख लिया है। मैंने उस लड़की को लिखा कि उसे भी अपने भीतर मालिक के दर्शन करना सीखना चाहिये। मैं आप लोगों को भी यही सलाह दूँगा। हमें मालिक को अपने दिल में देखना ओर सुनना होगा।

यहाँ दो-तीन दिन से मुझसे एक और प्रश्न पूछा जा रहा है "क्या आपको कोरमैटिस छोड़ते हुए खेद है?" मेरे लिए कौरमैटिस का कोई महत्व नहीं है। यदि है तो इस बात का कि मुझे आप सबसे विदा लेनी पड़ेगी। मेरा कहने का अर्थ यह है कि कोरमैटिस या नाईस या पेरिस मेरे लिए कोई मायने नहीं रखते। इसलिए हमें यह भी सीखना पड़ेगा कि स्वयं को स्थानों के साथ न जोड़ें। जैसा कि मैंने भारत में एक दूसरी अभ्यासी लड़की को लिखा है "हमारे लिए भारत या यूरोप का कोई विशेष महत्व नही हैं।" जब हम एक कमरे से दूसरे कमरे में जाते हैं, तो हमें दुःख महसूस नहीं होता और न ही अगले कमरे में जाने की कोई खुशी होती है। सारा घर ही हमारा है, अन्यथा होने वाली घटना अपने पीछे दुख की एक रेखा खींच कर जायेगी। वस्तुतः आज मनुष्य की यह प्रकृति बन गयी है कि जहाँ से वह गुजरता है दुःख और विनाश पीछे छोड़ता चला जाता है। यह बहुत बुरी बात है। जब हम दिव्य और अच्छे अभ्यासी बन जाते हैं, तो हमें अपने पीछे खुशी, प्रसन्नता और संतोष छोड़ना चाहिये। मानों किसी गुलाब को बाहर रख दिया गया हो। हो सकता है कि हमें इस बात का दुःख हो कि गुलाब चला गया, लेकिन हम उसकी खुशबू से वंचित नहीं रहते। इसलिए हमें अपने पीछे हमेशा सुगंध छोड़नी चाहिये। यदि आपके कमरे में सिंगापुरी पेपर फूल, प्लास्टिक फूल हों, तो उसका

क्या फायदा? उन्हें वहाँ रखने अथवा हटा देने से कोई फर्क नहीं पड़ता है न उनकी उपस्थिति और न ही उनकी अनुपस्थिति से कोई फर्क नही पड़ता हैं।

अब हम यहाँ हमेशा मालिक की उपस्थिति की बात करते रहते हैं। निःसंदेह जब मालिक शारीरिक रूप से उपस्थित हों, तो यह खुशी और पुनर्मिलन की घड़ी होती है। सतगुरु की उपस्थिति का कोई भी आदमी एहसास कर सकता है। वह अपने पीछे कुछ अवश्य छोड़ता है, जो शायद उनकी शारीरिक उपस्थिति से कहीं महत्वपूर्ण होता है। बाबूजी के साथ हम सबने यह बात महसूस की थी। मेरा कहने का तात्पर्य यह है कि मैं हमेशा सोचता था कि जिस दिन बाबूजी इस दुनियाँ को अलविदा कहेंगे, उस दिन मुझे बहुत दुःख होगा। मैं जानता था कि उनका अन्त निकट है। जब हम यह जानते हैं कि कोई व्यक्ति जाने वाला है तो हमें बहुत पहले ही इसका आभास हो जाता है। उस व्यक्ति की विदाई के साथ हम उस दुख की चरम पराकाष्ठा तक बहुत दुखी रहते हैं। लेकिन यहाँ तो चमत्कार हुआ कि जब बाबूजी का देहांत हुआ मुझे कोई खास दुख की अनुभूति नहीं हुई हालाँकि भावनायें थीं। मुझे उनकी भौतिक उपस्थिति का अभाव जरूर खला लेकिन मेरे दिल में कोई ूरी नहीं आई। यह सद्‌गुरु का प्रभाव है। उनका शरीर चला जाता है, लेकिन आत्मा यहीं रहती है। हर सद्‌गुरु इसी तरह अपनी उपस्थिति का आभास कराता है।

जब बाबूजी ने कहा, "हम गुलाम नहीं बनाते बल्कि मालिक तैयार करते हैं" तो इसका क्या अर्थ था? उसका यह अर्थ नहीं कि हर अभ्यासी सहज मार्ग में मालिक बन सकता है अथवा मिशन का अध्यक्ष बन सकता है। बल्कि हम एक ऐसी आध्यात्मिक प्रतिभा अर्जित कर सकते हैं कि जब हम किसी स्थान से चले जायें तब भी यही आभास होता रहे मानों यहीं पर विराजमान हैं। केवल ऐसे व्यक्तियों के बारे में कहा जा सकता है कि वह सर्वव्यापी हैं।" यही कारण है कि हमें बाबूजी की उपस्थिति का अहसास केवल शाहजहाँपुर अथवा मद्रास अथवा टिम्बकटू में ही नहीं बल्कि सर्वत्र महसूस होता है। भौतिक चीजों के साथ यह सीमा है। एक गुलाब को जहाँ रखा जाता है उसकी खुशबू वहीं पर व्याप्त रहती है, लेकिन मालिक सर्वव्यापी हैं। उनकी शारीरिक उपस्थिति चाहे कहीं भी हों, लेकिन आध्यात्मिक उपस्थिति सर्वत्र व्याप्त होती है वह जितनी अधिक यात्रा करते हैं, जितना अधिक घूमते फिरते हैं उनकी उपस्थिति और मजबूत होती चली जाती है। ऐसे व्यक्ति कभी दूर नहीं जा सकते।

आध्यात्मिकता का यह सबक है कि हमारा अंत अवश्यंभावी है। जब मौत आती

है तो शरीर मरता है लेकिन आत्मा हमेशा अपनी उपस्थिति का अहसास करती रहती है। लोग महसूस करते हैं मानों हम यही विराजमान हैं। आध्यात्मिक उपस्थिति का यही रहस्य है। शरीर एक क्षणिक चीज है। यह कुछ वर्षों तक रहता है और अंत में विलीन हो जाता है, लेकिन लोगों के दिलों में हमारी याद सदैव बनी रहती है। मेरे विचार से आध्यात्मिक विकास का यही रहस्य है। मैं प्रार्थना करता हूँ कि मालिक की कृपा से आप सभी के साथ ऐसा ही हो।

धन्यवाद।

10
संवेदनशीलता

बिल्लेन्यू लिरोई, फ्रांस

28 अगस्त, 1988

संवदेनशीलता उस अवस्था का नाम है जब हम अपने साथ होने वाली घटना के प्रति सचेत रहते हैं। हमारे चारो तरफ होने वाली घटनाओं के प्रति सचेत होना संवेदनशीलता की आवश्यक शर्त नहीं है। हम सबसे पहले बाहरी दुनियाँ के प्रति संवेदनशील होते हैं क्योंकि स्वाभाविक रूप से हम उसी चीज के प्रति संवेदनशील होते हैं, जो साधारणतः हमारे सम्पर्क में आती है। संवेदनशीलता की वजह से हमें और अधिक स्पष्टता से सुनायी देता है। यहाँ तक कि चम्मच भी गिर जाये तो ध्यान भंग हो जाता है। लेकिन जब ध्यान भीतर से लगता है तो संवेदनशीलता हमारे पक्ष में कार्य करना शुरू कर देती है। जब हम अपने अन्तर्मन के प्रति अधिक संवेदनशील हो जाते हैं तो चाहे जितना भी शोर हो, हमें उससे कोई परेशानी नहीं होती। इस प्रकार संवेदनशीलता बहुत अच्छी बात है, लेकिन यदि हम बाहरी दुनिया के प्रति आसक्त रहें तो यह दुखदायी भी है।

मैं संवेदनशीलता के बारे में कुछ और बातें बताना चाहता हूँ जो आपको किताबों में नहीं मिलेगी, ये मेरा निजी अनुभव है। जब मैंने ध्यान शुरू किया मैं कई चीजों से बहुत परेशान हो जाया करता था। जैसा कि मैं कह रहा था, यदि चम्मच भी धरती पर गिर जाती तो ऐसा लगता मानों कहीं विस्फोट हुआ हो। जब हम परेशान होते हैं तो चिड़चिड़े हो जाते हैं ओर स्वाभाविक रूप से हमारा ध्यान भंग हो जाता है। मैं उठकर दूर चला जाता था। इस तरह साधना नहीं होती। मैं जानता हूँ कि महिलाओं को इस चीज की अच्छी जानकारी है कि जब कभी पति बहुत गुस्से में होता है तो वह खाना छोड़ कर चला जाता है। भारत में यह आम बात है। वे एकदम खड़े होते हैं, और चले जाते हैं। खाना तो हम बाद में भी खा सकते हैं। लेकिन ध्यान एक बार भंग हो जाये तो फिर भंग हो ही जाता है।

मुझे इस पर काबू पाने का रास्ता खोजना पड़ा। मैंने बाबूजी से पूछा, "मैं क्या करूँ?" उन्होंने कहा, "इन सब चीजों की ओर ध्यान मत दो।" लेकिन समस्या यह थी कि एक ओर तो हम अधिक संवेदनशील होते जाते हैं, फिर कुछ चीजों की हमें अवहेलना करनी पड़ती है। यह कैसे सम्भव है? हमें अपने भीतर के प्रति अधिक सचेत होना पड़ता है, तभी ध्यान भीतर टिक पाता है। लोग कहते हैं, "यह कैसे

सम्भव है?" इसके लिए रुचि लेनी पड़ती है। जैसे हम जिस चीज को देखना चाहते हैं, तो उसे दूरबीन के जरिये देखते हैं। मान लीजिए पूरा बाहरी ब्रह्माण्ड हमारे लिये उपलब्ध है, फिर हम जो चाहते हैं, जो देखना चाहते हैं अथवा जो सुनना चाहते हैं, वैसा नहीं कर सकते। बाबूजी ने कहा, "यह सम्भव है। यहाँ किसी चीज को चुनने या चयन करने की जरूरत नहीं पड़ती। वह तो अकेला ही है। तुम अपना ध्यान भीतर क्यों नहीं लगा सकते?"

इस प्रकार यह कठिन नहीं है। केवल आंतरिक जीवन में रुचि लेने की जरूरत है। जब मैं अपना ध्यान भीतर लगाने में सफल हुआ तो मैंने एक बहुत महत्वपूर्ण परिवर्तन पाया। संवेदनशीलता अधिक तेजी से विकसित हुई जैसे-जैसे संवेदनशीलता बढ़ती गई, वैसे-वैसे आंतरिक जीवन के प्रति आसक्ति बढ़ती गयी और इस प्रकार अन्तर्मन अधिक परिपूर्ण बनता गया। तब मैंने तीसरी अवस्था देखी जो बहुत ही रुचिकर हैं। चूँकि सहजमार्ग में हठयोग की भाँति पूर्ण समाधि नहीं होती, इसीलिये हम बाहर घटित हो रही घटनाओं के प्रति संयत रहते है। हमें ऐसा होना भी चाहिये। यही सहज समाधि की परिभाषा है। लेकिन महत्वपूर्ण बात यह है कि बाहर के प्रति सचेत रहने के बावजूद मैं अंदर के प्रति अधिक संवेदनशील था। ऐसे में जहाँ मुझे बाहर से कोई आवाज सुनायी पड़ती, तो उससे मुझे कोई परेशानी नहीं होती थी। ऐसा लगता था कि मेरा ध्यान भीतर की ओर लगने लगा था।

ध्यान रहे कि जब आप किसी जहाज पर यात्रा करते हैं, तो बाहर दिखने वाली हर चीज आपको अपना रास्ता ठीक रखने में मदद करती है। मान लीजिये आप किसी जहाज पर यात्रा कर रहे हैं और कप्तान का ध्यान किसी दूसरे जहाज की ओर आकर्षित हो जाये और वह अपना रास्ता बदल ले। आप उस कप्तान के बारे में अधिक विचार नहीं करते बल्कि उसके विपरीत जो कुछ बाहर दिखायी दे, उसकी सहायता से कप्तान को अधिक सावधानी से अपना रास्ता निर्धारित करने में मदद करते हैं। प्राचीन समय में जब राडार आदि नहीं होते थे तो लोग सूरज को देखकर अक्षांतर रेखाओं का हिसाब लगाते थे। समय के साथ जहाज पर घड़ी लगायी जाने लगी। फिर देशांतर रेखाओं का पता चला। इन दोनों से नाविकों को अपनी सही-सही स्थिति ज्ञात करने में मदद मिलती है।

इसी प्रकार जब हम अपने अन्तर्मन की गहराइयों में उतरते चले जाते हैं, तो ये सब बाधायें हमें अपने भीतर अधिक गहराई में जाने में मददगार बन जाती हैं। इसके बाद अन्तिम अवस्था आयी। उसे अन्तिम कहना शायद ठीक नहीं होगा क्योंकि अन्तिम अवस्था कभी नहीं आती। मुझे लगा इन बाधाओं की वजह से

आश्चर्य का भाव पैदा होता है। इसी के साथ हम बाहरी दुनिया को आश्चर्य भाव से देखते हैं। कोई जिज्ञासा नहीं रहती कोई आसक्ति नहीं होती और न ही मौज-मस्ती, बस आश्चर्य भाव रहता है। मेरे मालिक ने कहा कि जब हर चीज हमारे भीतर आश्चर्य-भाव पैदा करने लगे तो यह दिव्यता का सृजन है। मनुष्य तो उस सृजन का साधन मात्र है।

इस प्रकार बाधा खड़ी करने और नाराज होने के बजाय अब हम हर चीज को आश्चर्य-भाव से देखते हैं। यही अबोधता की मौलिक स्थिति मानी गयी है। इसे अबोधता की मौलिक स्थिति क्यों माना जाता है? हर चीज से आश्चर्य भाव प्रकट होता है। न कोई बाधा, न कोई संताप, न लालच, न कामुकता बल्कि हर चीज आश्चर्यजनक प्रतीत होती है। कहा जाता हैं कि यह वह स्थिति है, जब भीतर का भगवान अपने सृजन को निहारता है और उस पर आश्चर्य प्रकट करता है क्या इतनी सुंदर चीजें मैंने बनायी हैं?

जब किसी दम्पत्ति के यहाँ बच्चे का जन्म होता है तो खासकर बाप के मन में आश्चर्य भाव पैदा होता है। मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि भले ही वह व्यक्ति निर्दयी हो, निकम्मा हो, खूबसूरत हो लेकिन वह कहता है, "मेरा बच्चा।" स्त्री के लिए इतने आश्चर्य की कोई बात नहीं क्योंकि वह उसी का हिस्सा है। स्त्री के लिए बच्चा पैदा करना बहुत स्वाभाविक बात है। वह अपने सृजन से प्रेम करती है, पुरुष अपने सृजन पर आश्चर्य प्रकट करता है। शायद इसीलिए भगवान को हमेशा पुल्लिंग माना गया है। हाँ क्योंकि उसे अपने सृजन पर आश्चर्य होता हैं। गीता में, जो हमारा बहुत प्रसिद्ध ग्रंथ है कहा गया है कि जिस व्यक्ति को आध्यात्मिक सम्पूर्णता नसीब होती है, उसमें केवल आश्चर्य भाव शेष रहता है।

जब हम संवेदनशील बन जाते हैं तो हमें इन्हीं बातों को याद रखना चाहिये। मैंने पाया हैं कि यूरोप में कई लोग संवेदनशीलता से भयभीत रहते है। हमें भयभीत तो तब होना चाहिये जब किसी गलत चीज की तरफ लगे हों। पिछले साल जब मैं चैट्यू डी ओ एक्स में था, या उससे पिछले साल जब न्यूजर्सी अमेरिका में था, तब मुझे बताया गया था कि उनके यहाँ अग्नि चेतावनी प्रणालियाँ हैं, जो धुयें के आधार पर कार्य करती हैं प्रायः यह जब बहुत संवेदनशील हो जाती हैं तो इन्हें बंद करना पड़ता है। जब लोग धूम्रपान करते हैं तो ये अपना काम करना शुरू कर देती हैं। वास्तव में यह बहुत हास्यास्पद है कि हम संवेदनशील होते हुए भी अपनी संवेदनशीलता को बंद करके रखते हैं ताकि किसी चीज का पता न लगे। यदि अग्नि चेतावनी प्रणालियों को पुनः चालू करना भूल जायें तो आग लगने की स्थिति

में हम उससे बेखबर रह जायेंगे।

इस प्रकार संवेदनशीलता को कभी बंद नहीं किया जाना चाहिये। इसके विपरीत, हमें इसमें अधिक से अधिक परिशोधन करने की जरूरत है ताकि इसे सम्पूर्ण बनाया जा सके। आध्यात्मिक यात्रा में संवेदनशीलता को अन्तर्मुखी बनाना चाहिये। प्राचीन समय में ध्रुव तारे को समुद्री यात्रा में बहुत महत्वपूर्ण माना जाता था। यही एक तारा है जिसकी आकाश में स्थित निर्धारित है और जब रात में सूरज नहीं होता तो इसको देखकर उत्तर दिशा ज्ञात की जाती थी।

इस प्रकार संवेदनशीलता को एक स्थान पर केन्द्रित रखने के लिये किसी वस्तु की जरूरत पड़ती है। तभी हमारा रास्ता स्थायी रूप से तय हो सकेगा। क्षणिक रूप से हमारा ध्यान आकर्षित करने वाली बाहरी जगत की अन्य चीजें हमें अपना रास्ता ठीक रखने में मदद करती हैं ताकि हम बहुत शीघ्र अपनी मंजिल पर पहुँच सकें।

धन्यवाद।

11
ओजराँ आश्रम का उद्‌घाटन

ओजराँ, फ्रांस

10 सितम्बर, 1988

मुझ से अपेक्षा की गई है कि मैं कम बोलूँ। ऐसी घोषणा हो चुकी है, इसीलिए मैं कुछ कहने का प्रयास करूँगा। सबसे पहले मैं यह कहना चाहूँगा कि आज हम सबके लिए खासकर यूरोपवासियों के लिए बहुत खुशी का दिन है क्योंकि आप सब ने मालिक को खुश किया है और उन्हें यूरोपवासियों की अलग ढंग से सेवा करने का मौका दिया है। आपके प्रेम तथा श्रद्धा के बिना यह सम्भव नहीं हो पाता। मेरे मालिक कहा करते थे कि आश्रम ईंट गारे से नहीं बनते बल्कि दिलों के रक्त से बनते हैं।

आश्रम एक बहुत पवित्र इमारत होती है। हर दिल का खून बहता है तब कहीं जाकर ऐसी इमारत बना करती है। मेरे मालिक कहा करते थे, "पैसा तो हर कोई ले-दे सकता है।" इस दुनिया में कई बड़ी-बड़ी संस्थायें हैं जो मिलियन ही नहीं बल्कि शायद बिलियन डालर दे सकती हैं। लेकिन इस पैसे का वे क्या करें? क्या मानव के लिए इनका बहुत अधिक महत्व है? क्या वे शिक्षा तथा स्वास्थ्य से बढ़कर कोई चीज दे सकते हैं? क्या शिक्षा और स्वास्थ्य इतने महत्वपूर्ण हैं? किसी संत से तो अपेक्षा नहीं की जाती कि वह शिक्षित और तंदुरुस्त हो।

संतो का जीवन ज्ञान से भरपूर होता है। जीवन में तंदुरुस्ती होनी चाहिये, यह तो मात्र मानवीय खासकर यूरोपीय धारणा है क्योंकि तंदुरुस्ती की यह धारणा पूरब में इतनी अधिक नहीं है पूरब में जो चीज महत्वपूर्ण है, वह है विवेक तथा आध्यात्मिक विकास। अतः हमारे यहाँ प्राचीन परम्परा है कि गुरु आश्रम में रहता है आश्रम वह स्थान है, जहाँ आध्यात्मिक शिक्षा दी जाती है तथा आध्यात्मिक अभ्यास कराया जाता है, कई शिष्य सौहार्दपूर्ण ढंग से एक साथ रहते हैं और जहाँ आश्रम के लिए आवश्यक हर चीज सामूहिक प्रयास से पैदा की जाती है। प्रायः आश्रम भारत के गहरे जंगलों में और दूर दूर स्थित थे। ये आश्रम उन्हीं लोगों के लिये थे, जो उनके द्वार में प्रवेश करने और पुनः बाहर नहीं आने के लिए तत्पर थे। ऐसे व्यक्ति ही इन आश्रमों में प्रवेश कर पाते थे। यह परम्परा होती थी कि जो शिष्य जवानी में वहाँ प्रवेश करता था जब वापस आता तो ऋषि बनकर आता था।

इस प्रकार आश्रम का यही कार्य था। उनके यहाँ कोई ऐशोआराम नहीं था।

आश्रम में केवल इमारतें होती थीं। अधिकतर आश्रमों में बाँस ओर लकड़ी के ढाँचे बने होते थे जिन पर घासफूस की छत होती थी जो मौसम से न्यूनतम सुरक्षा प्रदान कर पाती थी। मालिक की दया से हमारे यहाँ बेहतरीन इमारतें हैं और उन आश्रमों की तुलना में हमारे आज के आश्रम अधिक आलीशान हैं। मुझे याद है जब हमारा शाहजहाँपुर आश्रम बना था, तब उस स्थान की भव्यता को देखकर बाबूजी लगभग आश्चर्य चकित रह गये थे। आपमें में से कई लोगों ने यह आश्रम देखा है। वहाँ केवल बुनियादी सुविधायें हैं। मिट्टी के फर्श की बजाय सीमेंट के फर्श हैं मिट्टी की दीवारों के बजाय ईंटों की दीवारें हैं और पक्की छतें हैं। शुरू में सर्दियों में वहाँ ठंडा पानी होता था, जिसका हम लोग मजा लेते थे। बाद में हमने गर्म पानी का ब्वायलर लगवाया, तो उससे वातावरण खराब हो जाता था। कल ही कोई मुझे बता रहा था कि जब ब्वायलर लगाया जिसके नीचे लकड़ी जलायी जाती थी, तब मालिक हर व्यक्ति को उसे दिखाने जाते थे और कहते थे,"यह आधुनिक प्रोद्यौगिकी है जो मैंने यहाँ लगवायी है।"इस प्रकार आश्रम के बारे में यह उनकी संकल्पना थी।

हमें बैठकर सोचना चाहिये, पुराने समय के असली आश्रम कैसे होते होंगे? हमें अपने मालिक की यह सलाह याद रखनी चाहिये कि आराम न्यूनतम स्तर का होना चाहिये, बिस्तर ज्यादा आरामदायक न हो, नल में पानी ठंडा रहे तो ज्यादा अच्छा है खाना सादा हो तो हमारा मन आध्यात्मिक जीवन में कायम रहता है अन्यथा हम स्वादिष्ट नाश्ते और दोपहर के भोजन में पीजा और बढ़िया सलाद की उम्मीद रखते हैं। बढ़िया खाने में कोई हर्ज नहीं है लेकिन हमें इसकी उम्मीद नहीं रखनी चाहिये।

बाबूजी ने अभ्यासियों को सलाह दी कि सप्ताह में कम से कम एक बार फर्श पर सोयें गद्दे हटाकर सोयें तथा कभी-कभी खुले में सोयें। उन्होंने मुझे बताया कि एक बार उन्हें जरूरी काम से फतेहगढ़ लालाजी के पास जाना पड़ा। शायद दिसम्बर का अंत अथवा पहली या दूसरी जनवरी की बात होगी। कड़ाके की ठंड थी। वह रात को साढ़े नौ बजे लालाजी के घर पहुँचे। दरवाजा बंद पाकर उन्होंने दस्तक भी नहीं दी, क्योंकि वह अपने मालिक को तंग नहीं करना चाहते थे। वह गेट के बाहर दहलीज पर सो गये। उनके पास ओढ़ने के लिये भी कुछ नहीं था।

आध्यात्मिकता आसानी से मिलने वाली चीज नहीं है। आजकल यह सोचना फैशन बन गया है कि हम बहुत कर्तव्यनिष्ठ हैं हम आध्यात्मिकता को लेकर बहुत गंभीर हैं। जो लोग अपने रोजगार से तीन घंटे निकालकर मालिक से मिलने आते हैं उनकी यह भावना होती है कि वे अपनी उपस्थिति से मालिक पर एहसान कर

रहे हैं। एक तरह से यह सच है क्योंकि यदि वे नहीं आते तो किसी तरह मालिक का काम अधूरा रह जाता। इसीलिए मालिक तो हमेशा ही शिष्यों के आभारी रहते हैं, भले ही वे दस मिनट के लिए आयें इससे उन्हें शिष्यों के लिए कुछ करने का मौका जो मिलता है।

यह गुरु-शिष्य सम्बन्धों की प्राचीन परम्परा है। इस परम्परागत रिश्ते का पोषण आश्रम में ही हुआ था। कई प्राचीन संतों ने आश्रम की आवधारणा का स्वागत किया है क्योंकि इससे नये शिष्यों को अपने गुरु के सानिध्य में रहने, उन की सेवा करने, विनम्रता और प्रेम का माहौल बनाने और गुरु से सच्चा ज्ञान पाने का अवसर मिलता है। साथ ही उन्हें यह शिक्षा मिलती है कि अपना समय किस प्रकार व्यतीत करें ताकि आगामी जीवन दिव्यता से भरपूर हो, जिसे हम भक्ति ओर आत्मसाक्षात्कार के नाम से पुकारते हैं।

मुझे याद है कि बाबूजी ने मुझे बताया था कि आश्रम को "अमरता का प्रवेश द्वार" कहा जाता था। मैं उम्मीद करता हूँ कि यह आश्रम भारत के बारह द्वारों में एक द्वार साबित होगा तथा शीघ्र ही ऐसे कई द्वार और बनेंगे ताकि यूरोप और पाश्चात्य जगत के लोगों के लिए सहज रूप से प्राचीन लोगों की भाँति शरीर व मन को यातनाएं दिये बिना आगामी जीवन में प्रवेश करना सम्भव हो सकेगा।

हमें मालिक का आभारी होना चाहिये कि उन्होंने हमें आज सरल मार्ग मुहैया कराया, जिसमें अधिक प्रयास, अधिक ध्यान, अधिक सफाई के बिना हम यशस्वी पद प्राप्त कर सकते हैं। मैं उम्मीद करता हूँ कि आप सब आवश्यक प्रयास करेंगे और मालिक की सहायता करेंगे ताकि वह हमारी सहायता कर सकें।

धन्यवाद।

12

हृदय पथ

पेरिस, फ्रांस

3 अक्टूबर, 1988

नमस्कार,

आमतौर पर यह तय करना बहुत मुश्किल होता है कि शुरुआत कहाँ से करें। विषय विस्तृत है और प्राचीन तथा परम्परागत साहित्य की भरमार है। इसकी कई धारायें हैं। जैसे नदी जब शुरू होती है तो उसमें कई धारायें आकर मिलती हैं और जब उसका अंत होता है, तब भी वह पुनः कई धाराओं में विभाजित हो जाती है। मेरी यह छोटी सी वार्ता भी विचारों की कई धाराओं में विभाजित होती हुई अंत में एक केन्द्रीय विचार पर आकर मिलती है। मेरा यह प्रयास रहेगा कि दिल की इस विचारधारा को आप तक पहुँचा सकूँ।

जब मैं 1964 में अपने मालिक श्री रामचंद्र जी महाराज के पास आया था, तब तक मैंने भारतीय दर्शन-शास्त्र पर अंग्रेजी और जर्मन लेखकों की कृतियों का अध्ययन कर लिया था। आध्यात्मिक विकास की अभिलाषा होने के कारण मैंने कुछ हठयोग आसन और प्राणायाम आदि का स्वयं अभ्यास किया था। इस प्रकार अधकचरा ज्ञान और थोड़ा सा अभ्यास लेकर मैं अपने मालिक से मिलने आया। मेरी नींव मजबूत नहीं थी। पहली कठिनाई तो यह थी कि मुझे चीजों को अपने पूर्व ज्ञान के आधार पर समझना था। हमारी प्रगति का यही तरीका होता है। इसे न सही कहा जा सकता है और न गलत। यदि नींव कमजोर हो तो उस पर बनने वाला ढाँचा भी बहुत अच्छा नहीं हुआ करता है। यही समस्या मुझे अपने मालिक के पास लाई। मुझे उम्मीद थी कि उनकी शिक्षा से पहले से अर्जित ज्ञान अब अधिक सुदृढ होगा। पहले की नींव को उखाड़ना हमेशा कठिन दुर्गम ओर खर्चीला कार्य होता है चाहे वह ज्ञान की नींव हो अथवा भवन की नींव। सबसे बड़ी समस्या अहम को चोट लगने की होती है। मेरे लिये यह स्वीकार करना सहज नहीं था कि मैंने जो कुछ पहले सीखा था अब वह व्यर्थ है क्योंकि इसके पीछे कई अन्य विचार पद्धतियों का समर्थन था। साथ ही यह भावना भी थी कि इस ज्ञान अर्जन प्रक्रिया में मेरा इतना समय तथा प्रयास जाया हुआ है। यह उतना ही कठिन था, जितना कि कोई नया कारोबार शुरू करने से पूर्व पहले वाले कारोबार को बंद करना पड़े और पहले लगाई गई पूँजी को बट्टे खाते में डालना पड़े।

मेरे मालिक बहुत प्यारे और दयालु इंसान थे, लेकिन साथ ही वह एक सर्जन की भाँति निष्ठुर भी थे। उनकी निष्ठुरता मेरी भलाई के लिये थी। ऐसा सर्जन किस काम का जिसे हमारा आपरेशन करना पड़े तो भावुक हो जाये। उसे तो दयालु और विनम्र होना चाहिये ताकि जरूरत पड़ने पर हमें बेहोश करके वह शल्यचिकित्सा कर सके। मैंने अपने मालिक से पहला सबक यह सीखा कि मुझे हर चीज को भुलाना पड़ेगा। अतः मैंने जल्दी से एक आत्म विश्लेषण किया कि मुझे पहले किस चीज को भुलाना होगा।

हमने शुरुआत इस समझ के साथ की कि जीवन में हर चीज का विकास होता है। विकास ऐसी ताकत है जिसे रोका नहीं जा सकता। यह ऐसी गति है, जिसे रोकना संभव नहीं है, चाहें व्यक्ति हो या पूरी जाति या पूरी जीवन-पद्धति। मेरे मालिक ने कहा,"जीव के कई जन्म और कई जीवन स्तर होते हैं जिनमें विकास तो होता है लेकिन असली विकास नहीं हो पाता। कारोबार में हमारे यहाँ क्षैतिज ओर लम्बवत विकास की अवधारणा है। किसी चीज के बारे में अधिकाधिक जानकारी हासिल करना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि हमें अधिकाधिक चीजों के बारे में अधिकाधिक जानकारी हासिल करनी होगी। तभी हम इस अन्तिम निष्कर्ष पर पहुँच पायेंगे कि हर चीज को त्यागकर उस बीज विचार तक पहुँचना सम्भव है जहाँ से हर चीज का विकास होता हैं। मेरे मालिक की शिक्षा थी कि उस बीज को पहचानो।

घनी शाखाओं, टहनियों और पत्तों वाला पेड़ बहुत अच्छा व खूबसूरत नजर आता है ओर फल भी देता है। लेकिन हमें एक ऐसे नये पेड़ की तलाश है जिसकी शुरुआत बीज से होती है अथवा दार्शनिक भाषा में कहें तो हमें मूल विचार (Seed thought) की तलाश है। यह मालिक का विवेक और शिक्षा थी कि जब तक हम हर चीज का त्याग नहीं करेंगे तब तक हम बीज तक नहीं पहुँच पायेंगे। बीज प्रायः बहुत छोटा सा होता हैं और उसका ज्यादा महत्व नहीं होता।

हमें गूढ विचारों और ज्ञान को छोड़ना पड़ेगा। उन्होंने मुझे जो दूसरा विचार दिया वह एक चाबी को लेकर था जो पूरा महल खोल सकती हैं। उस चाबी के बिना महल के दरवाजे हमारे लिए बंद रहते हैं। यह चाबी है समस्याओं के हल की। इसे हम बीज अथवा चाबी कहते हैं। मेरे लिए उनकी शिक्षा की भूमिका यह थी कि तुमने जो कुछ सीखा है उसे अब मिटाना पड़ेगा। इसका कारण यह है कि इसका कोई लाभ नही है या यह गलत है बल्कि इसका अर्थ यह है कि जो कुछ सीखा है वह उस उददे्श्य के लिये लाभप्रद नहीं है जिसको लेकर मैं उनके पास गया था। मेरा

उद्देश्य उच्चतम सम्भव स्तर तक आध्यात्मिक विकास करना था।

यहीं से मेरी शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ हुई। मुझे स्वयं बहुत महत्वपूर्ण परीक्षण तथा विश्लेषण करना पड़ा क्योंकि मेरे मालिक चर्चा करने में विश्वास नहीं करते थे। वह तो बीज विचार देने में विश्वास रखते थें ताकि हम उसे दिल में धारण करके उसका पोषण कर सकें। मुझे यह अवधारणा अजीब सी लगी कि विचार को दिल में स्वीकार करके उसका विकास करो। आमतौर पर हम ज्ञान को बुद्धि के साथ जोड़कर देखते हैं। लेकिन मेरे मालिक ने एक मधुर मुस्कान के साथ कहा,"यह बात तो आम आदमी समझता भी है कि बुद्धि का स्थान मस्तिष्क में है, लेकिन असली ज्ञान मस्तिष्क से नहीं बल्कि दिल से आता है।

गणित जैसे गूढ़ विषय के बारे में मालिक की यह शिक्षा थी कि यदि इनमें अन्तर्ज्ञान की चिंगारी न होती तो इन विज्ञानों का विकास नहीं हुआ होता। अन्तर्ज्ञान बौद्धिक प्रक्रियाओं से नहीं आता बल्कि यह सचेतन विचार में हमारी वास्तविक भागीदारी के बिना भीतर स्वतः विकसित होता है। उन्होंने कहा, यदि दिल किसी समस्या-समाधान में रुचि ले और हम दिल से परिस्थितयों का विश्लेषण करने का प्रयास करें तो समझना अधिक आसान हो जाता है। तब मस्तिष्क अथवा बौद्धिक प्रक्रिया इतनी निर्मल हो जाती है कि वह स्वतः ही प्रतिक्रिया करने लगती है।

मेरे मालिक की यह शिक्षा थी, "हमें मस्तिष्क की जरूरत पड़ती है। हमें बौद्धिक प्रक्रियाओं की भी जरूरत पड़ती है लेकिन उन्हें दिल के जरिये और दिल द्वारा नियमित करना सीखो।"

हम मस्तिष्क से जानते हैं लेकिन दिल से समझते है। यह पहला महत्वपूर्ण सबक था जो उन्होंने मुझे पढ़ाया था। हाँ, शुरू में इसे स्वीकार करना मेरे लिये कठिन जरूर था लेकिन मैंने सौभाग्य से मनोविज्ञान का थोड़ा अध्ययन कर रखा था। मेरे विचार में मनोविज्ञान से मेरा परिचय किसी दोस्त ने करवांया था और उसने मुझे जंग और फ्राइड का थोड़ा बहुत अध्ययन करने का सुझाव दिया था। स्कूल में मैंने जीव विज्ञान का थोड़ा बहुत अध्ययन किया था। मुझे इसे स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं थी कि हम आँखों से देखते हैं लेकिन जिसकी वजह से दिखाई पड़ता हैं वह चीज कुछ और है। मेरे साथ यह स्थिति थी। मैं यह नहीं कह रहा कि सब के साथ ऐसा होता है।

इसी प्रकार मान लीजिये कोई व्यक्ति मुस्कुरा रहा है। हम अपने मिजाज अथवा उस व्यक्ति के प्रति अपनी प्रतिक्रिया के आधार पर उसकी मुस्कराहट की अलग ढंग से व्याख्या करते हैं। अतः हम जो कुछ देखते हैं जो कुछ उसके बारे में समझते

हैं, इन दोनों बातों के बीच प्रायः तथा साधारणतः अन्तर होता है। मेरे लिए यह समझना कठिन नहीं था कि बीच की अवस्था प्राप्त करने का काम दिल का है। अंत में मुझे यह स्वीकार करना पड़ा कि दिल ज्ञान का महत्वपूर्ण माध्यम है और यही मानवीय सम्बन्धों का आधार भी है।

मेरे मालिक ने अपने आस-पास कुछ लोग दिखाते हुए कहा "ध्यान से देखना जब मैं कोई बात कहूँ तो यहाँ कितनी प्रतिक्रयाएं देखने को मिलेंगी।" मैंने अपने जीवन में अनुभव किया है और ईसाई परम्परा में भी कहते सुना है आँखे तो आपकी हैं लेकिन देखता कोई और है। हम समझ ही नहीं पाते कि एक ही बात की अनेक प्रतिक्रियाएं क्यों होती हैं। यह बहुत साधारण बात है। हम जब कोई उपहार लाते हैं तो उम्मीद से विपरीत भिन्न स्थिति पैदा हो जाती है। हम एक बात कहते हैं उसका दस लोग दस तरीकों से अर्थ लगाते हैं। जो लोग कोई बात स्वीकार करने का मन बनाकर आते हैं उन्हें कुछ भी कहो सहज स्वीकार कर सकते हैं, लेकिन जो लोग स्वीकार नहीं करना चाहते वे कभी स्वीकार नहीं करेंगे।

मैंने अपने मालिक से यह बात सीखी कि भले ही कोई चीज अच्छी और सही क्यों न हो यह आवश्यक नहीं है कि हर व्यक्ति उसे स्वीकार कर ले। उन्होंने बीज और मिट्टी का उदाहरण देकर कहा कि जमीन ठीक नहीं हो तो बढ़िया से बढ़िया बीज भी अंकुरित नहीं होता। बाइबल में भी इसी तरह का एक उदाहरण है कि एक व्यक्ति रोज बीजों को पानी देता है और यह देखकर निराश हो जाता है कि केवल कुछ ही बीज अंकुरित हुये हैं। आज हमारे यहाँ मृदा रसायन-शास्त्र, मृदा-भौतिकी का पूरा विज्ञान है और शायद कुछ समय बाद मृदा-शरीर-रचना-विज्ञान भी आ जायेगा। यह तो हुई कृषि की बात। पशुपालन में भी शंकर प्रजाति का पूरा विज्ञान है। कहने का तात्पर्य यह है कि बीज और मिट्टी दोनों का मेल ठीक हो तभी सृजन होता है। इसीलिए मेरे मालिक ने कहा, "मैं बीज विचार दूँ और जिस व्यक्ति में इसका बीजारोपण करूँ, यदि वह इसे स्वीकार करने के लिये तैयार न हो तो इससे उसका कोई भला नहीं होगा।"

उनकी शिक्षा की आगामी अवस्था यह थी कि मृदा दिल है मस्तिष्क नहीं। यदि हम किसी चीज को बुद्धि के बल पर सही मान भी लें तो दिल उसे स्वीकार नहीं करता। उन्होंने कहा "बुद्धि को अपील करना व्यर्थ है। शिक्षा के क्षेत्र में भी हमेशा दिल को अपील की जानी चाहिये।" इसे सहयोग कहा जाता है। हम सबको इसकी जानकारी है। हम अलग-अलग क्षेत्रों में काम करते है, भले ही आप प्रबन्धक हैं अथवा किसी फर्म के मालिक या फैक्टरी कामगार, हम सबको सहयोग की

आवश्यकता पड़ती है। मालिक को प्रबन्धकों को सहयोग चाहिये। प्रबन्धकों को कामगारों और स्टाफ का सहयोग चाहिये। यह सिलसिला यहीं नही रुकता। आमतौर पर लोग सोचते हैं कि यह ऊपर से नीचे की ओर आता है। लेकिन आपको याद होगा कि मैंने एक कम्पनी में छोटे से लेकर उच्चतम पद पर कार्य किया है। मुझे कभी कभी लगता था कि यदि अच्छे कारीगरों को उनके सुपरवाइजरों का सहयोग नहीं मिलता तो वे असफल हो जाते हैं। अतः सहयोग एकतरफा रास्ता नहीं है यह सम्बन्धित व्यक्तियों के बीच एक पारस्परिक क्रिया हैं। विशेष तौर पर शिक्षा के क्षेत्र में यदि अध्यापक विद्यार्थियों के साथ घनिष्ठता कायम न कर पाये तो पूरी प्रक्रिया बेमानी हो जाती है।

इसीलिये हमें परस्पर समझ-बूझ के आधार पर एक ऐसी पद्धति विकसित करनी है जिसमें हर व्यक्ति का दिल से तालमेल हो। मेरे मालिक कहा करते थे कि यह आलोचना नहीं है। उनका निष्कर्ष था कि साधारण क्लिनिकल मनोवैज्ञानिक तकनीक इसीलिए बहुत अधिक प्रभावी नहीं होती क्योंकि वे समस्या की जड़ तक नहीं पहुँच पाती। यही बात परामर्श पर लागू होती है। यदि परामर्श ऊपरी स्तर पर दिया जाये, तो असफल रहता है। मानवीय रिश्तों में परामर्श देने के काम से जुड़े हर व्यक्ति को इस तथ्य की जानकारी है कि जब तक लोगों के दिल को नहीं छुआ जाता तब तक उन्हें कामयाबी नहीं मिलती। यही मेरे जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण सबक था। यही मेरे आध्यात्मिक जीवन में पदार्पण की पृष्ठभूमि भी थी। यदि मुझे यह ज्ञान नहीं होता तो मैं अपने मालिक के साथ आगे नही बढ़ पाता। बौद्धिक ज्ञान की पद्धतियों के साथ सम्मोहन सदैव जुड़ा रहता है। इसीलिए हमारे पास एक सीधा सरल रास्ता है जिसमें कहा गया है **दिल से सुनो , दिल से देखो दिल से बोलो।"** इसे समझना थोड़ा सा कठिन है क्योंकि मनुष्य में साधारण चीज की तुलना में जटिल चीज को ज्यादा महत्व देने की प्रवृत्ति होती है। यही कारण है कि शायद यह विकास की समानान्तर धारा है कि विकास का मार्ग सरलता से जटिलता की ओर चलता है। लेकिन हम इससे भी कोई सबक नहीं लेते। एक स्तर पर जब जटिलता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है तो पद्धति धराशायी हो जाती है।

जटिलता किसी पद्धति के लिये लाभकारी हो सकती है, लेकिन जब हम जटिलता के सम्मोहन से वशीभूत होकर उसे बढ़ाते चले जाते हैं, तो वह पद्धति हमारे नियन्त्रण से बाहर होती चली जाती है। उदाहरण के लिये मैंने कल ही सुना है कि म्यूनिक में एक ऐसा नया हवाई अड्डा बन रहा है जिसका मकसद फ्रैंकफर्ट जाने वाले यातायात को मोड़ना है। लेकिन उनके सामने पहले से ही एक समस्या

आ रही है। उन्होंने जो आधुनिक उपकरण लगाये थे वे अब पुराने पड़ चुके हैं। अब उन्हें यह निर्णय लेना है कि इनको हटाकर नये उपकरण लगाये जायें जो आसान निर्णय नहीं हैं क्योंकि जब तक आज के नये उपकरण आयेंगे, तब तक बाजार में और नये उपकरण भी आ जायेंगे। इस प्रकार ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जायेगी कि पुराने उपकरणों को हटाकर नये उपकरण चालू करेंगे, उससे पहले ही और आधुनिक उपकरण आ जायेंगे।

मैंने एक बार भावी समाज में प्रौद्योगिकी विकास के बारे में एक कहानी पढ़ी थी जिसमें एक व्यक्ति टेलीफोन लगाता है। उसे टेलीफोन कम्पनी से पहला संदेश यही मिलता है कि उनका एक नया मॉडल बाजार में आ गया है। अभी हाल ही में लगाये अपने टेलीविजन पर वह बतौर पहला कार्यक्रम आगामी मॉडल का एक विज्ञापन देखता है जो उस सैट के शुरू होने तक बाजार में आ चुका है।

यह हास्यास्पद बात नहीं है क्योंकि आज हमारे प्रौद्योगिक जीवन में हम इस तरह की समस्याओं का सामना कर रहे हैं। जैसा कि ग्रीक और हिन्दू मिथक हैं, हम तीन कदम चढ़ते हैं और चार कदम गिरते हैं, फिर तीन कदम चढ़ते हैं चार कदम गिरते हैं, फिर तीन कदम चढ़ते है फिर गिर जाते हैं। यही क्रम हमेशा चलता रहता है। यह एक सुझाव मात्र है कि जब प्रौद्योगिक विकास मानवीय जरूरतों से अधिक हो जाए और मनुष्य की बौद्धिक लालसा की तुष्टि करने लगे तो अधिक जटिलता को अधिक बुद्धिमानी समझने की भूल हो जाती है। तब हमारे सामने इस तरह की समस्या अवश्य पैदा होती है।

हम पुनः सरलता की जरूरत पर आते हैं। प्रौद्योगिकी मानव की सेवा के लिये है या मानव प्रौद्योगिकी की सेवा के लिये? मेरे मालिक ने कहा, "यदि आप दिल से समझें और बौद्धिक कार्य का उपयोग केवल यंत्र के रूप में करें, तो वह आपको कभी दगा नहीं दे सकता।" अन्यथा ऐसी स्थिति हो जायेगी जैसे कोई व्यक्ति एक बेकाबू घोड़े की सवारी कर रहा हो।

अतः अब हम यौगिक विकास के प्रश्न पर चर्चा करेंगे। योग में भी ज्ञान की ऐसी ही धारायें हैं। ज्ञान-योग का सम्बन्ध ज्ञान से है। कर्म योग का सम्बन्ध कार्य क्षेत्र से है। कई और योग है लेकिन इनमें से मुख्य है-कर्मयोग, ज्ञान योग, हठयोग, भक्तियोग।

जब हम भारतीय साहित्य का अध्ययन करते हैं तो यह जानकर आश्चर्य होता हैं कि कर्मयोग और ज्ञानयोग हमेशा लोगों के आकर्षण का केन्द्र रहे हैं। एक का सम्बन्ध कुछ करने तथा हासिल करने से है तो दूसरे का सम्बन्ध सीखने और

जानने से है। आमतौर पर भक्ति योग की विचारधारा को अच्छी तरह समझा नहीं गया था क्योंकि यह श्रद्धा का मार्ग है और श्रद्धा को भावना मान लिया गया था। कुछ मार्गो में भाव समाधि की स्थितियों का उल्लेख मिलता है जहाँ लोग नाचते हैं रोते हैं आँसू बहाते हैं। कुछ आधुनिक समाजों में इन चीजों को अच्छा नहीं माना जाता, इन्हें व्यर्थ दिखावा और बचकानी हरकत समझा जाता है। शायद उसी को हम भक्ति समझते हैं।

भक्ति मार्ग के बारे में मुझे भी कुछ इसी तरह की भ्रांति थी क्योंकि भारत में तथा कथित भक्ति योगी बहुतायात में पाये जाते हैं जो कुछ नहीं करते बल्कि बेकाबू हँसते-रोते रहते हैं। कई पढ़े लिखे लोग अपनी उपस्थिति में इन चीजों को पचा नहीं पाते थे, कि कोई व्यक्ति स्थिति से नियन्त्रण कैसे खो सकता है। एक योगी अपना नियन्त्रण कैसे खो सकता है? यह विरोधाभासी लगता है।

लेकिन मेरे मालिक ने मुझे समझाया कि वास्तव में भक्ति का असली अर्थ क्या है।यह दो धाराओं का सहयोग है प्रेम और गुरु अथवा भगवान के स्तर तक उत्थान की अभिलाषा है। यह श्रद्धा भाव है। इसलिए भक्ति में दिल का बहुत भारी योगदान है। मेरे मालिक ने कहा, "जब लोग योगियों की भाँति प्रेम को बुद्धि का जामा पहनाने की भूल करके वास्तव में प्रेम न होते हुए भी सोचते हैं कि वे प्रेम करते हैं, तभी ऐसी स्थिति सम्भव है।"

अब हमें यह समझने में दिक्कत आती है कि एक पुरुष या स्त्री प्रेम के बारे में कैसे सोच सकते हैं। लेकिन मैं यहाँ बड़ी विनम्रता से कहना चाहूँगा कि आधुनिक जीवन की यह विडम्बना है कि हर व्यक्ति प्रेम करना और प्रेम के बदले प्रेम पाना चाहता है लेकिन साधारणतः प्रेम किसी को नसीब नहीं होता। प्रेम मानसिक या भावनात्मक स्तर पर ही रहता है। यह दिल से बाहर प्रकट नहीं होता , दिल को प्रभावित नहीं करता है। दिल में अपना स्थान नहीं बना पाता। मेरे मालिक के अनुसार निरपेक्ष प्रेम की परिभाषा यह थी, **"प्रेमी को तो यह आभास भी नहीं रहना चाहिये कि वह प्रेम करता है।"** जब तक हमें यह आभास रहता है कि हम प्रेम करते हैं तो यह ज्ञान का विषय हैं भावनाओं का नहीं। उच्चतर स्तर पर प्रेम और प्रेमिका के बीच अस्मितता का विलोप हो जाना चाहिये। यदि ऐसा न हो, तो प्रेम बेमानी है।

आध्यात्मिकता के स्तर पर भी प्रेम का व्यक्तिकरण नहीं किया जा सकता। ऐसा नहीं कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति या व्यक्ति समूह से कहे कि मैं तुमसे प्रेम करता हूँ बल्कि वह व्यक्ति स्वयं प्रेम में तब्दील हो जाता है। ऐसा व्यक्ति साधारण अर्थ

में प्रेम नहीं करता बल्कि वह प्रेममय बन जाता है। मेरे मालिक ने कहा,"इसी अर्थ में प्रेम भगवान का स्वरूप है। "वह किसी व्यक्ति विशेष से प्रेम नहीं करता बल्कि वह (ईश्वर) स्वयं प्रेम है। यदि आपमें भगवान का सानिध्य पाने की योग्यता, तत्परता और लालसा हो, तो आपको आभास होगा कि भगवान वास्तव में प्रेम करता है।

इसी प्रकार भक्ति योग की पूरी अवधारणा ही बदल गयी थी। मुझे चिंतन का रहस्य समझ में आ गया। पाश्चात्य देशों में प्रायः हम से पूछा जाता है यदि भगवान ही प्रेम है तो इतना कष्ट, इतनी हिंसा, इतने अपराध, इतनी बीमारियाँ और इतनी मार काट क्यों है? मेरे मालिक का जवाब था, क्योंकि वहाँ के लोग भगवान के सानिध्य में नहीं हैं।"

जब हम भगवान के सानिध्य से दूर हटते चले जाते हैं तो उस प्रेम की अनुभूति असम्भव हो जाती है और हमें यह उदासी भरी फरियाद सुनने को मिलती है ओह भगवान मुझे प्रेम नहीं करता। यही हमारी भूल है। हम भगवान की मानव के रूप में कल्पना करते हैं जो प्रेम करता है और बदले में प्रेम पाता है। यह भूल करके हम अपना जीवन नरक बना लेते हैं। यह तो ऐसी बात हुई मानो कोई व्यक्ति शहद को मुँह नहीं लगाये और कहे यह मीठा नहीं है, शहद का अपना गुण है इसे चखने के लिए हमारी तत्परता चाहिये। यदि मैं ठीक हूँ, स्वस्थ हूँ, तभी मुझे शहद का असली स्वाद ज्ञात होगा। यदि मैं बीमार हूँ तो शहद होते हुए भी मुझे इसके स्वाद का पता नहीं लग पायेगा।

इसी प्रकार वर्णांधता की स्थिति है। जो चीज हर व्यक्ति के लिये लाल है वह उसे हरी दिखाई देती है लाल तो हमेशा लाल ही होता हैं। जब रंगों के विज्ञान की बात चली है तो हम देखते हैं कि आजकल एक ही रंग में अलग-अलग तरह के कई रंग होते हैं। रंगों को उनके नाम से पहचानना अब सम्भव नहीं रह गया हैं क्योंकि तरंग-दैर्ध्य (Wave length) के आधार पर रंगों को एक निश्चित संख्या दी जाती हैं।

शहद कैसा होता है? यह जानने के लिए शहद को चखना जरूरी हैं शहद के पास जाना जरूरी है और शहद का असली स्वाद लेने के लिए तंदुरुस्त होना जरूरी है। इस साधारण ज्ञान की बदौलत मुझे महत्वपूर्ण ज्ञान हुआ कि सृष्टिकर्ता के साथ यौगिक सम्बन्ध के लिए हमें उसके सानिध्य में रहना होगा, उसे समझने के लिए हमे नितांत रूप से निर्मल या निर्दोष होना होगा। अन्यथा ऐसा प्रतीत होगा मानो हम रंगीन चश्मे पहनकर किसी चीज को देख रहे हों और यथार्थ से दूर रहेंगे।

अतः सहजमार्ग योग पद्धति में दिल की प्रवृत्तियों की सफाई हमारे दैनिक अभ्यास का एक बहुत महत्वपूर्ण पहलू है। दिल ही सभी सवालों का जवाब देता है। हमारे पास एक छोटी-सी चीज हैं, जिसे हम अन्तःकरण कहते हैं। जन्म जन्मान्तरणों से अन्तःकरण की आवाज की इतनी अवहेलना होती रही है कि इसका अस्तित्व ही खत्म हो गया है। इसका अस्तित्व केवल चिंगारी मात्र रह गया है। अतः मेरे मालिक ने कहा है, दिल की शरण में जाओ उसे साफ करो शुद्ध करो। साथ ही आप जो समझना चाहते हैं जानना चाहते हैं बनना चाहते हैं उसके सानिध्य में जाओ। इसके बिना कुछ भी सम्भव नहीं है।"

यदि आप ईश्वर से भयभीत हैं, तो ईश्वर से साक्षात्कार नहीं हो सकेगा। अर्थात साधारण मानवीय शब्दों में भी कहें कि आप किसी से प्रेम करते हैं और उससे डरते भी हैं, तो प्रेम कैसे टिक सकता है? प्रेम करने के लिए भय को हटाना आवश्यक है। पुनः ईसाई परम्परा में कहा गया है प्रेम को सम्पूर्णता प्रदान करने के लिए भय को दूर भगाओ।" प्रेम और भय साथ-साथ नहीं रह सकते। किसी भी रिश्ते के सन्दर्भ में आप कहें कि हम प्रेम करते हैं, किंतु डरते हैं तो इसका तात्पर्य होगा कि या तो प्रेम नहीं हैं और यदि है तो सुदृढ़ नहीं है।

यह निर्भयता किस हद तक होनी चाहिये? उस हद तक कि हमें अपना जीवन खोने का भय नहीं रहे। अब हमारा उद्देश्य महान उपलब्धियाँ हासिल करने का हो, तो उच्चतम बलिदान के अलावा हमें किसी चीज से संतुष्टि नहीं मिल सकती। प्रेम में बलिदान की जरूरत नहीं पड़ती। लेकिन बलिदान का भाव हमेशा हमारे दिल में विराजमान रहना चाहिये। जब हम उस मानसिक प्रवृत्ति या मानसिक माहौल में रहते हैं, तो हमारा पूरा जीवन बलिदान की मिसाल बन जाता है। हम उसे बलिदान नहीं समझते क्योंकि हम जो कुछ करते हैं, अपने प्रिय के लिए करते हैं। अतः मेरे मतानुसार बलिदान का विचार तभी आ सकता है जब प्रेम न हो। जहाँ प्रेम होता है, वहाँ कोई भी बलिदान बहुत बड़ा नहीं हो सकता।

मेरे मालिक की अगली शिक्षा यह भी थी, "यदि आप अपनी मंजिल की ओर अग्रसर होना चाहते हैं, तो पहले उससे प्रेम करो।" उससे इतना प्रेम करो कि आप उसके बिना जीवित न रह सकें उसके लिए बेचैन हो जायें। अतः सभी यौगिक परम्पराओं में जुदा हुए दो प्रेमियों के उदाहरण मिलते हैं, जो मिलने के लिये बेताब रहते हैं। यह बेताबी प्रायः इतनी अधिक हो जाती है कि प्रेमी अपनी प्रेयसी के लिए कुछ कर गुजरता है। आपने ऐसी कहानियाँ सुनी होगी कि एक माँ अपने बच्चे की जान बचाने के लिए जलते हुए घर में घुस जाती है। यह बहादुरी, यह साहस कैसे

सम्भव होता है? केवल ममता की बदौलत। यदि ममता न होती तो बच्चे की परवाह कौन करता। यह प्रेम इतना व्यापक और सार्वभौमिक होना चाहिये कि अन्त में आपके दिल और बड़े दिल, जिसे हम भगवान कहते हैं, के बीच एक गूँज पैदा कर दे। मनुष्य के लिए भगवान बनना सम्भव नहीं है। लेकिन हम दिव्य बन सकते हैं ताकि जो भी घटित हो, उससे हमारा दिल गुंजायमान हो उठे। ऐसा माना जाता है कि महान संतो ने अपना दिव्य ज्ञान, विवेक, दिव्य मार्ग-दर्शन और दिव्य निर्देश इसी प्रकार प्राप्त किये हैं।

मेरे मालिक को यह जानकर बड़ा ताज्जुब हुआ कि लोग इसे समझ नहीं पाये। उन्होंने कहा, "समस्त संवाद एक कम्पन है। जब मैं बोलता हूँ और आप सुनते हैं, तो आप अपने कान की मदद से हवा में विराजमान कम्पन को पुनः ध्वनि में परिवर्तित करते हैं और उसे ध्वनियों के रूप में सुनते हैं। भौतिक विज्ञान पढ़ने वाला हर छात्र यह प्रयोग करता है। जब घंटी के ऊपर जार रखा जाता है, तो भी आवाज सुनायी देती है। लेकिन जब जार को निर्वात कर दिया जाये तो संवाद का माध्यम खत्म हो जाता है और घंटी बजते हुए भी हमें सुनायी नहीं देती है। यही बात टेलीफोन पर लागू होती है। यहाँ भी इसी तरह का कम्पन काम करता है।

मेरे मालिक प्रायः अपने पास आने वाले खासकर शिक्षित बुद्धिजीवियों से पूछा करते थे, "यदि आप संवाद के इन रूपों को समझ कर स्वीकार कर सकते हैं तो यह स्वीकार करने में क्या कठिनाई है कि ऐसी ही कुछ सूक्ष्म तरंगो से हमें दिव्य ज्ञान और दिव्य निर्देश भी प्राप्त हो सकते हैं, जिन्हें मापा नहीं जा सकता? " उन्होंने आगे कहा, "इसका कारण यह है कि हम अपने ज्ञान को इन इन्द्रियों तक ही सीमित रखते हैं। हम उन्हीं चीजों को स्वीकार करने को तत्पर होते हैं, जिन्हें हम देख सकते हैं, सुन सकते हैं, सूँघ सकते हैं, स्पर्श कर सकते हैं, तथा चख सकते हैं।" अतः जब तक विज्ञान का प्रादुर्भाव नहीं हुआ था, तब तक अधिकतर, लोगों को यह स्वीकार करना बहुत दुष्कर लगता था कि ज्ञान प्राप्ति के इतने संवेदी तरीके हो सकते हैं। मेरे मालिक के अनुसार हमने अपने भीतर सबसे बड़ा अवरोध खड़ा कर लिया है कि हम उन्हीं चीजों को स्वीकार करते हैं, जिनकी विज्ञान ने पुष्टि की है और उन चीजों को स्वीकार नहीं करते, जिन्हें विज्ञान ने अभी उजागर नहीं किया है। हम सहज ही भूल जाते हैं कि जो बात विज्ञान आज कह रहा है, वही बात संतों और मनीषियों ने सैकड़ो वर्षों पहले कह दी थी। यदि ऐसा नहीं होता तो टेलीफोन और टेलीविजन सम्भव नहीं होते।

शिक्षा पद्धति का यह दुर्भाग्यपूर्ण परिणाम हमारे सामने है कि ज्ञानेन्द्रियों द्वारा

बौद्धिक रूप से किसी चीज को जानने की पद्धति देव तुल्य बन जाती है। हम अन्य किसी चीज को स्वीकार करने के लिये तत्पर नहीं हैं। जब ये लोग मेरे मालिक से पूछते हैं, "आप जिन्हें दिव्य तरंगें कहते हैं, उन्हें हम कैसे सुन-समझ सकते हैं? " मेरे मालिक ने जवाब दिया, "तुम यह प्रश्न क्यों पूछते हो? " वे बड़े धैर्यपूर्वक उन्हें समझाते क्योंकि ऊपरी तौर पर तो वह अनपढ़ सीधे सरल गवाँर आदमी थे। वे उन्हें बच्चे की तरह खुलासा करके बताते, "हम इन आँखो से देखते हैं, कानों से सुनते हैं, लेकिन इन तरंगो को किससे सुना जा सकता है? " बाबूजी ने उत्तर दिया, "दिल से।" कभी-कभी वह उन लोगों का उदाहरण दिया करते थे, जो बिना आँखों के देख सकते हैं। मनोविज्ञान कहता है कि यह सम्भव है कि लोग मात्र छूकर बता सकते हैं कि कौन-सा रंग है। जब मनोविज्ञान यह बात कहता है तो यह ज्ञान है और जब कोई संत यह बात कहता है तो इसे मूर्खता की संज्ञा दी जाती है। मेरे मालिक को आधुनिक मनुष्य पर तरस आता था कि हमने अपने ज्ञान प्राप्ति के तौर तरीकों को सीमित कर लिया है। उन्होंने कहा, "बस, आपको अपना दिल खोलने भर की जरूरत है। फिर देखो, क्या-क्या चमत्कार होते हैं। यदि आप दिल पर पूरी तरह विश्वास करना सीख जायें, तो पायेंगे कि अब आपको आँखों और कानों की जरूरत नहीं है। हमारे ज्ञान में योगदान के हिसाब से ये सारे संवेदी उपकरण बहुत सीमित हैं। अब आपको उनकी जरूरत नहीं रह जाती क्योंकि उनके ऊपर आपकी निर्भरता खत्म हो जाती है।"

तब यह अन्तिम सम्भावना उभर कर सामने आती है कि दिल ज्ञान का संसाधन बन सकता है। ये सारे संवेदी उपकरण साधन मात्र रह जाते हैं। ये दिल के उपकरण बन जाते हैं। इस प्रकार आज जो कुछ घटित हो रहा है, पूरी स्थिति उससे विपरीत हो जायेगी। अब हम दिल को नकार कर इन्द्रियों पर निर्भर होते जा रहे हैं। यदि कोई व्यक्ति मेरी तरफ मुस्कराये तो वह मेरा दोस्त है। यदि कोई घूरकर देखे तो वह मेरा दुश्मन है। सम्भवतः जब वह मुझे घूर रहा हो, तो उसके मन में कोई विचार चल रहा होता है। यह भी सम्भव है कि कोई लड़की किसी अन्य व्यक्ति के बारे में सोच रही हो और तुम्हारी तरफ मुस्करा रही हो।

ये सब गलतियाँ तभी होती हैं जब हम अपनी आँखों, कानों और नाक पर भरोसा करते हैं। जब हम दिल पर भरोसा करना सीख जाते हैं, तब ऐसी गलतियाँ होना नितान्त असम्भव है।

जब हम ऐसी अवस्था में पहुँचेंगे, तो हमारी सभी ज्ञानेन्द्रियों पर निर्भरता खत्म हो जायेगी। अब हम दिल से आने वाली उच्चतर ज्ञान धाराओं को ग्रहण करने में

पारदर्शी हो जायेंगे। हमारे महान मनीषियों और संतो ने अपनी उपलब्धियाँ ऐसे ही हासिल की हैं। हमारी यौगिक पद्धतियों का यही एक छोटा सा लाभ है। मैं आपको जोर देकर कहना चाहूँगा कि योग का लक्ष्य या उद्देश्य यह नहीं है। योग तो उच्चतर उद्देश्य के लिये ज्ञान प्राप्ति का साधन है और वह उच्चतर उद्देश्य उस मुकाम को हासिल करना है, जहाँ हमें किसी संवाद या विचार की आवश्यकता न रहे।

सम्भवतः कुछ लोग इसे ईश्वर विरोधी बात समझेंगे, लेकिन विकास को नकारा नहीं जा सकता। क्या आप इस संभावना को नकार सकते हैं कि एक केंचुआ विकसित होकर मनुष्य बन सकता है? यदि पाश्चात्य विकास विज्ञान पर विश्वास करें तो हमारा उद्भव इसी तरह हुआ है। हमारी शुरुआत एक कोशिकीय जीव से हुई है और हम विकास की पराकाष्ठा बन गये हैं। मेरे मालिक कहा करते थे,"हाँ,निःसंदेह हम विकास की पराकाष्ठा हैं लेकिन यह पराकाष्ठा अस्थायी है। अभी बहुत कुछ हासिल करना शेष है।" अन्यथा हम भी वही गलती कर बैठेंगे जो उस आदमी ने की थी, जो नाइस जाना चाहता था। वह नाइस जानेवाली ट्रेन में बैठ गया, लेकिन यह सोचकर पहले ही स्टेशन पर उतर गया कि नाइस आ गया है। हो सकता है कि वह स्थान नाइस (खूबसूरत) हो, लेकिन वह नाइस नहीं था। हम विकास के शिखर पर हैं। यदि हम यह सोचें कि हम हमेशा शिखर पर रहेंगे, तो हम अपने ही विकास को रोक रहे हैं। मेरे मालिक ने कहा था, "हमारे विकास के दो शत्रु हैं। पहला यह सोचना कि हम सम्पूर्ण हैं और दूसरा यह कि हमारे लिये हासिल करने के लिए कुछ शेष नहीं है।" विज्ञान भी ऐसी गलतियों से भरा पड़ा है।

प्राचीन काल में कुछ महान वैज्ञानिक हुये हैं जिन्होंने कहा है, **"विज्ञान में अब खोजने को कुछ शेष नहीं बचा।"** न्यूटन अपने समय में सबसे बड़े विद्धान थे। उनके साथ ही आइंस्टीन अपने काल के महानतम वैज्ञानिक थे। अगला सबसे बड़ा वैज्ञानिक कौन है? कोई नहीं जानता। जैसा कि किसी चीज के बारे में कहा जाता है श्रेष्ठ, श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम। जब आप पहाड़ पर दूसरी ओर से चढ़ते हैं, तो कहते हैं, "यह श्रेष्ठतम से भी श्रेष्ठ नहीं है। श्रेष्ठतर श्रेष्ठतम बन जाता है। यह मात्र शब्दों का खेल नहीं है। यह एक सम्भावना है। हमें स्वीकार करना पड़ेगा कि यदि हम यहाँ तक पहुँचे हैं, तो हमें और आगे भी जाना है, यहाँ नहीं बैठना है।

मनुष्य आज तक विकास धारा का सर्वश्रेष्ठ उत्पाद है। यह सोचना मनुष्य की सबसे बड़ी भूल होगी कि वही हमेशा सर्वश्रेष्ठ बना रहेगा। ऐसा सोचना न केवल बौद्धिक दृष्टि से मूर्खतापूर्ण है बल्कि यह अहंकार की अभिव्यक्ति है। विकास के

विरुद्ध विकास के सर्वोच्च मुकाम पर भी हमें यह समझने की विनम्रता रखनी चाहिये कि हम विकास प्रक्रिया की एक सीढ़ी मात्र हैं। मेरे मालिक हमेशा इस बात पर बल देते थे कि विनम्रता का स्थान दिल में है, मस्तिष्क में नहीं। हम जो विकास पद्धति अपनाना चाहते हैं, विनम्रता उसका अत्यन्त आवश्यक गुर है। यह समझना इस अभ्यास की बुनियादी शर्त है कि भले ही हम कितने ही सम्पूर्ण क्यों न हों, भगवान की सम्पूर्णता का स्तर अभी हमारी पहुँच से परे है।

योग विज्ञान किसी चीज की निन्दा नहीं करता। ऐसा समय जरूर रहा होगा जब इस संसार रूपी सागर में केवल अमीबा रहते थे। शायद उन्होंने सोचा होगा कि वे सम्पूर्ण हैं, फिर धीरे-धीरे बहुकोशिकीय जीव पैदा हुये। उन्होंने सोचा होगा कि वे सम्पूर्ण हैं। तब धरती पर जीवन का उद्‌भव हुआ और उसने सोचा कि वह सम्पूर्ण है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वह स्वयं में सम्पूर्ण है बल्कि उसमें दिव्य जीवन है। दिव्यता की धारा अपूर्णता से सम्पूर्णता की ओर बहती है। इसी की बदौलत जीवन इतना खूबसूरत है। आप सब जानते हैं कि हम डार्विन के इस सिद्धान्त को हेय दृष्टि से देखते हैं कि मनुष्य पहले बन्दर था। कोई भी व्यक्ति इस अवधारणा को स्वीकार नहीं करना चाहता। ऐसा नहीं है कि हम आज बन्दर हैं बल्कि हम यह भी नहीं मानना चाहते कि प्राचीन समय में भी हम कभी बन्दर रहे हैं।

विकास की प्रकृति का सही ज्ञान होने के कारण योग हमारे अन्दर आत्म सम्मान जागृत करता है। मैं जो भी हूँ, कल मैं जो भी होऊँगा, सम्पूर्ण होऊँगा बशर्ते कि मैं इस बात को समझ लूँ कि मुझे सम्पूर्णता का उच्चतर स्तर अभी हासिल करना है। मैंने शैक्सपीयर की रचना जूलियस सीजर में मार्क एन्टनी के मशहूर भाषण से इस बात को भली-भाँति दिल से आत्मसात कर लिया था। मार्क एन्टनी कहता है, "ऐसा नहीं है कि मुझे सीजर कम प्रिय है बल्कि सच तो यह है कि मुझे रोम अधिक प्रिय है।" यह बहुत उलझनपूर्ण बात थी। जब हम कम या ज्यादा को लेकर विचार करते हैं, तो हम नितान्त अधिक या नितान्त कम के बारे में ही सोचते हैं।

लेकिन ताज्जुब की बात यह है कि समाज में सापेक्षता को घरेलू नाम बनाने वाले वैज्ञानिक आइन्स्टीन की मृत्यु हुए चालीस वर्ष बीत चुके हैं, लेकिन हम आज भी अपनी-अपनी अवधारणाओं की सापेक्षता को स्वीकारने में आनाकानी करते हैं। मैं सम्पूर्ण हूँ और मुझे और अधिक सम्पूर्ण बनना है, भले ही पहले मैं कम सम्पूर्ण रहा हूँ। मेरे मालिक ने उसकी व्याख्या बहुत खूबसूरत अंदाज में की थी। उन्होंने कहा, "गुलाब के एक पेड़ या झाड़ी पर सैंकड़ों गुलाब हैं। वे सब अलग-अलग

प्रकार के हैं, लेकिन हर गुलाब सम्पूर्ण है।" उनकी निरपेक्ष परिभाषा यह थी, "भगवान की हर कृति सम्पूर्ण है।" अतः हम कुदरत में सम्पूर्णता के दर्शन करते हैं।

हालाँकि प्रेमी की निगाहों से हर चीज खूबसूरत नजर आती है। कहा जाता है कि जब प्रेमी इस दुनिया में घूमने निकलता है, तो उसे हर चीज गुलाब की भाँति लाल और मुस्कुराती दिखाई देती है। यह भीतर का दृश्य है या बाहर का? जब हम प्रसन्नचित्त रहते हैं, तो हमें पक्षियों के कलरव में भी अपनी प्रसन्नता परिलक्षित होती है। हमें लगता है मानों पक्षी वास्तव में गीत गा रहे हों। क्या उन्हें मालूम है कि हम सजीव हैं? यह वक्त के मिजाज के आधार पर हमारी अनुकूल व्याख्या है।

निरपेक्ष ज्ञान हमेशा हम से दूर रहता है, क्योंकि अनुकूल जीवन का इस दुनिया में सत्य छिपा रहता है। ऐसा नहीं है कि सत्य पर किसी व्यक्ति ने पर्दा डाल रखा है बल्कि हमें स्वयं को अनुकूल करने और दुनिया को अपनी भावनाओं अथवा सोच के चश्मे से देखने की आदत पड़ गई है। अतः मैं पुनः कहना चाहूँगा कि पद्धति को भी वैसे ही शुद्ध करने की आवश्यकता है जैसे हम फोटो लेने से पहले कैमरे के लैंस साफ करते हैं। अन्यथा लैंस पर जमी धूल फोटोग्राफ में अनचाही चीजें दिखायेगी।

अतः ज्ञान की सम्पूर्णता का अर्थ यह नहीं है कि जिस चीज को देख रहे हैं उसके बारे में सब कुछ जानते हों बल्कि हमें अपने ज्ञान को परिशोधित करना पड़ता है। ज्ञान का विषय सदैव यथावत रहता है। गुलाब हमेशा गुलाब रहता है। प्रेमी के लिये यह प्यार का प्रतीक है, कलाकार के लिये पैंटिंग का विषय है। लेकिन जो व्यक्ति काँटों से डरता है, वह गुलाबों से दूर भागता है।

हमें इस विचारधारा को त्यागना होगा कि हम जिन विषयों का अध्ययन कर रहे हैं, उनके बारे में अधिक जानकारी रखते हैं। यह बहुत ही आत्मप्रवंचना का विषय है। ऐसा कहकर हम इस बात को सिद्ध करने की सम्भावना को अवरुद्ध कर देते हैं। असली ज्ञान, असली समझ, शुद्धिकरण प्रक्रियाओं द्वारा हमारी स्वयं की शुद्धि से आता है। इसमें कोई आश्चर्यजनक अथवा असाधारण बात नहीं है। मैं पुनः कहना चाहूँगा कि यह सब उतना ही आसान है, जितना कैमरे के लैंस की सफाई करना।

अतः मेरे मालिक की पद्धति में सफाई प्रक्रिया महत्वपूर्ण अभ्यास है। यदि हमें अपनी गंदगी के बारे में कोई अपराध बोध हो, तो जैसा कि मेरे मालिक ने कहा था, "अपराध बोध महसूस करने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि ऐसा कुछ भी

नहीं है जिसे गंदगी कहा जा सके। यदि कोई अवांछित चीज हो, तो वह हमारी पद्धति में बाधक होती है अतः हम उसे हटा देते हैं।" खेतों और फार्मों में मृदा, कीचड़ तथा धूल होना लाजिमी है अन्यथा चावल और गेहूँ की पैदावार नहीं होगी। लेकिन जब यही धूल मिट्टी बिजली के उपकरणों और चश्मे के लैंस पर जमा हो जाये, तो देखने में बाधा आती है इसलिए इसे हटाना पड़ता है।

मैंने अपने अनुभव में भी यह पाया है कि जब हम सफाई की बात करते हैं, तो लोग विरोध करते हैं। वे कहते हैं, "मैं तो गंदा नहीं हूँ।" यह परम्परागत अर्थ में गन्दगी या सफाई का प्रश्न नहीं है। जो चीज भगवान के साथ हमारे संवाद में बाधक हो, उसे हटाना आवश्यक है। मेरे तथा मेरे जैसे अन्य शिष्यों पर मालिक की सबसे बड़ी कृपा यह रही कि उन्होंने गंदगी का आभास कराये बिना हमें इस सफाई प्रक्रिया में लगाये रखा।

दुर्भाग्यवश मन में द्वैतवाद के कारण लोग सीख नहीं सकते क्योंकि वे यह स्वीकार नहीं कर पाते कि वे अज्ञानी हैं। यदि आप महान वैज्ञानिकों, महान शोधकर्ताओं, महान मनीषियों और महान संतों की जीवनियों का अध्ययन करें तो पायेंगे कि जो लोग पढ़े लिखे थे, वही अधिक ज्ञान प्राप्त करने के इच्छुक थे। मूर्ख व्यक्ति हमेशा अपनी मूर्खता के साथ संतुष्ट रहता है।

अतः शिक्षा का महत्व जानने के लिए हमें शिक्षा की आवश्यकता होती है। मैं दोहराना चाहूँगा कि हमें यह अपराध बोध नहीं होना चाहिये कि हम में कोई कमी है। अतः वेदों में एक महत्वपूर्ण उदाहरण देकर समझाया गया है कि जानना और समझना दर्पण की सतह से धूल हटाने के समान है। इस अर्थ में यह कहना गलत होगा कि हम ज्ञान अर्जित कर रहे हैं। हम केवल सच्चे ज्ञान के मार्ग में आने वाली बाधाओं को दूर करके तथा दिल में ज्ञान और समझ के सही अर्थ को पुनः कायम करके अपनी अज्ञानता की पर्तें हटा रहे हैं।

अतः सहज मार्ग राज योग पद्धति मनुष्य के दिल पर कार्य करती है। इस पद्धति में हम दिल पर ध्यान करते हैं। दिल को निर्मल बनाया जाता है तथा उसी अर्थ में मेरे मालिक कहा करते थे, "पहले हमें मानव बनना होगा।" इसका यह मतलब नहीं कि हम निम्न स्तर का जीवन यापन करते हैं बल्कि हमें व्यवहारिक समझबूझ और आपसी विचार-विमर्श के नये पैटर्न अपनाने हैं। हमने आक्रामकता और स्वार्थ जैसी कुछ ऐसी प्रवृत्तियाँ विकसित कर ली हैं, जिन्हें मानवीय नहीं कहा जा सकता। यदि हम सही ढँग से समझें, तो इनका कारण भय है। प्यार करने वाला आक्रामक नहीं हो सकता क्योंकि जहाँ प्यार होता है, वहाँ भय की कोई बात नही

होती है। जिससे प्यार होता है, वह स्वार्थी नहीं हो सकता क्योंकि वह लेना नहीं बल्कि प्यार देना चाहता है। इसमें सुरक्षा का कोई भाव नहीं होता। सारी बाधायें टूट जाती हैं मानो हम बिना घर भी घर में रह रहे हों। इसमें कोई दरवाजा नहीं, कोई खिड़की नहीं, कोई दीवार नहीं, कोई छत नहीं, फिर भी यह सुरक्षा प्रदान करता है।

यह विज्ञान कथा साहित्य की उस सम्भावना की भाँति है जहाँ हम ऊर्जा अवरोधों से घिरे हुए हैं, जिन्हें पार करके कोई चीज हम तक नहीं आ सकती। मैं आपको विश्वास दिला सकता हूँ कि यह सिर्फ कपोल कल्पना नहीं है। उस सुरक्षा और प्रेम को महसूस करना सम्भव है क्योंकि जब हम प्रेम उत्सर्जित करते हैं, तो कोई भी चीज उसे पार करके हम तक नही पहुँच पाती। इसलिए हम दिल पर ध्यान करते हैं, उसे निर्मल बनाते हैं। उस पर भरोसा करना सीखते हैं और अन्तःकरण की आवाज को विकसित करते हैं, जो बाहरी दुनिया के सभी प्रलोभनों की बजाय मेरे अन्तर्मन की आवाज को सुनना सिखाती है। सत्य की खोज दिल से करो, मस्तिष्क से नहीं।

इस प्रक्रिया द्वारा धीरे-धीरे मानव जीवन के उच्चतर स्वरूपों तक विकास करना सम्भव है। इससे हम में सम्पूर्णता आती है। मेरे मालिक के अनुसार यह दिव्यकरण की अवस्था है। जब कोई चीज सम्पूर्णता को प्राप्त होने लगती है तो सम्भवतः दिव्य बन जाती है। इसीलिए वेदों में यह कथन आता है कि, "चीनी मिठास की वजह से चीनी है।" क्या चीनी नमकीन हो सकती है? मान लीजिये किसी ने मुझे चीनी बेची, जिसका स्वाद नमकीन है। मैं उसे नहीं खरीदूँगा। मैं कह दूँगा, "भगवान की कसम यह चीनी नहीं है।"

हमें ऐसा मानव बनना है, जिसके बारे में यह कहा जा सके, "वह इंसान है।" इंसान बनने का सार प्रेममयी होना है। प्रेम करने और प्रेम पाने में दो व्यक्तियों की भागीदारी होती है। यह वह स्थिति है, जहाँ आपको किसी अन्य पर आश्रित रहना पड़ता है। जहाँ यह निर्भरता होती है, वहाँ सम्पूर्ण शांति, सम्पूर्ण खुशी असम्भव है। इसीलिए मेरे मालिक कहा करते थे, "प्रेम मत करो। प्रेम पाने की चेष्टा मत करो। प्रेममयी बनने का प्रयास करो क्योंकि जब आप स्वयं प्रेम बन जाओगे, तो हर व्यक्ति उसी तरह आपकी ओर खिंचता चला आयेगा जैसे मधुमक्खियाँ फूल के पास चली आती हैं। मैंने कभी किसी फार्म के बाहर यह नोटिस लगा हुआ नहीं देखा, "यहाँ शहद उपलब्ध है", लेकिन मधुमक्खियाँ इसे ढूँढ लेती हैं। इसी प्रकार जब हम प्रेममयी बन जायें, तो पूरे मानव समुदाय को हमारे पास चलकर आना पड़ेगा।

आप इसका कारण भी जानते हैं। ऐसा नहीं है कि आप खूबसूरत हैं या अच्छे हैं या शिक्षित हैं या समझदार हैं या अमीर हैं, इसलिए लोग आपके पास आते हैं। स्त्री अमीरी तथा ताकत से प्रभावित होकर पुरुष के पास जाती है। पुरुष खूबसूरती से वशीभूत होकर स्त्री के पास जाता है। यही तो प्रेम का आधुनिक मानवीय ढंग है। एक गुरु असीम प्रक्रिया, असीम अस्तित्व की बात करता है, जहाँ ऐसे व्यक्ति को यह ऐहसास भी नहीं रहता कि लोग उसके पास आ रहे हैं। मालिक कहा करते थे," गुरु फूल के समान होता है। फूल को यह ज्ञान कहाँ रहता है कि मधुमक्खियाँ उस पर आकर बैठती हैं और उसका शहद ले जा रही हैं। वह तो बस खड़ा रहता है बल्कि लोग उसके साथ मनचाहा व्यवहार करते रहते हैं।" लेकिन कृपया समझ लें कि यही असीम अवस्था है।

इसीलिए कुछ लोग आस्तिक होते हैं तो कुछ नास्तिक। भले ही हमें जरूरत हो या नहीं, भले ही हम आस्तिक हों या नास्तिक, हम अपने जीवन में भगवान का नाम लिये बिना रह ही नहीं सकते। नास्तिक भी भगवान की चर्चा करता है, हालाँकि वह कहता है कि भगवान का अस्तित्व नहीं है। मेरे मालिक हमेशा हँसकर कहते थे, "कोई सच्चा नास्तिक हो ही नहीं सकता," क्योंकि जब वह कहता है कि भगवान का अस्तित्व है ही नहीं, तो वह उसका जिक्र करता है। जब भगवान का अस्तित्व नहीं है तो उनके अस्तित्व को कौन नकार सकता है? जो चीज कभी अस्तित्व में रही ही नहीं, उसके लिये क्या आप कभी कह सकते हैं कि उसका अस्तित्व नहीं है? मेरे मालिक कहा करते थे "नास्तिक का अस्तित्व भगवान के अस्तित्व का सबूत है क्योंकि आस्तिक धीरे से कहता है कि ईश्वर का अस्तित्व है। लेकिन नास्तिक इस बात को इतने बढ़िया ढंग से कहता है कि उसमें भगवान की उपस्थिति का विश्वास झलकता है।"

योग में ऐसी सम्भावना नहीं है कि हम शक्तिशाली अथवा अमीर बन जाएं। प्राचीन पद्धतियाँ, जो दिल में से नहीं गुजरती थीं, ऐसी असीम शक्तियाँ दे सकती थीं, जिनसे किसी ग्रह को उसकी धुरी से अलग किया जा सकता था। उनसे धन-संपदा मिल सकती थी, उनसे इस दुनिया में कामयाबी मिल सकती थी। लेकिन दिल-पथ कुछ पाने का नहीं बल्कि बनने का रास्ता है, पूर्णता से सम्पूर्णता की ओर बढ़ने का मार्ग है।

निष्कर्ष में, मैं एक बात कह सकता हूँ कि दिल का मार्ग कुछ बनने का मार्ग है। हम आपको इस साहसिक कार्य में भाग लेने के लिये आमन्त्रित करते हैं। यह पूरी तरह समझ लेना चाहिये कि यहाँ प्राप्त करने, देने, हासिल करने के लिये कुछ भी नहीं है बल्कि **कुछ बनने** के लिए **सब कुछ** उपलब्ध है।

धन्यवाद।

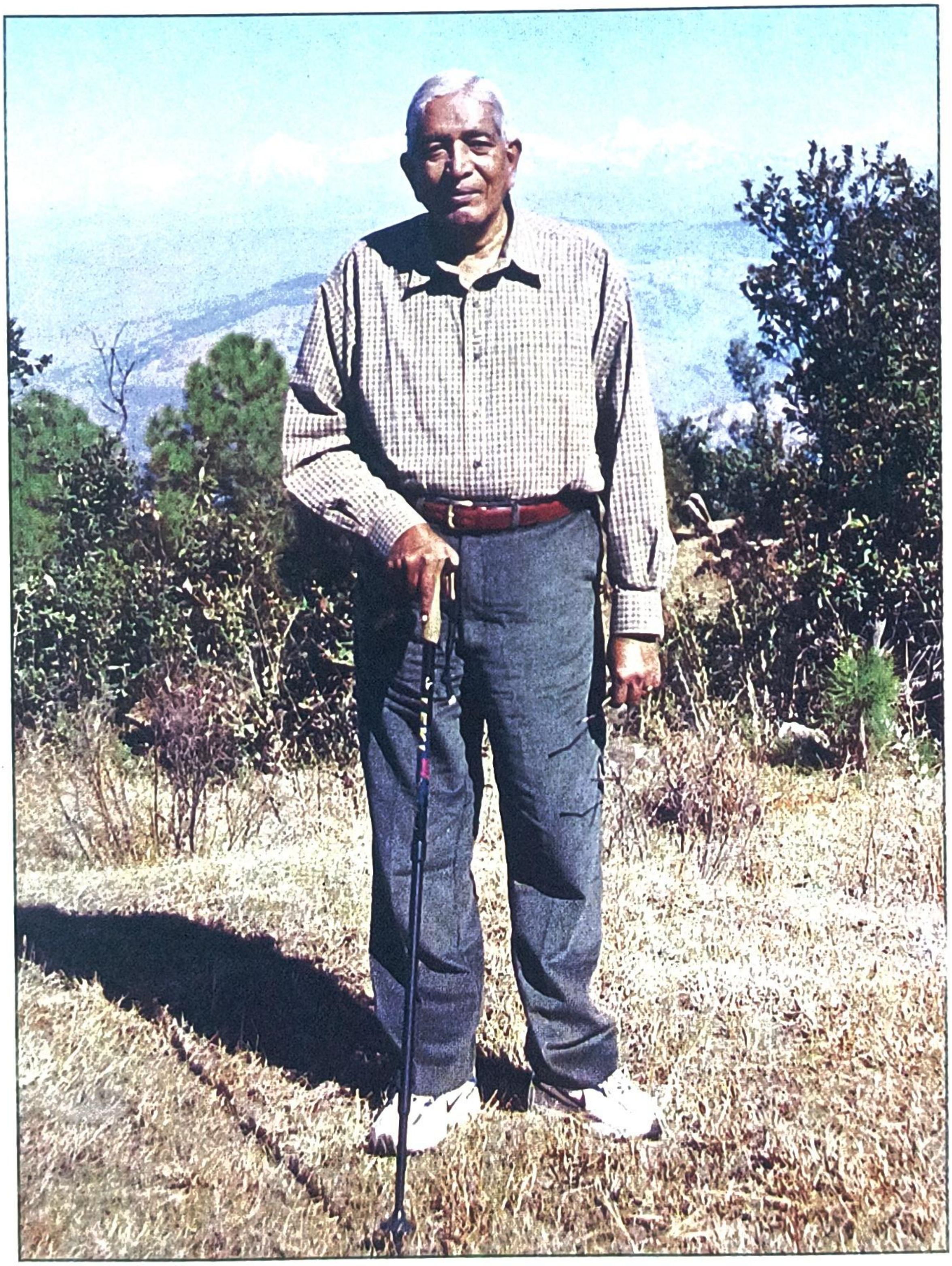

II

अमेरिका

13
दयालुता का आरम्भ घर से ही
वेस्ट प्वांइट, जोर्जिया
14 सितंबर, 1988

मैं इसे डायरी का नाम देना चाहता था, लेकिन फिर लोग इसे खाली पन्नों वाली नई डायरी के रूप में खरीदने की भूल कर बैठते। जब उन्हें पता चलता कि इस पर कुछ लिखा हुआ है, तो वे इसे बिल्कुल नकार देते। यह द्वन्द चलता रहा। एक दिन ध्यान के दौरान In his foot steps (उनके पदचिन्हों पर) वाक्यांश मेरे जेहन में आया। मुझे यह शीर्षक बहुत भाया। यह किताब का शीर्षक भी था और डायरी का भी। मैंने इसे अपनी अन्तर्रात्मा और अपने मालिक के संदेश के रूप में लिया। मानो वह कह रहे हों, "मेरे साथ, मेरे निर्देशन में तथा लाला जी की कृपा से किये गये तुम्हारे आध्यात्मिक कार्य के बारे में डायरी लिखना ही पर्याप्त नहीं है बल्कि तुम्हे असली ढँग से मेरे पद-चिन्हों पर चलना होगा।" इस प्रकार यह शीर्षक मेरी भावी भूमिका का प्रतीक मात्र नहीं हैं। मेरे विचार से यह एक आदेश है, "मेरे पद-चिन्हों पर चलो।"

ईसा मसीह ने कहा था, "Take up thy bed and walk" (अपना बोरिया बिस्तर उठाओ और चलो) यह एक आदेश था। हालाँकि जिस व्यक्ति को ईसा-मसीह ने यह आदेश दिया था वह फालिज का शिकार था, लेकिन वह आज्ञापालन में खड़ा हुआ और उनके साथ चल पड़ा। यही मेरे मालिक की सौगातों का रहस्य था। वे असली सौगातें थीं। जब-जब उन्होंने कोई निर्देश दिया और हमने आज्ञा-पालन में साहस, धैर्य, दृढ़ निश्चिय और प्रेम जाहिर किया, तब-तब उन्होंने हमें उचित सामर्थ्य भी प्रदान किया। यही बाबूजी की कार्यप्रणाली का रहस्य था। मैं विशेष रूप से इस बात का संदर्भ इसलिए ले रहा हूँ क्योंकि आमतौर पर हम पहले शक्ति की कामना करते हैं और फिर काम करते हैं। जब आप किसी को काम करने के लिए कहें, तो वह कहेगा कि, "मुझे यह काम नहीं आता। मुझे इसका ज्ञान नहीं है। मेरे पास अपेक्षित शक्ति नहीं है।"

सहज मार्ग में मैंने अपने स्वयं के अनुभव से यह महत्वपूर्ण रहस्य जाना कि दायित्व के साथ ही उसके लिए अपेक्षित ज्ञान, क्षमता, उपयोग की ताकत आदि एक पैकेज के रूप में मिलती हैं। इसका श्रेय भी मेरे मालिक को जाता है। उन्होंने ये बातें मुझे अपने भीतर से सहज ही समझा दी थीं। इस पैकेज की सब बातें आपस

में जुड़ी हुई हैं। जब जिम्मेदारी उठाते हैं, तो काम स्वतः बनता चला जाता है, जब जिम्मेदारी नहीं उठाते तो कुछ भी हाथ नहीं लगता। यदि आप जिम्मेदारी को नकार देते हैं, तो स्वतः ही ज्ञान को नकार देते हैं, शक्ति को नकार देते हैं और कृपा करुणा को नकार देते हैं, विकास को नकार देते हैं और उससे जुड़ी हर चीज को नकार देते हैं।

एक बार जब मैं बाबूजी से बात कर रहा था वहीं एक दूसरा अभ्यासी भी था, जो बसंत उत्सव के दौरान सेवा करने के लिए आया था। वह मालिक के पास आया और बोला, ''बाबूजी मैं सिटिंग नहीं ले पा रहा हूँ। मेरी यहाँ-वहाँ डयूटी लगी रहती है और मुझे यहाँ आये केवल तीन दिन हुये हैं। मुझे तो आपके आशीर्वाद का कोई फायदा नहीं हुआ। मेरा बसंत उत्सव के लिए आने का क्या फायदा? '' हालाँकि वह मालिक से बात कर रहा था लेकिन मैंने तत्काल कहा, ''तुम जो सेवा से प्राप्त करते हो वह साधना से भी प्राप्त नहीं किया जा सकता , क्योंकि आप की दुनिया में साधक बनने की न तो हमारी क्षमता है और न नैतिक दम-खम। यह सम्भव नहीं है।''

सबसे पहली बात, हम अपने साथ संस्कारों का इतना बोझ लेकर आते हैं कि बैठकर ध्यान करने के लिये भी हमें मालिक की कृपा चाहिये। यहाँ मौजूद कई लोगों ने अपनी रिपोर्ट और पत्रों में मुझे लिखा है, ''मुझे ध्यान करने के लिये समय नहीं मिलता मैं शाम को सफाई नहीं कर पाता। कभी कभी तो मैं महीने में एक बार भी ध्यान नहीं कर पाता।''

यह कोई खेल नहीं है कि कोई व्यक्ति ध्यान करने का निर्णय ले और ध्यान कर पाये। इसके लिए भी गुरु की कृपा चाहिये। यह ऐसा काम नहीं है कि हर व्यक्ति, यहाँ तक कि हमारे अभ्यासियों में भी हर व्यक्ति इसे कर सके। मेरी जानकारी के मुताबिक कम से कम 80% अभ्यासी ऐसे हैं, जो नियमित नहीं हो सकते। इसका कारण यही नहीं कि उनकी चाहत में कमी है बल्कि वे असमर्थ हैं। किसी की पत्नी /पति परेशान करते हैं तो किसी के माँ-बाप अथवा उनका परिवार अथवा उनके बच्चे अथवा उनका रोजगार आड़े आता है।

हमें इन दबावों के आगे झुकना चाहिये या नहीं, यह बहस का मुद्दा है। बहरहाल, जैसा कि हिन्दू धर्म में कहा गया है और तमिल में एक प्रसिद्ध कहावत है, ''जब आदमी मरता है तो उसकी पत्नी दरवाजे तक अर्थी का साथ देती है। बेटा चिता तक जाता है और मुखाग्नि देता है। लेकिन धर्म उसका अंत तक साथ देता है।'' लेकिन हम चिंता करते है कि मेरी पत्नी क्या कहेगी, मेरा पति क्या कहेगा।

मेरे विचार से अधिकतर निर्भरतायें हमारी स्वयं की पाली हुई हैं। यदि किसी अभ्यासी में अपना आध्यात्मिक विकास करने का साहस, धैर्य और दृढ़ निश्चय हो, तो लोक या परलोक की कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती। लेकिन यदि हम पतियों, पत्नियों, बच्चों और पार्टियों को अधिक महत्व देते हैं, "ओह, मेरे दोस्त क्या कहेंगे?" बहरहाल वह साल में मुझे दो बार बुलाती है और यदि मैं नहीं जाऊँ, तो वह रो पड़ेगी, "तुम मेरे सबसे अच्छे दोस्त हो।" ठीक है, आपका यह सबसे अच्छा दोस्त आपको कहाँ ले जायेगा? पार्टी में, इससे ज्यादा नहीं।

इस प्रकार हम रास्ता भटक गये हैं। हमारे पास इन बेड़ियों को उतार फेंकने का मानसिक साहस, मानसिक ताकत और दृढ़ निश्चय नहीं है। विवाह भी एक बेड़ी है। यह कड़वी बात है। लोग सुनकर कहेंगे, "यह आदमी क्या उपदेश दे रहा है।" लेकिन विवाह की तुलना में यह आपके व्यक्तिगत आध्यात्मिक विकास का सवाल है। मान लीजिये आप नौकरी करते हैं और अचानक किसी देश से प्रस्ताव आता है कि आप जो कुछ पा रहे हैं, आपको उससे दुगुने डालर मिलेंगे, तो क्या आप अपनी पत्नि/पति की बात सुनेंगे? मेरा तात्पर्य यह है कि अमरिकीवासी घोंघे की भाँति अपने घर बार उठाकर क्षणिक नोटिस पर कहीं के कहीं चले जाते हैं। मैंने अमेरीकावासियों की भाँति किसी को इतनी अफरा-तफरी में एक स्थान से दूसरे स्थान पर बसते नहीं देखा। ऐसे में पति या पत्नी का सवाल ही कहाँ उठता है। "नहीं, नहीं डार्लिंग, मुझे यहाँ इतने डालर मिलते हैं, वहाँ मुझे ढाई लाख डालर मिलेंगे। इसे ठुकराना कोई अक्लमंदी नहीं है।" बच्चों की, पत्नी की और पति की कोई परवाह नहीं करता। सर्वशक्तिमान डालर का राज चलता है। इस प्रकार हम अपने दोहरे मानदण्डों के तहत कार्य करते हैं। कृपया इस पर सावधानीपूर्वक विचार करें। मैं पारिवारिक जीवन या सामाजिक जीवन या अन्य किसी जीवन पर प्रहार नहीं कर रहा हूँ, लेकिन एक बार जब आप निर्णय ले लेते हैं कि आपका दिल कहता है कि आपको ध्यान करना चाहिये और अपना आध्यात्मिक मुकाम हासिल करना चाहिये तो फिर अन्तःकरण की पुकार को ठुकराना आध्यात्मिक आत्महत्या है।

यदि उस स्तर पर लोक या परलोक की कोई ताकत आकर आपको रोके, तो आपको धैर्य और साहस के साथ बार-बार उसका मुकाबला करना होगा। मैं उन्हीं शब्दों का उपयोग कर रहा हूँ। याद रहे, ये पारिवारिक सम्बन्ध और रिश्ते, तन और मन के बंधन कुछेक वर्षों के भौतिक जीवन के लिए हैं। मुझे नहीं मालूम कि दीर्घायु व्यक्ति अल्पायु व्यक्ति से अधिक भाग्यशाली होता है या नहीं। कभी-कभार तो मुझे

इस पर वास्तव में संदेह होता है। बाबूजी ने जब मुझे मध्य क्षेत्र में रखा तब एक बार मैंने उनसे कहा, बाबूजी, यदि आप धरती पर मेरा जीवन काल खत्म कर दें, तो मैं आपका आभारी रहूँगा।" उन्होंने कहा, "कैसा बचकाना अनुरोध है? क्यों?" मैंने कहा, "जीवन का हर दिन पतन की सम्भावना लेकर आता है।" ऊपर उठना कठिन है, लेकिन गिरना बहुत आसान। लम्बे जीवन के हर दिन का तात्पर्य है कि ऊपर उठने के अवसरों की तुलना में पतन की सम्भावनाएं कहीं अधिक हैं।

इसकी तुलना सीढ़ी पर चढ़ने की प्रक्रिया से की जा सकती है। प्रथम बीस सीढ़ियाँ चढ़ना तो बहुत अच्छा लगता हैं। तब थोड़ा साँस फूलने लगती है। नीचे देखकर चक्कर आने लगते हैं। आप जितनी ऊँचाई पर पहुँचेंगे उतना ही खतरनाक दिखायी देगा। पतन की सम्भावना अधिक सच लगती है। एक अवस्था ऐसी आती है, जहाँ आप सोचने लगते हैं कि ऊपर जाऊँ या नहीं। बस, नाड़ियाँ कठोर हो जाती हैं, उनमें कँपकपी आने लगती है, साँस दामन छोड़ देती है, मुँह सूखने लगता है। तब शायद आपको नीचे लाने के लिए अग्नि शमन सेवा बुलानी पड़े। यह छोटा काम नहीं, बहुत बड़ा काम है। यह कदम उन प्राचीन ऋषियों ने उठाया था, जिनको सब कुछ त्यागकर यहाँ से जाना पड़ा था। यह कहना बहुत आसान है कि, बाबूजी ने इसे इतना सरल तथा सहज बना दिया कि अब मुझे अपने परिवार का त्याग नहीं करना पड़ेगा, मुझे अपना घर नहीं छोड़ना होगा। प्रातः कुछेक मिनट प्रार्थना, आधा घण्टा ध्यान, आधा घण्टा सफाई। बस इतनी ही आवश्यकता है।

अपने दोस्तों, माँ-बाप और रिश्तेदारों के साथ इस बारे में बातें करना आसान है, लेकिन यदि हम इन सबको जीवन में नहीं उतारें, तो स्वयं अपने साथ धोखा कर रहे हैं। बाबूजी द्वारा इतना परिशोधन, इतनी सरलता लाने और उसे करने में इतना सहज बनाये जाने के बावजूद भी यदि हम अपने पतियों, पत्नियों और नौकरियों की परवाह करते रहेंगे, तो मेरा दावा है कि भगवान भी आपकी मदद नहीं कर सकते। हमारा सर्वनाश तय है। यह चक्र बार-बार दोहराया जायेगा। हमारा पुनः जन्म होगा, शायद दूसरे पति के साथ, दूसरी पत्नी के साथ फिर बच्चे पैदा होंगे। यह चक्र हमने बार-बार दोहराया है। अन्तर केवल यह है कि हमें इसकी चेतन रूप से जानकारी नहीं है। हमने असंख्य नौकरियाँ की, काफी पैसा कमाया, काफी गँवाया, कई पति बनाये, कई पत्नियाँ बनायी, कई प्रसंग किये।

इस जीवन, इस विवाह, इस अस्तित्व और इन बच्चों के बारे में इतनी आश्चर्य जनक बात क्या है? शादी अवश्य कीजिये लेकिन अपना विकास करने की आजादी बरकरार रखें। सोने के डॉलर देने वाली नौकरियाँ अवश्य करें, लेकिन

उसे ठोकर मारने की आजादी भी कायम रखें। ये सब आपके पावों की सोने की भारी- भरकम बेड़ियाँ न बन जायें, जो आपको सर्वनाश के दलदलं में घसीट ले जायें। ये सब चीजें अच्छी हैं, डॉलर भी अच्छे हैं, स्त्रियाँ अच्छी हैं, और दुकान में रखी चमचमाती चीजें अच्छी हैं, लेकिन इनके जाल में मत फँसो। आज मैं आपको एक बात का आश्वासन दे दूँ कि बहुत ही कम इंसान ऐसे होते हैं, जो प्यार कर सकते हैं। पति-पत्नी, भाई-बहन, बाप-बेटी और माँ-बेटे के बीच का प्यार भी एक जाल है। यहाँ मौजूद कोई भी व्यक्ति यदि अपने दिल पर हाथ रखकर कह दे कि, ''मैं अपने पति/पत्नि से सच्चा प्यार करता हूँ'' तो मैं उसे नमन करूँगा। यह सुविधा और भावनात्मक निर्भरता का बंधन है। यदि हमारे बीच लैला- मजनूँ जैसा सच्चा प्यार नहीं हैं, तो हमें स्वयं को मूर्ख नहीं बनाना चाहिये। राम और सीता के जीवन में भी यही त्रासदी पायी जाती है। एक महान अवतार ने अपनी पत्नी का परित्याग कर दिया क्योंकि नदी किनारे कपड़े धो रहे एक बेवकूफ ने यह बेहूदा टिप्पणी कर दी थी, ''आह, वह वर्षो तक रावण के साथ रहकर आई है। उस पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? क्या पता कि वह सच्चरित्र है? धोबी के इस एक मूर्खतापूर्ण कथन पर उसने अपनी पत्नि का परित्याग कर दिया। उसे अग्नि परीक्षा का कष्ट सहन करने के लिए बाध्य कर दिया और तभी उसे वापस लिया।

दुःखद बात यह है कि राम ने वही गलती दूसरी बार भी दोहराने की नादानी की। भगवान राम, जिनकी आप मंदिरों में पूजा अर्चना करते हैं, इतने नादान थे। उन्होंने समाज की बातों में आकर दूसरी बार सीता की अग्नि परीक्षा ली थी। भारत में यह स्थिति अनन्त काल से चली आ रही है। आपको शायद उस बारे में कभी सोचने का भी समय नहीं मिला होगा क्योंकि सभ्यता की दृष्टि से आप कल के बच्चे हैं। आप सभी इतने बड़े नहीं हुये हैं कि स्वयं को सभ्य कहला सको। आपका प्रादुर्भाव कुछेक शताब्दियों पहले ही हुआ था। आपका साहित्य क्या है? आपकी संस्कृति क्या है? यह यूरोपीय परम्पराओं और संस्कृतियों का मिला-जुला रूप है।

मैं हजारों वर्ष पुरानी उस संस्कृति की बात कर रहा हूँ, जहाँ परस्पर आशंका की त्रासदी, अज्ञान, भ्रष्टाचार, मूर्खता, अंधविश्वास की गुलामी आदि का बोलबाला था। आज भी हमारी वही हालत है। हमें बहुत सावधान रहना होगा। यह लूँ या वह लूँ? क्या मैं दोनों ले सकता हूँ? हाँ यदि भगवान चाहें तो हमें ऐसा करना होगा अन्यथा यह बलिदान और चयन का समय है। यदि यह आवश्यक है, तो हमें ऐसा करना होगा। अन्यथा आप अपना जीवन जीने लायक हैं, बार-बार इस जीवन में आयेंगे और यह उम्मीद करेंगे कि किसी दिन आपके जीवन में कोई बड़ा हादसा

घटित होगा और अन्तरविवेक को झकझोर कर जगायेगा, "इन चीजों को छोड़ दो। ये खिलौने मात्र हैं।" ये आसान नहीं है। मनुष्य या तो बहुत विवेकशील तथा भगवत प्रेम से सराबोर महान संत हो, जो किसी भी चीज का हस्तक्षेप सहन नहीं कर सके अथवा उसे जीवन के ऐसे थपेड़े लगें कि उसे इस दुनिया से घृणा हो जाये और इससे अपना मुँह मोड़ ले। तभी इन चीजों के प्रति अनासक्ति का भाव पैदा हो सकता है।

अब सहज मार्ग ने **सहज मार्ग** दिखाया **है।** यह आसान है। यह न केवल अभ्यास में आसान है बल्कि इससे पिछली सभी त्रासदियों से छुटकारा मिल सकता है। यदि आप अपने जीवन साथी को समुचित स्थान दें, तो घर से भागकर जाने की पीड़ा से बचा जा सकता है। हाँ, हम जीवन रूपी जोखिम में साथ-साथ हैं। हम साथ रहते हैं, साथ सोते हैं, हम खास उद्देश्य के लिए बच्चे पैदा करते हैं। यह एक परिवार है। लेकिन आध्यात्मिक विकास का मेरा उद्देश्य सर्वोपरि है।

जैसे हम जब बीमार पड़ते हैं, तो अपनी बीमारी का इलाज कराना प्रथम कर्तव्य है। क्या आपका पति कह सकता है, "नहीं, नहीं डाक्टर पर पैसा मत खर्च करो।" या "तुम क्यों खाती हो? या तुम यह मँहगी दवा क्यों लेती हो?" यदि आप कामकाजी महिला हैं, तो पति चाहेगा कि तुम अपनी कमाई जारी रखने के लिये कार्य करती रहो और कहेगा, "जल्दी से ठीक हो जाओ। मुझे नहीं मालूम कि फ्रिज में क्या कुछ है, बच्चे रो रहे हैं।" इस प्रकार पूरा रिश्ता व्यक्तिगत स्वार्थ पर टिका हुआ है।

यह भी कोई नई बात नहीं है। उपनिषदों में याज्ञवल्क्य और उनकी दो पत्नियों का वर्णन आता है।याज्ञवल्क्य अपनी बड़ी पत्नी को आध्यात्मिक जीवन की शिक्षा देते हैं, "प्रिय नादान मत बनो। यह मत सोचो कि पुत्र तुम्हें पुत्र के नाते प्रिय हैं। वह तुम्हें अपनी खातिर प्रिय हैं। यह मत सोचो कि पत्नी को पति उसकी (पति की) खातिर प्रिय है। वह पत्नी को स्वयं की खातिर प्रिय है।" यह ज्ञान शायद दस हजार वर्ष पुराना है। याज्ञवल्क्य जैसी हस्ती ने यह कहा था। "आज भी जब कोई मर जाता है, तो यह सुनने को मिलता है, मैं क्या करूंगा?" दिवंगत आत्मा के बारे में कोई नहीं सोचता कि वह कहाँ होगी, किस अंधकार और किन दुःखों में भटक रही होगी तथा अपने ही बनाये मानसिक जाल की किस विभीषिका का सामना कर रही होगी।क्या कोई उसके बारे में सोचता है? क्या आप दिवंगत आत्मा के लिए रोते हैं? आप घर आकर स्वयं के लिए रोते हैं।

जीवन का यह कैसा स्वाँग तथा कैसी शर्मनाक स्थिति है कि हम दूसरों से प्रेम

का ढोंग रचते हैं, लेकिन प्रेम स्वयं से ही करते हैं। आदमी के जीवन में ऐसा मुकाम आता है कि विपत्तियाँ उसे भाग्य के दरवाजे पर लाकर खड़ा कर देती हैं। हम ऐसे ही समय से गुजर रहे हैं और भाग्य है दिव्यकरण का। यह केवल लहर नहीं बल्कि तूफानी लहर है। बाबूजी ने पूरी सच्चाई और विश्वास के साथ कहा और वादा किया था, " यदि आप अब नहीं कर सकते, तो सम्भवतः ऐसा अवसर हजारों वर्षों तक न आये।" मैं पूरी निष्ठा से इस पर विश्वास करता हूँ। यह उस जहाज के समान है जो एक बार चल पड़े, तो तुम्हें अगली बारी का इंतजार करना पड़ेगा। अगली बारी कब आयेगी? कौन जाने?

अमरिकीवासियों, भारतीय अमरीकियों और अमरीकी भारतीयों, आप सबको इन विचारों पर मनन करना चाहिये। मैंने जो कुछ कहा, उसमें से कुछ बातें परम आवश्यक हैं। मैं आपको अपने मालिक का संदेश पहुँचा रहा हूँ। मैंने जो कुछ उनसे सीखा, आपके समक्ष रख रहा हूँ। अच्छे ढँग से जीवन यापन करने में कोई बुराई नहीं, खरबोपति बनने में कतई बुराई नहीं बशर्ते कि आप अपना आध्यात्मिक मकसद नहीं भूलें और उसकी अभिलाषा रखना न छोड़ें। यदि आप ये सब भूल जाते हैं, तो ऐसे खरबोपति होंगे, जो आत्महत्या करेंगे, जिसकी बेटियाँ भागेंगी, नशे की शिकार होकर आत्महत्या करेंगी। मेरा मतलब है कि आज का समाज, संसार के ऐसे महान लोगों की कहानियों से भरा पड़ा है, जो खुदकुशी कर रहे हैं, अत्याचार कर रहे हैं, बलत्कार कर रहे हैं, एड्स से ग्रस्त हैं। ऐसे लोगों की खबरें अखबारों की सुर्खियों में आनी नहीं चाहिये।

सहजमार्ग में, जीवन में पक्षियों के दो पंखों की भाँति संतुलन बनाये रखने की बात कही गयी है। लोग मेरे मालिक के दस उसूलों को अपनी सुविधानुसार मनमाने ढँग से उद्धरित करते हैं। वे कहते हैं कि मालिक ने मुझे फलाँ-फलाँ करने की अनुमति दे रखी है। यही बात ध्यान पर भी लागू होती है। आप जानते हैं कि हम ध्यान का अभ्यास करते हुए भी एक अच्छा जीवन जी सकते हैं। लेकिन हम केवल अगले जीवन पर ध्यान देते हैं। अच्छी-अच्छी कारें हों, सुखपूर्वक छुट्टियाँ बितायें। लेकिन ध्यान का अभ्यास कैसे हो? "मैं ध्यान का अभ्यास नहीं कर सकती। मेरे पति ध्यान करने के लिए मना करते हैं।" ऐसा क्यों नहीं कर सकती? क्या आप हर काम में अपने पति की सुनती हैं? तो ध्यान के अभ्यास के लिये ही क्यों निजी हित की बलि चढ़ाती हो? क्या महिलाएँ किसी अन्य पुरुष के साथ प्रेम प्रसंग को लेकर अपने पति की अनुमति लेती हैं? अथवा क्या पुरुष किसी अन्य महिला के साथ जाने व उसके साथ हमबिस्तर होने के लिये अपनी पत्नी की अनुमति लेते

हैं? तो फिर केवल ध्यान के अभ्यास में ही पत्नियाँ हस्तक्षेप क्यों करती हैं?

अपने पति/पत्नी की इच्छा के बिना व उसकी परवाह किये बिना मौज करने की आजादी के बहुत ही गन्दे उदाहरण मैं आपके सामने ला रहा हूँ। लेकिन जब ध्यान का अभ्यास करने जैसी पवित्रता व दिव्यता की बात आती है, तो कहती हैं, "नहीं चारी, मेरे पति पसंद नहीं करते।" इसलिए कृपया इन सब बातों पर विचार करें। हमारे पास और अधिक आश्रम होंगे, और पुस्तकें आयेंगी, लेकिन यदि आप सुबह आधा घंटा, शाम को पन्द्रह मिनट और रात्रि को पन्द्रह मिनट भी नहीं दे पाते, तो ये सब कुछ बेकार है। चाहे शरीर कितना ही सुंदर हो, ताकतवर हो, लेकिन जीवन के बिना यह माँस का एक लोथड़ा भर है, जो जल्दी ही सड़ने लगेगा। याद रखो।

अतः शरीर और इसके श्रृंगार पर मत जाओ, न ही उस धन के पीछे दौड़ो जो इस शरीर को सजाने के लिए आवश्यक है। याद रखें, जिस क्षण आत्मा शरीर को छोड़ देती है, आप भी उस शरीर से डरने लगेंगे। जिस पति को आप ताऊम्र गले लगाकर चूमती-चाटती रही हैं, मरते ही उसे छुयेंगी भी नहीं। पतियों और पत्नियों पर यह बात समान रूप से लागू होती है। रात में लाश के साथ कौन सोना चाहेगा? क्या किसी में साहस है? यह हँसने की बात नहीं है। कोई नहीं चाहेगा। सब उस व्यक्ति से डरे हुये हैं, जिससे कभी उन्होंने प्यार किया था। अब यह स्पष्ट सबूत है कि कोई भी मृत व्यक्ति को प्यार नहीं करता बल्कि उसके तन से प्यार किया था, जो यहाँ शांत पड़ा है और जिससे अब आप भी भयभीत हैं।

हमें इन बातों पर विचार करना चाहिये, चिंतन मनन करना चाहिये और मंथन करना चाहिये। मेरा स्वयं के प्रति क्या दायित्व है? शेष सृष्टि के प्रति मेरा क्या दायित्व है? इसीलिए हम कहते हैं, " Charity begins at home." पहले अपना भला करें, तभी आप दूसरों का भला कर सकते हैं। केवल दूसरों का भला करो, आपका भला कोई नहीं करेगा। केवल भगवान आपका भला करेगा। इस बात को लिखकर दीवार पर टाँग लें। महिलाएँ अपनी रसोई की सिंक के ऊपर और पुरुष हाथ मुँह धोने तथा हजामत बनाने वाले दर्पण के ऊपर इसे टाँग लें। हर सुबह इस पर विचार करें। मैं मालिक से प्रार्थना करूँगा कि आपको अपने व्यक्तिगत विकास के लिये आत्म समर्पित होने के लिये आवश्यक साहस और शक्ति प्रदान करें। जैसा कि वह बार-बार करते थे, "यह अवसर बाद में नहीं मिलेगा।"

धन्यवाद।

14
देने का सही तरीका
वेस्ट प्वांइट, जोर्जिया
18 सितम्बर, 1988

बिल ने अभी दो मिनट के बारे में कुछ कहा,, उसने दो मिनट तक इस पर विचार किया और तभी उसे एक अनुभूति सी हुई कि कुछ घटित हो रहा है। मैं ब्रह्माण्ड के सृजन के बारे में सोच रहा था। हम अटलांटा, जोर्जिया में आश्रम के बारे में बात कर रहे हैं और मैं ब्रह्माण्ड के सृजन के बारे में सोच रहा था। हिन्दू पौराणिक कथाओं के अनुसार ब्रह्माण्ड के सृजन में कोई समय नहीं लगा। भगवान ने मनन किया, तथास्तु और वैसा ही घटित हो गया। मेरे विचार से आपके एक मशहूर वैज्ञानिक स्टीवन वाइनबर्ग ने 'द फर्स्ट थ्री मिनट्स' नामक एक पुस्तक लिखी है, जो ब्रह्माण्ड के सृजन के बारे में हैं। ऐसा लगता है कि प्रथम तीन मिनट बहुत महत्वपूर्ण थे। शायद वैज्ञानिकों की खोज के अनुसार एक सैकेंड के प्रथम एक हजार बिलियनवें हिस्से के भीतर शून्य में से एक जबरदस्त विस्फोट हुआ, जिसे सहजमार्ग में हम क्षोभ कहते हैं और इस ब्रह्माण्ड का जन्म हो गया। जैसा कि मैंने कहा कि एक सैकेंड के एक हजार बिलियनवें हिस्से के भीतर इसका तापमान ठंडा होकर दो सौ बिलियन डिग्री अथवा बीस मिलियन डिग्री तक आ गया जिसमें पदार्थ का संघटन होना शुरू हो गया।

इसका तात्पर्य यह हुआ कि विज्ञान किसी विचार का मूल्यांक ा एक सैकेंड के एक हजार बिलियनवें हिस्से तक करता है क्योंकि आपके पाश्चात्य वैज्ञानिकों के अनुसार ब्रह्माण्ड के सृजन में इतना ही समय लगा था। इसके बाद कुछ नहीं हुआ। इसके बाद तो केवल प्रक्रिया है। प्रक्रिया में समय लगता है। उसका तापमान दो मिलियन डिग्री से घटकर दो सो हजार डिग्री और इससे घटकर दो हजार डिग्री तक कम होता चला गया। एक तरफ सूरज है जो गर्म है, दूसरी तरफ धरती है जो ठंडी है, और इन दोनों के बीच में अन्तरातारकीय गैसें हैं जो आज भी संघटित हो रही हैं ओर कई ब्रह्माण्ड बन रहे हैं।

यह प्रक्रिया कुछ इसी तरह जारी रहेगी। जैसे बच्चे का जन्म होता है, तो उसके लिये आप दिनों, महिनों और वर्षो की योजना नहीं बनाते। आप उसके बारे में सोचते भी नहीं, उसके लिए कोई बजट भी नहीं बनाते और न उसके लिए कोई प्रार्थना करते हैं। हम केवल आनंद भोगते हैं। वेदों के अनुसार सृजन एक आनंदमय

कार्य है। इसे परमानन्द कहा जाता है। आनंदम् ब्रह्मेति विजयंत। परमानन्द के क्षण में गर्भ ठहरता हैं और गर्भ ठहरने में समय नहीं लगता, एक चीज दूसरी चीज से मिलती है और यह चमत्कार हो जाता है। जिसे निषेचन कहा जाता है। इसके बाद पुनः प्रक्रिया होती है और उसमें समय लगता है। ये निषेचित कोशिकायें विभाजित होती चली जाती हैं और कुछेक सप्ताह में कुछ ऐसी चीज उभर के समान आती है जिसे आप पहचान सकते हैं। तब कुछेक महीने में वह चीज मानव आकार ले लेती है। इसके बाद कुछेक महीने में आपको साफ-सुथरे ढंग से लिपटा हुआ एक पैकेज मिलता है, जिसे आप कहते हैं 'मेरा बच्चा'। पति कहता हैं 'ओह मेरी पत्नी ने पूरे नौ महीने कष्ट सहे हैं,' और पत्नी कहती हैं 'हाँ प्रिय मेरे लिए यह कष्टकारी समय था।' सृजन हमेशा ऐसा ही होता है।

सृजन की घड़ी असीम आनन्द की घड़ी होती है। उसके बाद तो यह हमेशा परेशानी का कारण बनता है मेरा आशय इसके शाब्दिक अर्थ से है। यह कोई मजाक नहीं है। जब हम आश्रम के बारे में सोचते हैं तब भी यही बात होती है।आश्रम का विचार करना और उसे अमलीजामा पहनाना नादान का काम है। यदि आदमी में दृढ़ इच्छाशक्ति है तो धरती की कोई ताकत उसे रोक नहीं सकती। यदि भगवान के सोचते ही तथास्तु हो सकता है तो मेरे मालिक भी यदि इसी तरह सोचें तो तथास्तु क्यों नहीं हो सकता। लेकिन प्रक्रिया कष्टप्रद है क्योंकि भगवान ने बीजारोपण किया और अपने विचार से अंतरिक्षीय डिम्ब को निषेचित किया।

इसके बाद कष्टप्रद प्रक्रिया शुरू होती है जो वास्तव में एक चमत्कारी प्रक्रिया है। एककोशिकीय जीव बहुकोशिकीय शरीर के रूप में परिवर्तित हो जाता है और उसमें जीवन का संचार शुरू हो जाता है। यह वास्तव में चमत्कारिक घटना है। मनुष्य की समझ में यह एक कष्टप्रद चीज है। लेकिन कोई चमत्कार कष्टप्रद कैसे हो सकता है। चमत्कार तो चमत्कार है यदि आप सृजन के उसी आनन्द के साथ जो बीजारोपण के समय महसूस किया था इस प्रक्रिया में भाग लें तभी इस चमत्कार का अनुभव होता है कि बीज विकास करके किसी चीज (जीव) को जन्म देता है। अन्यथा हमारी स्थिति बीज बोने वाले व्यक्ति जैसी होती है जो अपना बीज बोकर चला जाता है लेकिन उसमें पानी देने कभी नहीं आता। वह सोचता है, "मेरा काम पूरा हो गया।"

आज कार्य विभाजन के समय, जिसे पाश्चात्य जगत में आम़ विशेषज्ञता कहते हैं एक व्यक्ति बीज बोता है, दूसरा पानी देता है, तीसरा खाद देता है, चौथा कुछ ऐसी चीज को काट देता है जिसे नहीं काटना चाहिये और वह मर जाता है। सृजन

में विशेषज्ञता अच्छी नहीं होती। यह किसी तस्वीर में रंग भरने का प्रयास करने के समान है। सात कलाकार मिलकर रंग भरते हैं, एक सिर को रंगता हैं एक गर्दन को, एक धड़ को, दो बाहों को और दो पाँवों को रंगते हैं। रचनात्मकता की कैसी भौड़ी बानगी तैयार होती है?

अतः सृजन एक ही व्यक्ति का कार्य होना चाहिये। हम इस जिम्मेदारी को दूसरे व्यक्तियों को टुकड़ों में बाँटकर नहीं दे सकते। सृजन प्रक्रिया में परेशानी, दर्द और कुण्ठा नहीं होती। यह ऐसी प्रक्रिया है जिसमें आप अपने बोये बीज को हरे-भरे पेड़ के रूप में विकसित होते देखते हैं। यदि इसे समस्या मानें तो यह आपकी मूर्खता है। मेरे विचार से कोई भी असली माली अपने कार्य को बोझ नहीं मानता। दो घण्टे की निराई-गुड़ाई के बाद जब वह उठता है तो उसकी गर्दन में ऐंठन तथा पीठ में दर्द होता है। लेकिन वह अंगड़ाई लेता है और सब कुछ छू-मंतर हो जाता है। वह कहता हैं मेरे बगीचे को देखो। इससे परेशानी तो नहीं होती तुम्हें? वह कहता है 'नहीं बिना देखभाल किये अच्छी चीज कहाँ बनती है?' यदि पेरशानी से बचना होता तो कोई बाग क्यों लगाता।

मालिक ने जो बीज बोया है उसके पालन-पोषण का दायित्व हमारा है क्योंकि हम छोटे माली, गार्डन ब्वॉय और पानी देने वाले हैं। यह सोचना बहुत अहंकारपूर्ण होगा कि हमने कुछ बनाया है। हम तो किसी नाटक की भाँति उसमें काम करने वाले कलाकार हैं। हर कलाकार सोचता है कि वह सृष्टि का रचयिता है। जैसे कल बच्चों ने एक नाटक खेला था। वह बहुत अच्छा नाटक था। उसका मंचन बहुत बढ़िया था। इस नाटक में हर बच्चे ने पूरी लगन से भाग लिया था और उनमें से प्रत्येक को लगता था मानों पूरा नाटक उसी पर आश्रित हो। हमें इस तरह की भागीदारी की जरूरत है। हमें ऐसी भागीदारी नहीं चाहिये कि कोई सौ डालर या हजार डालर का बिल हमारी झोली में डालकर सोचे कि उसने बहुत बड़ी कुर्बानी दी है। इस तरह की कुर्बानी से चमत्कार नहीं होते, इससे तो भिखारी पैदा होते हैं।

मेरे विचार से यह सोचना बुरी बात है कि हम मिशन के लिये तथा आश्रम के लिए दान दे रहे हैं। आप स्वयं को दाता के रूप में अलग रखकर मिशन को अपने ऊपर आश्रित तथा मालिक को एक प्रकार का संत भिखारी बना देते हैं। भले ही आध्यात्मिक दृष्टि से वे कितने ही उच्च क्यों न हों। यदि आप सोचें कि मिशन आपका है मालिक आपके हैं उनका लगाया हुआ पौधा भी उसी तरह आपका है जिस प्रकार एक बच्चा अपने बाप के घर को अपना घर समझता है, अपने बाप

के बगीचे को अपना बगीचा समझता है, तब तो कोई बात है। तब दान अथवा बलिदान देने जैसी भावना नहीं आती। यदि आप अपने पौधे को पानी दे रहे हैं तो इसका श्रेय किसे देंगे? हम थोड़ा-बहुत दान दे देते हैं और फिर अपने ऊपर गर्व करते हैं, 'मैंने सैंकड़ों हजार डालर दान दिया।' 'हाँ दिया' लेकिन मालिक को दान करने के लिए तुम्हें सैंकड़ों हजार डालर किसने दिये?

मैं आपको एक छोटी सी कहानी सुनाना चाहता हूँ। असम राज्य में एक व्यक्ति था, जो व्यापार शुरू करने जा रहा था। वह एक नौसिखिया युवक था बाबूजी ने उससे कहा, 'मैं तुम्हें बिजनेसमैन बना दूँगा।' कुछ समय में मेरे विचार से सात या आठ साल बाद यह आदमी करोड़पति बन गया। उसकी कई फैक्ट्रियाँ थी अच्छे-खासे बैंक खाते थे ओर वह यदा-कदा मिशन के लिए मालिक को कुछ पैसे दे दिया करता था। उसे इस बात का घमण्ड हो चला था कि अब मैं अपने मालिक की सहायता कर रहा हूँ। तभी एक बार उसने एक बड़ी राशि दी, जिसे बाबूजी ने अस्वीकार कर दिया। उन्होंने कहा, 'नहीं, नहीं, यह तुम्हारे लिए बहुत ज्यादा है।' उसने कहा 'नहीं नहीं मैं समृद्धिशाली हूँ और इतना तो दे सकता हूँ। शायद इसकी तीन गुणा राशि दे सकता हूँ।' उसने कह तो दिया, लेकिन उसे लगा कि मिशन उसके बिना टिक नहीं सकता और शायद उसके बिना बाबूजी का अस्तित्व नहीं रह सकता। शेष तो इतिहास बन चुका है। उस व्यक्ति का कारोबार चौपट होने लगा। वह घाटे में चला गया। मैने कहा, 'बाबूजी क्या ये सब आपने किया है?' उन्होंने कहा, 'तौबा तौबा'। उसका रवैया मालिक के प्रति इतना घटिया था कि आखिर कुदरत को हस्तक्षेप करना पड़ा।

हमें हमेशा उस बच्चे या बेटे की बात याद रखनी चाहिये जो पहली बार काम पर जाता है। उसे तनख्वाह मिलती है और घर आता है। भारतीय परम्परा है कि बेटा अपनी तनख्वाह का पैकेट अपने पिता को सौंपता है। इसमें यह अहंकार की भावना नहीं होती कि पिताजी, देखो मैंने क्या कमाया। यह आपका पैसा है इसे अपने पास रख लें। ये सुनकर के तो पिता रो पड़ेगा। वह उसे स्वीकार तो कर लेगा क्योंकि वह अपने बेटे की भावनाओं को आहत नहीं करना चाहता, लेकिन अपने कमरे में जाकर वह रोयेगा मैंने 'यह कैसा शैतान पैदा किया। मैंने इसे जन्म दिया, पढ़ाया, लिखाया, प्यार किया और आज यह डालर का पैकेट मेरे मुँह पर मारकर कहता है, यह लो पिताजी यह आपका है।'

पूरब में हमारी परम्परा में हम अपनी तनख्वाह सम्मानपूर्वक अपने पिता के चरणों में रखते हैं और उनसे विनम्र भाव से अनुरोध करते हैं, 'मैं आप ही के

आशीर्वाद से यह पैसा कमा पाया हूँ यह आपका है। इसे स्वीकार करें।' यह उसी तरह की भेंट है, जैसी फाल्गुन के दिनों में जब धान कटता है तो पहली फसल के समय फाल्गुन देवता को भेंट चढ़ाई जाती है और बाद में शायद चर्च बगैरह में भेंट चढ़ती हैं। मैं कुछ लोगों को जानता हूँ जो अपनी तनख्वाह के पैसे लेकर आते और कहते, 'बाबूजी आपकी कृपा से ये पैसे कमाये हैं यह आपके हैं।' स्वीकार करने की भावना से मालिक उसमें से एक रुपया ले लेते और कहते, भगवान करे तुम खूब कमाओ।

यह परम्परा है। जब लड़की को पहली संतान पैदा होती थी तो वह उसे लाकर अपने पिता के चरणों में रख देती थी। यह वंश का स्थायीकरण है। वह कहती आप न होते, तो मैं न होती। मैं न होती तो यह न होता। अतः आपके बिना इसका कोई अस्तित्व नहीं है। और यदि A=B और B=C तथा C=A हो, तो A के बिना B नहीं हो सकता, B के बिना C नहीं हो सकता और C के बिना A नहीं हो सकता, यही आधारभूत जीवन है।

मुझे ज्ञात है बाबूजी ने एक बार छः सौ हजार डालर के बराबर राशि का दान अस्वीकार कर दिया था। इसे अस्वीकार करने में मेरी भी आंशिक भूमिका थी क्योंकि इसमें बहुत अहंकार का भाव था। मानव इतिहास के किसी भी युग में छः सौ हजार डालर एक बड़ी राशि है। जैसा कि कहा जाता हैं छः सौ हजार डालर तो आप सूँघ भी नहीं सकते। लेकिन उसे अस्वीकार कर दिया गया। प्रायः हम खेल-खेल में इस तरह के खेल खेलते हैं जैसे पोस्टकार्ड बेचना। किसी को यह नहीं सोचना चाहिये कि आधे डालर या पैंतीस सैंट का एक पोस्टकार्ड खरीदकर वह मिशन की सहायता कर रहा है।

एक पुरानी कहानी है। एक मुर्गी का बच्चा घूम रहा था। उसके ऊपर बांजफल गिर पड़ा और वह कहने लगा कि 'आसमान गिर गया।' यदि बांजफल सिर पर रखा होता है तो उसे यह नहीं सोचना चाहिये कि उसने आसमान को अपने सिर पर धारण कर रखा है। याद रखें कि एक संगठन खड़ा करने में हजारों डालर से अधिक राशि की जरूरत पड़ती है। इसके लिये दिल की जरूरत पड़ती है। ईंट और मसाले के संगठन तो कोई भी बना सकता हैं और दुनियाँ ऐसे संगठनों से भरी पड़ी है जैसे अच्छे-अच्छे संग्रहालय, प्रसिद्ध वास्तुकारों द्वारा बनायी गयी आश्चर्यजनक इमारतें आदि। लेकिन धरती का एक छोटी सा कम्पन उन्हें धराशायी करके रख देती है। मनुष्य के सृजन को एक तूफान नेस्तनाबूद कर देता है। सामान्य स्तर से थोड़ी सी ऊँची लहर से पूरी तटीय सभ्यता का नाश हो सकता है। आसीमोव ने

मनुष्य के सामने मौजूद सभी सम्भावित आपदाओं के बारे में एक किताब लिखी है जिसमें इस तरह की कई बातों का उल्लेख है। इसे पढ़ना अच्छा लगता है। लेकिन आसीमोव ने सम्भावनाओं के केवल किनारों को ही छुआ था।

पूरी सृष्टि का नाश करने के लिये केवल एक आपदा ही काफी है। केवल एक आपदा। इस असीम अनन्त ब्रह्माण्ड का एक विचारधारा से सृजन हुआ। कोई नहीं जानता कि ब्रह्माण्ड का अंत कहाँ है क्योंकि ज्ञान की सीमा वह वस्तु है जो लगभग प्रकाश के वेग पर घूम रही है। उसमें क्या हो रहा है, इसका हमें ज्ञान नहीं होता। ब्रह्माण्ड से आगे भी कई ब्रह्माण्ड हो सकते हैं, लेकिन हमें जानकारी नहीं है। हम अज्ञात ब्रह्माण्ड में रहते हैं और स्वयं को बुद्धिजीवी कहते हैं। हमने प्रकृति पर विजय पा ली है। **विज्ञान में जानने के लिए कुछ शेष नहीं है** - मेरे कहने का अर्थ है कि वैज्ञानिक इतना अहंकार कैसे कर सकते हैं जबकि वास्तव में हमें यह भी ज्ञात नहीं कि जिस ब्रह्माण्ड में हम रहते हैं, उसकी हद कहाँ तक है? हमें यह भी नहीं मालूम कि हमारी आकाश गंगा में कितने तारे हैं? इनकी गिनती करना असम्भव है।

जब हम ब्रह्माण्ड की विशालता में झाँकते हैं तो कभी-कभी हमें वास्तव में यह महसूस होता है कि इन सारी चीजों में मेरा अस्तित्व क्या है? तभी हमें यह एहसास होता है कि हम अणु का बहुत छोटा हिस्सा हैं। तथापि, हममें कुछ बात है, कोई उद्देश्य है जिसके लिये हमारा सृजन हुआ है। वह उद्देश्य हमारे स्वयं के लिये तथा स्वयं के विकास का है।

भगवान हमारा मोहताज नहीं है। कुछ दार्शनिकों ने यह सोचने की भूल की है कि भगवान का उद्‌भव तभी होता है जब हमारा उद्‌भव होता है। भगवान का विचार हमारे मन में उठता है। लेकिन भगवान शाश्वत है। बेटा जैसे-जैसे बड़ा होता है वैसे-वैसे उसका अपने पिता के प्रति नजरिया बदलता रहता है। बेटी जब बड़ी होती है, तो उसका अपनी माँ के प्रति नजरिया अलग तरह का होता है। जब वह स्वयं माँ बनती है तभी माँ को सही ढँग से समझ पाती है। मेरे बदलने से भगवान कैसे बदल सकते हैं या वह थोड़े से चावल, थोड़े से अंगूर, मुठ्ठी भर धान अथवा बकरे की बलि के रूप में मेरे चढ़ावे पर मोहताज कैसे रह सकते हैं? और हम आत्म संतुष्ट होकर वापस आकर बकरा पकायें-खायें और कहें, 'मैंने भगवान को यह चढ़ावा चढ़ाया।'

हर परम्परा में ऐसी कहानियाँ मिलती हैं कि जब-जब मनुष्य ने अहंकार तथा घमण्ड किया, तब-तब उसका पतन हुआ है। भगवान के सोचने मात्र से एक नहीं

अनेकों ब्रह्माण्डों की सृष्टि हुई है। जब हम एक ब्रह्माण्ड को नहीं जानते तो यह कैसे जान सकते हैं कि दूसरे ब्रह्माण्ड कहाँ हैं? हैं भी या नहीं? हम सोचते हैं कि हम भगवान की पूजा अर्चना कर रहे हैं, अपनी मन्नत के चढ़ावे से उन्हें तुष्ट कर रहे हैं जैसा कि इसाई धर्म में इसका सुंदर ढंग से वर्णन आया है 'प्लेट में एक पैसा।' मैं तो यह भी नहीं जानता कि इस पर हँसना चाहिये या नहीं क्योंकि हमारा विश्वास है कि भगवान हमारे समक्ष उसी तरह से प्रकट हो सकते हैं जैसे हमारे मालिक। वह हमें पशु से संत बना सकते हैं। यही हमारे विकास की पराकाष्ठा है। हम क्षणभर के लिये यह भी सोच लेते हैं कि हम अपने पैसे से उनकी मदद करने यहाँ आये हैं।

वैसे तो सहजमार्ग में पाप की कोई धारणा नहीं है, लेकिन ऐसा सोचना मात्र भी एक पाप हो सकता है कि हम थोड़े पैसे देकर कंकड़ पत्थर जोड़कर आश्रम बनाते हैं और कहते हैं कि हम उनके नाम का प्रचार-प्रसार करते हैं। यह सब कहकर मैं यह बताना चाहता हूँ कि मालिक के प्रति हमारी क्या अवधारणा होनी चाहिये। उनका गुणगान करने से क्या फायदा? वे स्वयं भगवान हैं, कमजोर सी मानव काया और छड़ी के सहारे चलते हुए दिव्यता की साक्षात प्रतिमूर्ति हैं। आप उनसे कह रहे हैं बाबूजी मैं आपके लिए सौ रुपए लाया हूँ इससे शाम को आपके लिए कुछ दूध तो आ ही जाएगा। मेरा अर्थ है कि यह कैसे संभव हैं? इसे सही ढंग से दिल से समझना बहुत जरूरी है कि मालिक कौन हैं, क्या हैं, हमारे लिये क्या कर रहें हैं और हमारे ही माध्यम से हमारे लिए उनका क्या करने का इरादा है। मुझे आशंका है कि जब भी मालिक हमसे कुछ दान करवाते हैं- मुझे दान शब्द अच्छा नहीं लगता लेकिन क्या करूँ, हम लोग आमतौर पर इसी शब्द को समझते हैं तो शायद वह हमारे भार को कम करने का प्रयास करते हैं। वह कहते हैं यह भार मुझे दे दो, मैं लेकर चलता हूँ। जैसा कि उन्होंने शायद 'सत्य का उदय' में अपने एक पैराग्राफ में खूबसूरत ढंग से उल्लेख किया है कि भारत में जब हम ट्रेन से सफर करते हैं, तो देखते हैं कि कुछ हताश यात्री अपने सर पर सामान उठाये चले आ रहे हैं। मालिक कहते हैं, ठीक है, ट्रेन के निकट पहुँचने तक सामान को सिर पर उठाये रखना ठीक है, लेकिन ट्रेन में सवार होने के बाद भी इसे अपने सिर पर क्यों उठाये हुए हो? इसे नीचे क्यों नहीं रख देते? इस प्रकार वह हमारे अधिकार, धन लोलुपता और अपराध बोध का बोझ कम करते हैं क्योंकि हममें से अधिकतर लोग जो पैसा कमाते हैं संभवतः वह निष्कलंक नहीं होता। हम इसे मालिक को अर्पित कर पवित्र कर लेते हैं। अब वह मेरा नहीं रह जाता। यह एक रास्ता है।

दूसरा रास्ता, रामायण में एक सुंदर परम्परा है कि जब भगवान राम अपनी

पत्नी की तलाश में लंका पर चढ़ाई करने के लिए भारत के तमिलनाडु राज्य के तट पर पहुँचे, तो उन्हें समुद्र की मिट्टी से पाटकर एक पुल बनाना पड़ा क्योंकि उस समय कोई इंजीनियर या सिविल इंजीनियर नहीं थे। उनको समुद्र पार करने के लिये मिट्टी और पत्थर खोदकर समुद्र में डालने पड़े ताकि एक पगडंडी जैसी बनाई जा सके। कहा जाता है कि गिलहरियाँ अपने मुँह में मिट्टी भर-भर के लाईं और इस कार्य में उनकी मदद की। उनके इस श्रम से प्रसन्न होकर भगवान राम ने अपनी अंगुलियों से एक गिलहरी को थपथपाया। आज भी उनकी तीन अंगुलियों के निशान गिलहरियों की पीठ पर कायम हैं। गिलहरियों ने यह नहीं कहा, 'राम देखो हम तुम्हारी कैसे सहायता कर रही हैं। हमारी मदद के बिना तुम यह पगडण्डी नहीं बना सकते थे।'

मेरे विचार में मालिक के काम में हमारा सहयोग वैसा ही है जैसा भगवान राम के काम में गिलहरियों का था। गिलहरियों के काम का जो पुरस्कार मिला, उसका कारण यह था कि उन्होंने यह काम भगवान के प्रेम से वशीभूत होकर किया था, उनकी मदद करने की भावना से नहीं। भगवान की मदद करने वाले हम कौन होते हैं। लेकिन गिलहरियों ने यह काम बच्चों की भाँति भागीदारी की भावना से किया था। जब आप रसोई में जाते हैं तो बच्चे भी रसोईघर में जाना चाहते है। यह उनकी भागीदारी की भावना ही तो है। यदि इसी भावना के तहत भगवान के भक्तजन और मालिक के हम प्रेमी लोग अपना सर्वस्व अर्पण करें चाहे वह भौंहों का पसीना ही क्यों न हो तो पर्याप्त है। इससे अधिक की आपसे अपेक्षा कौन करता है? आप सभी बाइबल में सुनहरे बछड़े की कहानी से परिचित होंगे। जब मोसेज पहाड़ पर गया, तो वह पाक दिल था और सभी लोग खुशियाँ मना रहे थे। मोसेज उन्हें यूनान से निकाल कर लाया था। जब वह नीचे आया तो पाया कि बाल और बालम ने पुनः अपना आधिपत्य जमा रखा है। उसे क्रोध आया। जितने समय में वह पहाड़ चढ़ा, दस शिक्षायें लीं और नीचे आया, तब तक भ्रष्टाचार फैल चुका था।

हमें अपने मन से इस विचार को पूरी तरह निकाल देना चाहिये कि मैं मालिक की मदद कर रहा हूँ। हम जानते भी नहीं कि मालिक अमरता में निवास करते हैं। उनका अस्तित्व ऐसे आयाम में है जहाँ पैसे की कोई भूमिका नही है। अर्थात जिनके सोचने मात्र से ब्रह्माण्ड का सृजन हो सकता है, उन्हें इस दुनिया की सम्पदा के अभाव से कोई कष्ट नहीं हो सकता है यदि वह हमें इस काम में भागीदार बनाते हैं तो यह उनकी उदारता है बड़प्पन और हमारे प्रति उनका प्रेम है ताकि भागीदार होकर हम उनके परिवार में शामिल हो सकें। दुर्भाग्यवश, जन्म से हम उनका

परिवार नहीं बन सकते हैं। एक गुरु के छह बिलियन बच्चे नहीं हो सकते। लेकिन वह पिता की हैसियत से प्यार करके हमें अपनी संतान बनाते हैं। तब वह चाहते हैं कि हम मददगार समर्थक तथा दानकर्ता के रूप में नहीं बल्कि उनके बच्चों की भाँति इस दिव्य कार्य में शरीक हों।

मुझे मालूम है कि उन्हें कभी-कभी पैसे लेने में कितनी पीड़ा होती थी और फिर वह यह पैसा अन्य किसी को दे देते थे। यदा-कदा तो उन्हें पैसा इसलिये लेना पड़ता था क्योंकि वह इंकार नहीं कर सकते थे। आपको नहीं मालूम कि लेना कितना मुश्किल होता है। लोग सोचते हैं कि देना बहुत मुश्किल है। लेकिन लेना कहीं अधिक मुश्किल है क्योंकि जब आप लेते हैं तो लेने वाले में अव्यक्त बंधन बन जाता है, जिसे उन्हें किसी तरह लौटाना पड़ता है। उन्हें आभार महसूस होता है। जब प्रेम के साथ दिया जाता है तो आभार नहीं होता। जब आपका बेटा आपको गुलाब का फूल देता है तो आप उसे बदले में शराब की बोतल नहीं देते। वह आपका बेटा है। वह आपके लिये गुलाब लाता है। आप कहते हैं इसे फूलदान में रख दो। यह तुम्हारा गुलाब है यह मेरा गुलाब है यह हमारा गुलाब है लेकिन यदि उसकी लम्बाई छह फुट दो इंच हो, छः साल अमरीका में रहकर आया हो तो कहेगा 'Hey Dad, take this' और इसे यूँ फेंक देगा----। मैंने बेटों को ऐसा करते देखा है, तब यह बात बहुत पीड़ाजनक लगती है।

वस्तु की कीमत स्वयं वस्तु में नहीं बल्कि इस बात में होती है कि यह किस भावना से दी जाती है। अतः मैं लोगों से प्रायः यह कहता हूँ कि कैसे दिया जाता है यह नहीं जानते, तो मत दो। क्या देना है? यह नहीं जानते, तो मत दो। कब देना है? यह नहीं जानते, तो मत दो। जब पत्नी मरणासन्न हो, तो उसे हीरा देने का क्या फायदा? जब वह अच्छी भली थी और उसका जन्म दिया आया, तब आपने देने का सोचा तक नहीं। आप फ्रेंकफर्ट में थे और उसके लिये इतनी दूर से टेलीफोन करने के लिये आपने क्रेडिट कार्ड का उपयोग किया था। जब वह मरणासन्न है, तो उसके लिए हीरा लाये हैं। क्या फायदा? वह कहेगी, "प्रिय, जब मेरी आत्मा शरीर को छोड़ रही है, इस मुकाम पर यदि आप मुझे प्यार का एक शब्द कहते तो मुझे ज्यादा खुशी होती।"

इस प्रकार कब देना है, क्या देना है, कैसे देना है ये कुदरत के तीन रहस्य हैं। लेना बहुत मुश्किल है। देना आसान है। इसीलिए पौराणिक कथाओं में उल्लेख मिलता है अथवा जैसा कि मेरे मालिक कहा करते थे कि वह देने का कार्य बिना किये ही दे दिया करते और हमें इसका आभास भी नहीं होता था। प्राणाहुति क्यों?

सभी प्राचीन परम्पराओं में हाथों का स्पर्श तथा मंत्रोच्चार का प्रावधान था। यह ऐसी प्रक्रिया थी जो दिखाई देती थी, जिसे मानना पड़ता था और जिसमें पाता, दाता आभार या ऋण महसूस करता था। यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। सिर्फ बैठना होता है। प्रायः हमारे लोग कहते हैं, 'मुझे कुछ भी महसूस नहीं हुआ। उन्होंने मेरे लिये क्या किया?' 'मुझे नहीं मालूम। हो सकता है कि उन्होंने कुछ किया हो?'

मालिक देने का आभास कराये बिना सब कुछ दे देते हैं। उनसे पाने वाले का आत्मसम्मान नष्ट नहीं होता और देने वाले का भी आत्मसम्मान नष्ट नहीं होता। जब आप किसी महान व्यक्ति को कुछ देते हैं और सोचते हैं कि आपने उसे कुछ देकर अनुगृहीत किया और आपने एक महान कार्य किया है तो आप स्वयं को छोटा बना रहे हैं। हम भिखारी बन रहे हैं इसलिए दान का सही तरीका लेना नहीं बल्कि उसमें शिरकत करना है। यह मेरा घर है, इसे मेरे पिताजी बना रहे हैं। मेरे पास एक ईंट है। मैं इसे यहाँ लगा देता हूँ। दूसरा बेटा आता है और कहता है, 'पिता जी आप जानते हैं मैं एक बढ़ई हूँ, मैंने ये थोड़ी-सी लकड़ी बचा कर रखी है। इसे इस खिड़की में लगा दूँ, तो कैसा रहेगा?' वह कहते हैं, 'बेटे, ठीक है। ये तुम्हारा बैडरूम है। यह अच्छी लग रही है, इसे वहीं लगाना चाहिये।' इस प्रकार हम मालिक के लिये नहीं, अपने लिये भवन तैयार कर रहे हैं। यदि कोई सोचे कि वह मिशन के लिये और मालिक के लिये मकान बना रहा है और उसका नाम हमेशा के लिये रोशन होगा, तो बेवकूफी होगी।

मैं सुझाव देना चाहूँगा कि जो लोग दान करके अभिमान करते हों, उन्हें दान नहीं करना चाहिये। ऐसा करके आप स्वयं पर अत्याचार करते हैं। आप ऐसे व्यक्ति को, जो वास्तव में आपको सब कुछ दे रहा है, दान देने की भावना से स्वयं को बोझिल कर लेते हैं। यह एक ऐसा भार है, जिसे हम सहन नहीं कर सकते। हमसे इस भार को वहन करने की अपेक्षा नहीं की जानी चाहिये। यदि आप कुछ देते हैं तो इस भाव से दीजिये कि, 'यह मेरा घर है, पिता जी! मुझे अधिकार है कि मैं इसे आपके साथ मिलकर बनाऊँ। आप योजना बना रहे हैं। हम इसका निर्माण कर रहे हैं। मेरे पास जो कुछ है, मैं आपको देता हूँ। आपके पास जो कुछ है, उसे भी इसमें मिला लीजिये। मेरे सभी भाई यहाँ मौजूद हैं। यह हमारा घर है। यह सही बात है कि हमें इसमें शिरकत नहीं करनी चाहिये।' वे ईंटे किसकी हैं? कौन जाने? जिस व्यक्ति ने आधा मकान बना लिया है सम्भवतः प्रातः जीवित रहे और जिस व्यक्ति ने कुछ भी नहीं दिया, हो सकता है कि वह उसमें हमेशा के लिए आकर रहने लगे।

क्या आप यह तय कर सकते हैं कि हम जिसका उपयोग कर रहे हैं, उसके लिये

हमें कितना दान देना चाहिये? 'नहीं, नहीं मैं यहाँ तीन दिन के लिए आया हूँ, मैं इस मिशन के लिए दान क्यों करूँ?' आपसे दान करने के लिये किसने कहा? यह सोचना एक भ्रांति है कि इस मिशन में धन के लिए कभी भी माँग होती है। नहीं, ऐसा नहीं होता। हाँ, कभी-कभार मैं अपराध बोध महसूस करता हूँ क्योंकि कभी कभी लोगों से मजाक करता हूँ और पोस्टकार्ड तथा अन्य चीजें बेचता हूँ। लेकिन इसमें थोड़ा-सा आनन्द मिलता है। मानो कोई बाप अपने बेटे को कोई चीज बेच रहा हो अथवा कोई बाप अपने बेटे को पैसे का महत्व समझाने के लिए **ऋण** दे रहा हो। जब बाप पैसा देता है, तो कभी-कभार बेटा नशाखोर हो जाता है और उसे होश नहीं रहता कि पैसे का इस्तेमाल कैसे करें। ऐसे में आप कहें,' देखो, यह दस हजार डालर **ऋण** है। इसे तुम्हें मुझे ब्याज सहित अदा करना होगा।' यह दोनों के बीच एक मजाक है। मेरे विचार से कोई बाप अपने बेटे से पैसा वापस देने की माँग कभी नहीं करता। यह सब तो उसे एक सबक सिखाने के लिये है।

हमारे पिता जब हमें शिक्षा देते हैं और हमें दस नियम देकर हमारे ऊपर हास्यास्पद समस्यायें लागू करते हैं, तो इसका उद्देश्य हमारा विकास करना है। ये उद्देश्य है आध्यात्मिक जगत के ऐसे नागरिक बनाना, जो सृष्टिकर्ता के सामने खड़े होकर उनकी आँखों में आँखें डालकर ये कह सके, 'अब आपके और मेरे बीच कोई अन्तर नहीं। हालाँकि आपने मुझे बनाया था, लेकिन मैंने भी प्रक्रिया में कुछ सहयोग दिया था।' यदि बाप पूछे, 'तुम्हारा क्या सहयोग था?' तो आप कह सकते हैं, 'मैंने आपको सहयोग दिया। मैंने आपकी आज्ञा मानी।'

आध्यात्मिक जगत में यह **कुछ बनने** का रहस्य है। जब तक हम सहयोग नहीं करते, जब तक हम दिल से, निरपेक्ष भाव से और पूरी तरह आज्ञा पालन नहीं करते, तब तक हम उस लक्ष्य तक नहीं पहुँच सकते, जिसके लिये मालिक हमारे चाकर बन कर रह रहे हैं। हो सकता है कि रास्ते में ऐसे सैंकड़ों, हजारों मुकाम आयें, जो इस दुनिया की तुलना में कहीं ऊँचे हों। यह हवा में उड़ने जैसी बात है। जब आप धरातल से भले ही सौ फीट ऊँचे उड़ रहे हों आपको इस बात की खुशी होती है कि आप उन सभी चीजों से ऊँचे हैं जिनकी ऊँचाई से आप परिचित हैं, अभ्यस्त हैं। आप ऊँचाई पर हैं। लेकिन यहाँ लक्ष्य सम्पूर्णता का है, सम्पूर्ण परिवर्तन। इसका तात्पर्य किसी ऐसे अलग से स्थान से नहीं है, जहाँ आपको दुकानें, अच्छी कॉफी की सुविधाएँ उपलब्ध हों और जहाँ आप परमानन्द की स्थिति में रह सकते हैं क्योंकि कोई आपसे भुगतान करने को नहीं कह रहा है।

यदि आप बिना समर्पण के सम्पूर्ण परिवर्तन का लक्ष्य हासिल करना चाहते हैं,

तो यह सम्भव नहीं होगा। सहयोग और आज्ञा पालन दोनों को मिलाकर समर्पण कहा जाता है। समर्पण होने पर सम्भवतः मालिक अगले क्षण यह कहने के लिये विवश हो जायें, 'मैंने सोचा तुम एक अभ्यासी हो, लेकिन अब लगता है कि तुम मेरे पुत्र हो', उन्हें दुर्भाग्यवश यह कहना पड़ता है,' तुम सोचते हो कि तुम मेरे पुत्र हो, लेकिन तुम तो मात्र अभ्यासी हो।' इसलिए हमें मालिक की संतान बनना है। अभ्यासी, प्रशिक्षक तथा मध्य क्षेत्र और शक्ति व पोजीशन की इन क्रम परम्परा जैसी व्यर्थ बातों को भूल जायें। मुझे उन्हें वहीं समझना चाहिये, जो वह वास्तव में हैं। ये तभी सम्भव है, जब मैं उनके जैसा बन जाऊँ, जब मैं उनको देखूँ उस दर्पण में मुझे अपनी ही छवि दिखे। तब वह मुझे देखकर कहें, 'हाँ, मैं जानता था कि मैं ही हूँ। अब मैं इसे तुम्हारे भीतर देख रहा हूँ। अतः मैं स्वयं को भी जानता हूँ। मेरे बेटे, इसके लिए तुम धन्यवाद के पात्र हो।'

यह वह दिव्य कार्य है, जिसके लिये हमें कमर कसकर तैयार रहना चाहिये। आपको यहाँ सप्ताहांत बिताने का उद्देश्य लेकर नहीं आना चाहिये और न ही एक आध सिटिंग लेकर यह सोचें कि हमने अगले साल तक काफी कुछ कर लिया है। कल मुझे किसी ने कहा, 'इसका प्रभाव तब तक रहेगा, चारी, जब तक आप वापस नहीं आ जाते।' उसने कहा, ''मैं यहाँ कुछ घण्टों के लिये आया हूँ लेकिन मैं सोचता हूँ कि मैंने इतना कुछ हासिल कर लिया है कि वह अगली बार अर्थात आज से पंद्रह महीने तक चलेगा।' मैंने कहा, 'काश, मैंने ऐसी सिटिंग अपने मालिक के साथ की होती, 'जहाँ मैं आधे घण्टे के लिये उनसे मिलता, और उसका प्रभाव पंद्रह महीनों तक चलता। यह प्रेम का रिश्ता है। क्या आप अपने प्रेमी से पंद्रह महीने में मिलें, एक बार मिलें, एक आध शब्दों का आदान-प्रदान करें और गले लगाकर कह सकते हैं, डार्लिंग अब के लिये काफी है। हम पंद्रह महीने बाद मिलेंगे।' देखिये आध्यात्मिक जीवन को लोगों ने क्या मजाक बना रखा है। इसके वास्तविक अर्थ को कितनी बड़ी भ्रांति और अज्ञान के आवरण ने ढक रखा है।

आध्यात्मिकता एक आध सिटिंग नहीं है, एक सफाई सत्र नहीं है और न ही मिशन को दिया गया है, भले ही वह कितना ही बड़ा क्यों न हो। यह सम्पूर्ण समर्पण है और हरि इच्छा में आकण्ठ सराबोर होना है। इसलिये हम जब उसमें से वापस आयें जब मालिक हमें आध्यात्मिकता की नदी में से बाल पकड़कर बाहर निकालें तब हम पहले जैसे नहीं रहेंगे बल्कि पूर्णतः भिन्न व्यक्तित्व बन जायेंगे। यह मालिक का निमंत्रण है। धरती पर उनके जीवन का यही उद्देश्य है। इसी लक्ष्य को लेकर वह हमारे पास आते हैं। इसी मंशा से वह हमारे लिये एक संगठन खड़ा करते हैं

और इसी मंशा से हमारे लिये आश्रम बनाते हैं। यदि आप इसे भलिभाँति समझ लें, तो आध्यात्मिकता की बेहद लम्बी डगर पर यह आपका पहला कदम होगा। हालाँकि डगर बहुत लम्बी है, लेकिन यदि आपने अपना पैर सही रखा है, तो गंतव्य पर अवश्य पहुँच जायेंगे।

प्यारे भाइयों और बहिनों, मैं प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी सम्पूर्णता सबको नसीब हो। लेकिन इसके लिए सही दृष्टिकोण और सहयोग अतिआवश्यक है। अतः कृपया इन चीजों का पोषण करने का प्रयास करें। यदि आप में कोई अहंकार हो, तो उसे पीछे छोड़ दें। समय, गति, नौकरी और पैसे सम्बन्धी अपनी अवधारणायें भी पीछे छोड़ दें। हम जब यहाँ आते हैं, तो खो से जाते हैं। यदि आप यहाँ आकर ऐसा महसूस नहीं करते हैं, तो यह मालिक की असफलता है।

धन्यवाद।

15

अमेरिका की वार्षिक आम सभा को सम्बोधन

वेस्ट प्वाइंट, जोर्जिया

24 सितम्बर, 1988

अध्यक्षीय भाषण

19 नॉर्थ स्ट्रीट, श्रीरामनगर, मद्रास-18

मैं माहौल को शब्द के आडम्बरों से दूर रखना चाहता हूँ। ब्रिटेन में एक पुरानी कहावत है, "गम्भीर चीजों को इस तरह से लो, जैसे कोई मजाक हो और मजाक को इस तरह से लो, जैसे यह कोई गम्भीर बात हो।" यदि आप बाबूजी की सभी कहावतों को याद करें तो पायेंगे कि वह प्रायः जो मजाक करते थे, उनके भी अर्थ होते थे और अकसर ऐसी बातें क़ह देते थे, जो ऊपर से बहुत गम्भीर लगती थीं लेकिन वास्तव में अप्रासंगिक होती थीं। इसलिए हमें पदाधिकारी, निदेशक तथा फलाँ, फलाँ कारपोरेट संगठन जैसे शब्द आडम्बरों में न पड़कर काम की बात पर आना चाहिये। जो संगठन वास्तव में कोई काम नहीं करते, उनके बारे में चर्चा करके हम बहुत समय खराब करते हैं।

यह एक मानव कंकाल के विच्छेदन के समान है। चिकित्सा की ऐलोपैथी पद्धति के बारे में एक मेडिकल राय यह है कि स्कूलों में पढ़ाया जाने वाला कंकाल विच्छेदन, शवों का अध्ययन है और इसका सजीव मानवीय शरीर के साथ ज्यादा सम्बन्ध नहीं होता। होमोपैथी और ऐलोपैथी के बीच यही मूल अन्तर है। ऐलोपैथी मृत लोगों का अध्ययन करती है। जब हम किसी ऐलोपैथ के पास जाते हैं तो यह मान लिया जाता है कि हम वापस नहीं आयेंगे।

उस प्रकार शायद चिकित्सा की ऐलोपैथी पद्धति हमारे समाज के लिये बहुत प्रासंगिक है। लेकिन हम सजीव हैं हम नहीं चाहते कि एक कारगर संगठन को भुला दिया जाये।

मैं यह उल्लेख करना चाहता हूँ कि विकासशील चीज में परिवर्तन होता रहता है। जब हम आने और जाने वाले सदस्यों की बात करते हैं तो ऐसा लगता है कि किसी नदी को अलविदा कह रहे हों क्योंकि नदी में पानी बहता रहता है, "यह पानी बहकर दूर जा रहा है। मैं क्या करूँ।" यदि यह पानी बहकर नहीं गया होता तो दूसरा पानी नदी में बहकर नहीं आया होता और नदी सड़ने लगती। रुकी हुई नदी तालाब होती है, अब नदी नहीं रह जाती। हम सजीव चलते-फिरते विकासशील

प्राणी हैं, इसलिए परिवर्तन होना लाजिमी है। हमें परिवर्तन का स्वागत करना चाहिये। परिवर्तन का अर्थ है कुछ ऐसी चीज जिसके द्वारा हम अपनी योजना प्रक्रिया में सहयोग करते हैं। यह सहयोग आमतौर पर पूरी प्रक्रिया का बहुत छोटा-सा हिस्सा होता है। इसका अधिकांश भाग कुदरत पूरा करती है। यहाँ पर मैं वही बात कहना चाहता हूँ जो मैंने एक बच्चे के बारे में कही थी। लड़की पैदा होगी या लड़का, इस पर हमारा कोई नियन्त्रण नहीं होता। कभी-कभी तो आपको यह भी ज्ञात नहीं होता कि आपके यहाँ बच्चा होने वाला है। अन्यथा आपको इस प्रकार की खबरें सुनने को नहीं मिलतीं कि एक दो सिर और चार हाथों वाला बच्चा पैदा हुआ है। ऐसे बच्चे विचित्र होते हैं।

मैं जो बात कहने का प्रयास कर रहा हूँ वह यह है कि इस योजना प्रक्रिया की वजह से कार्य की जरूरत फीकी नहीं पड़नी चाहिये। प्रायः हम बड़ी -बड़ी योजनायें बनाते रहते हैं और सब योजनायें धरी की धरी रह जाती हैं। जैसे कोई कलाकार हरदम अपने औजार तरासता रहता है लेकिन कभी कोई चीज नहीं बनाता। आप ऐसे लोगों को जानते होंगे, जिनके पास बंदूक हो। वे घंटो-घंटो उसमें तेल देते हैं, पॉलिश करते हैं, नाल की सफाई करते हैं और फिर उसे शो केस में सजाकर ताला लगाकर रखते हैं। लेकिन सहज मार्ग हमारे विकास के लिये एक जीवन पद्धति है। हममें से हरेक को विकास करना है। जैसा कि संगठन के बारे में चर्चा करते हुए बिल-वाइकोट ने सुझाव दिया था कि इसमें हर व्यक्ति को एक भूमिका निभानी पड़ती है। इसका अर्थ काम में हाथ बँटाना नहीं है। ये तो एक ट्रेन की भाँति है। इतनी तादात में रेल से सफर करने वाले लोगों के लिये कुछ लोग ट्रेन चलाते हैं। रेल पद्धति की कार्यक्षमता में हम कैसे सहयोग करते हैं? इसका समुचित ढँग से उपयोग करके, ट्रेनों को साफ रखकर और शौचालयों को साफ-सुथरा रखकर हम इसमें सहयोग करते हैं। ऐसा न हो कि थैले बनाने के लिए सीट कवर फाड़ कर ले जायें, जैसा कि भारत में होता है, यहाँ से पंखे उतार कर घर में उपयोग के लिये ले जायें। इस प्रकार हमें इन चीजों में भागीदार बनना चाहिये। जो भोजन दिया जाये, उसे खायें। उसे फेंके नहीं। यह किफायत का दूसरा पहलू है। किफायत पैसा देने में ही नहीं बल्कि उसके समुचित, सही, विवेकपूर्ण और कारगर उपयोग में है।

मैं देखता हूँ कि पाश्चात्य समाजों में लागत की किफायत पर बहुत चर्चा होती है। भारत के नवयुवक लागत की किफायत के विचार के तले भावनात्मक रूप से दबे रहते हैं और उन्हें यह ज्ञान ही नहीं होता कि वे किस बारे में बात कर रहे हैं। ठीक है, ये वित्तीय योजनायें हैं। मैं इनका बहुत सम्मान करता हूँ क्योंकि मैं स्वयं

बत्तीस वर्ष तक एक कारपोरेट एक्जीक्यूटिव रह चुका हूँ इसलिये इन चीजों की बहुत कदर करता हूँ। इसमें बहुत-सी चीजों को छुपा लिया जाता है, असलियत को सामने नहीं लाया जाता। लेकिन इसकी भी एक हद होती है वे उससे आगे नहीं जा सकते।

हमें वित्तीय कारोबार, कारपोरेट योजना लागत के कारगर ढाँचे को लेकर इन अमेरिकन-वासियों और यूरोप-वासियों से भ्रमित नहीं होना चाहिये। साधारणतः इनका सम्बन्ध वास्तविक परिस्थितियों से होता है। आमतौर पर कम्पनी बंद होने के बाद वित्तीय रिपोर्ट तैयार करना आम बात है। इसमें केवल भूतकाल की बातें होती हैं। जैसे पिछले वर्ष क्या हुआ? ये घाटा क्यों हुआ? लाभ अर्जित क्यों नहीं हुआ?

हम भविष्य के बारे में बात करना चाहते हैं। याद रखें सहज मार्ग में हमारी वचनबद्धता भविष्य के प्रति है, भूतकाल के प्रति नहीं और न ही वर्तमान काल के प्रति। हमारा ध्यान इस बात पर होता है कि कल हम क्या करेंगे, न कि बीते कल में हमने क्या किया। हाँ, इसकी प्रासंगिकता उतनी ही है कि कोई घटना घटी है। आप कहाँ जा रहे हैं? मैं अन्तरिक्ष वैधशाला जा रहा हूँ, उसने कहा। अन्तरिक्ष वैधशाला के अन्त में क्या है? जो चीजे बीत चुकी हैं, वे केवल परेशानियाँ खड़ी करती हैं। ऐसी मेरी राय है। मैं कहाँ था? मैं कहाँ हूँ? क्या मैं सही रास्ते पर हूँ? मैं अमेरिकी पद्धति अथवा मिशन के संविधान की अवमानना नहीं कर रहा हूँ, लेकिन हमें इन चीजों पर सही परिपेक्ष्य में सोचना चाहिये।

मिशन का उद्देश्य क्या है हम यहाँ क्यों आये हैं? मिशन वे सेवायें मुहैया कराता है, जिसकी हमें जरूरत होती है। यह मूलतः सेवाभावी संगठन है। यदि आप उन सेवाओं का उपयोग नहीं करते और एक भव्य मिशन और खूबसूरत फार्मलैण्ड बनाते हैं, जहाँ लुभावने नजारे और टेढ़ी-मेढ़ी पगडंडियाँ हो, तो वह केवल पर्यटक केन्द्र रह जायेगा। लेकिन हम तो पर्यटक-केन्द्र नहीं बना रहे हैं।

कारपोरेट क्षमतायें दिखाने अथवा नक्शे बनाने में विवेक प्रदर्शन अथवा निर्माण में ढाँचागत प्रतिभा प्रदर्शित करने, लागत कम रखने तथा किफायत बरतने से मिशन का उद्देश्य पूरा नहीं होगा। हाँ, ये सब जरूरी हैं, लेकिन यही सब कुछ नहीं है। हम यहाँ क्या करेंगे? यह ज्यादा महत्वपूर्ण है। मैंने देखा है कि हर व्यक्ति योजनाओं के बारे में अपनी-अपनी चिंता व्यक्त कर रहा है। मानों पैर की अँगुली कह रही हो, 'कृपया चलते समय मुझे ठोकर मत मारना।' यदि आप घूमने जा रहे हैं और तेज चलते हैं और अनजान राह पर चलते हैं, तो यह गारंटी कैसे दी जा

सकती है कि ठोकर नहीं लगेगी। पैर की अँगुली ही क्यों घुटने पर भी ठोकर लग सकती है। ये सम्पूर्ण शरीर के हिस्से हैं जिसका एक निश्चित उद्देश्य है। यदि मेरा पैर मुझे ढोता है तो इसके लिये वह श्रेय का दावा नहीं कर सकता, 'चारी, तुमने मुझे उचित सम्मान नहीं दिया।' मैंने तुम्हें बत्तीस डालर के रिबोक जूते खरीदकर दिये। ये तुम्हारा उचित सम्मान ही तो है जबकि भारत में मैं तुम्हें आठ रुपये की चप्पल खरीदकर देता। मैं अपने पैर का इतना ही लिहाज कर सकता हूँ। मैं उसे क्लियोपैट्रा की भाँति चन्दन के तेल और गधी के दूध से स्नान नहीं करा सकता। पैर तो आखिर पैर है।

इस प्रकार हमें चीजों को सही परिपेक्ष्य में समझना चाहिये। धन? हाँ, यह महत्वपूर्ण है। क्या यह सबसे महत्वपूर्ण है? नहीं। क्योंकि यदि आप चाहें तो आश्रम बना सकते हैं अन्यथा हम तो किराये के मकानों में बहुत खुश हैं। यदि आप किराये का मकान नहीं ले सकते तो हमेशा खुले स्थानों में बैठकर ध्यान कर सकते हैं। ऐसा न होने का मुझे कोई कारण नहीं दीखता। मुझे याद है, भारत में प्राचीन समय में जब बैलगाड़ियाँ होती थीं तो खासतौर से ब्राह्मण लोग, जिन्हें छुआछूत और सफाई की समस्याओं से जूझना पड़ता था, महीनों-महीनों का खाना- पीना बैलगाड़ियों में लादकर दूर चले जाया करते थे। उन्होंने कष्ट उठाये। उनमें से किसी को स्वर्ग मिला या नहीं, ये बहस का विषय है। मुझे नहीं लगता कि उनमें से किसी को स्वर्ग मिला होगा। क्या फायदा? वे अपना भोजन उसी प्रकार लादकर चलते थे जैसे- घोंघा अपना घर अपनी पीठ पर लादकर चलता है, जैसा कि मैंने पहले उल्लेख किया था। ईस्टर द्वीप समूह में पाये जाने वाले बड़े-बड़े कछुओं की कल्पना करें। जिसका वजन मेरे विचार से टनों में होता है। यदि उन्हें पलट दिया जाये तो मर जाते हैं।

इस प्रकार हमें भारी-भरकम नहीं, हल्के ढाँचे बनाने चाहिये। हल्के का आशय आध्यात्मिक हल्केपन से है। शरीर हल्का होना चाहिये, आत्मा हल्की होनी चाहिये और उसी अर्थ में हमारे आश्रम भी हल्के होने चाहिये ताकि वे हमारे ऊपर बोझ नहीं बन सकें। इसका क्या अर्थ है? न्यूनतम ढाँचे। वैसे नहीं जैसे शिशु निकेतन में होते हैं। एक शिशु निकेतन तीन से दस वर्ष की आयु के लिये, दूसरा ग्यारह से अठ्ठारह वर्ष की आयु के बच्चों के लिये। शायद हम सब बच्चे हैं। एक निकेतन मेरे जैसे वृद्ध लोगों के लिये भी चाहिये। ये कोई तरीका नहीं है। जैसा कि बाबूजी ने कहा, 'हमें आध्यात्मिक पक्ष पर न्यूनतम आराम और अधिकतम कार्य करना होगा।' तभी सहज मार्ग प्रभावी होगा। इसके आश्रम प्रभावी होंगे। हम प्रभावी होंगे और हममें

से प्रत्येक वांछित स्तर तक विकास करेगा।

हालाँकि मैं पाश्चात्य निगम योजना प्रक्रियाओं की बहुत कदर करता हूँ लेकिन साथ ही यह भी बता दूँ कि मैं उसका बहुत ज्यादा सम्मान नहीं करता। कदर करना और सम्मान करना दो अलग-अलग बातें हैं। युवा भारतीयों को इन दोनों में अन्तर करना सीखना चाहिये। हम उन लोगों की कदर करते हैं, जिनका सम्मान नहीं करते। मैं मार्लिन मुनरों की बहुत कदर करता हूँ लेकिन क्या मैं उनका सम्मान करता हूँ? मुझे नहीं मालूम।

हमें सम्मान करना सीखना होगा। सम्मान से प्यार जागृत होता है प्यार से श्रद्धा हमारी यही अवधारणा आध्यात्मिकता के बारे में होनी चाहिये। अपने पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो, जैसे स्वयं से करते हो। इस बारे में बहुत बातें होती हैं। ईसाई धर्म की इस प्रसिद्ध कहावत (अपने पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो जैसा स्वयं से करते हो) का मैं पालन कर सकूँ, इसके लिए मुझे स्वयं से प्रेम करना चाहिये। यदि **'स्वयं से'** शब्द न रखा गया होता, तो ज्यादा अच्छा होता। स्वयं से प्रेम कौन करता है? इस दुनिया के बारे में हम जितना विद्वेष फैला रहे हैं, उसका कारण यह है कि हम स्वयं से प्रेम नहीं कर सकते। हम स्वयं से घृणा करते हैं। हमें स्वयं के साथ अपराध बोध होता है। जब हम ऐसा कर ही नहीं सकते, तो यह कहना न्यायोचित होगा, हे भगवान या ईसा मसीह तुमने कहा, अपने पड़ोसी से वैसा ही प्रेम करो, जैसा स्वयं से करते हो। मैं तो स्वयं से प्रेम नहीं कर सकता तो आप मेरे से कैसे उम्मीद कर सकते हैं कि मैं अपने पड़ोसी से प्रेम करूँगा।

सहज मार्ग में शर्तों के साथ चीजों को बर्दाश्त नहीं किया जाता। **प्रेम** और प्राचीन अमेरिकी परम्परा में **समय**। किससे प्रेम करें, कब प्यार करें, कहाँ प्रेम करें? इसका ज्ञान दिल से होगा। क्या मुझे अपने आश्रम से प्रेम करना चाहिये? प्रेम, समय! यह निर्णय आप ही करें कि किसे प्रेम किया जाये। क्या आपको अपने पड़ोसी से प्रेम करना चाहिये? आपका पड़ोसी कौन है? आलाबामा में रहने वाला कोई व्यक्ति। देश की सीमा यहाँ से बहुत दूर नहीं है। वह देश के बाहर है अथवा इस देश के बाहर है, क्या वह मेरा पड़ोसी नहीं हो सकता?

इसलिए सहजमार्ग कहता है, **प्रेम, समय**। भले ही आश्रम हो, बच्चा हो, आपका पति हो तथा पत्नी या कोई और, मालिक ने कहा 'दिल की शरण में जाओ।' इसलिए इन सारी परिस्थितियों में भले ही कारपोरेट योजना हो चाहे खिड़की या दरवाजे, चाहे बाल निकेतन। दिल से पूछें। हम प्रश्न पूछते हैं और उत्तर भूल जाते हैं। हमारे प्रश्न भी हमारी बुद्धि से पैदा होते हैं, दिल से नहीं। हम दिल

से महसूस नहीं करते कि कोई चीज ऐसी क्यों है। कोई पूछता है? सूरज पूर्व में क्यों उगता है? यह भगवान का काम है।

यह ज्ञान का दूसरा अंश है। उसकी जिम्मेदारी उस वृद्ध व्यक्ति पर छोड़ दीजिये। जिसके बारे में हम हर वक्त चर्चा करते रहते हैं। रोजमर्रा की परिस्थितियों से मुझे लगता है कि हमारा उनमें विश्वास नहीं है। जिस व्यक्ति में हमारा विश्वास न हो, आदर, सम्मान न हो, प्रेम और श्रद्धा न हो, उसके बारे में बातें करने से फायदा? सब कहते रहते हैं, बाबू जी, बाबूजी, बाबूजी। मानों मंत्र जाप कर रहे हों। अब तो केवल माला की जरूरत है। जब मैं ढकोसले सुनता हूँ। तो मुझे पीड़ा होती है। उनके बारे में सिर्फ चर्चा करके अपना प्रेम जाहिर करने की कोशिश करने की बजाय हमें कुछ ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे यह सिद्ध हो कि हम उनसे वास्तव में प्रेम करते हैं। इसके लिए क्या किया जाये? याद रहे कि वह हमें क्या बनाना चाहते थे। बाकी सब बाहरी चीजें हैं, जिसे प्राचीन परम्परा में कूड़ा कचरा कहा गया है और शरीर भी इसमें शामिल है। शरीर एक वाहन है। इसे सजायें सँवारें, नहलायें धुलायें, खिलायें पिलायें, तेल इत्यादि लगायें, कपड़े पहनायें। लेकिन ये सब आवश्यक नहीं है।

हमें वहीं तक सीमित रहना चाहिये जो परम आवश्यक हो। सात्विक ढँग से जीवन यापन करें। जो अत्यावश्यक हो, वही ग्रहण करें। जो अत्यावश्यक है, वही कार्य करें और जो कुछ **हमारा, हमारे से, हमारे साथ** और **हमारे द्वारा** त्यागना अत्यावश्यक है, उसका त्याग करें।

मुझे आप सब पर गर्व है, हालाँकि मैं आपको खरी-खोटी भी सुनाता हूँ। इसीलिए अपने औपचारिक सम्बोधन के उपरान्त मैं आप लोगो से बातें करूँगा। मैंने आपको पिछले तीन दिनों से कार्य में लगे देखा है और जैसा कि बत्तीस वर्ष के कारपोरेट सेवा-काल के बाद भी मुझे हर चीज के बारे में डालर और सेंट के हिसाब से सोचने की आदत हो गई हैं, मैंने अनुमान लगाया है कि अब तक हमने श्रम प्रभारों के रूप में करीब 5,000 डालर की बचत कर ली है। यह कोई छोटी राशि नहीं है। यदि मैं आपसे 5000 डालर एकत्र करना चाहता, तो पचास व्यक्तियों के हिसाब से प्रत्येक के हिस्से में 100 डालर आते। अब आपने अपने दिल से 5,000 डालर का इसमें सहयोग दिया और आभास तक नहीं हुआ कि आपने एक सेंट का भी कार्य किया हो।

सच्चा सहयोग इसी तरह दिल से आना चाहिये। जब आप चेक लिखते हैं, तो पेन और पेंसिल से जो कुछ लिखा जाता है, यह नश्वर है। कभी-कभी पेन गलत

क्षण पर काम ही नहीं करता और तीन शून्य लिखने की बजाय दो पर ही रुक जाता है। आजकल के बालपेन इस लिहाज से बहुत सुगम हैं। यह सूख जाता है लेकिन यह सूखता तभी है, जब दिल सूखता है।

इसलिए हमें यथासंभव श्रेष्ठतम ढंग से सहयोग देना चाहिये, जिसमें हमारे स्वयं के सिवाय कुछ खर्च न हो। आधुनिक परम्परा, आधुनिक जीवन-यापन पद्धति, आधुनिक सामाजिक संदर्भ, हर आधुनिक चीज ने हमसे आत्म समर्पण का अमूल्य उपहार छीन लिया है। हम कर्म द्वारा ही स्वयं का अर्पण कर सकते हैं। धन आपने कमाया है, आपके लिए इसका ज्यादा महत्व नहीं है, इसका केवल यही महत्व है कि इससे आपको सुरक्षा का मिथ्या अहसास होता है और आपको जीवन में खुशी मिलती है। भगवान न करे कल आप बीमार पड़ जायें और पानी भी न पी सकें, तो अरबों डालर की क्या कीमत? मुझे लगता है कि जैसा ईसाई धर्म में कहा गया है, 'यदि मनुष्य अपनी आत्मा गँवाकर, पूरी दुनिया पा ले, तो भी क्या फायदा?' इसका यही अर्थ है।

इसलिए कृपया निःसंकोच रहें। कुछ लोग मुझसे पूछ रहे हैं, 'क्या हम छुट्टी बिताने यहाँ आ सकते हैं?' 'क्यों नहीं। आश्रम आपका है। आओ। कुछ काम करो। यदि कुछ जानते हो, तो करो। जो लोग बिजली का काम जानते हैं, बिजली के काम में सहयोग कर सकते हैं। जो केवल मिट्टी खोद सकते हैं, मिट्टी खोदकर जहाँ जरूरत है वहाँ डाल दें। इस प्रकार हम बहुत सहयोग कर सकते हैं उसने 1000 डालर दिये। मैं 20 डालर ही दे पाया। मुझे दुःख है। जब हम दिल से काम करते हैं, तो यह सोचने का सवाल ही नहीं उठता। दो दिलों के बीच कोई अन्तर नहीं होता। दिल हमेशा समान होते हैं, उनमें एक जैसा प्रेम, एक जैसी अभिव्यक्ति और देने का एक जैसा ढंग होता है। हमारा दिल सब कुछ दे देता है, लेकिन पाँव और हाथ से थोड़ा सा ही छूट पाता है। हम अंशमात्र देना चाहते हैं, जितना हम दे सकते थे, उसका यह अंशमात्र है। यह साधारणतः उसका सौवाँ हिस्सा है।

हमें इस मिशन को अपना मानना चाहिये। बाबूजी ने कहा है, हमें तीन चीजें अपनी माननी चाहिये मेरे मालिक, मेरा मिशन, मेरी पद्धति। यदि आप इन्हें अपना मानते हैं, तो देने लेने का सवाल ही नहीं है। क्योंकि आप स्वयं को दे रहे हैं। आप स्वयं के लिए काम कर रहे हैं। आप स्वयं यहाँ रह रहे हैं। आपको हर चीज अपने लिये मिल रही है। इस तरह देने वाले की गरिमा बढ़ती हैं, देने वाले की प्रतिष्ठा बढ़ती है और दोनों के बीच एक हार्दिक सम्बन्ध कायम होता है। दाता और पाता का भाव नष्ट हो जाता है। तेरे-मेरे का विचार नष्ट होता है। हम एक हो जाते हैं।

जैसा कि कहा जाता है, चेक बुक जरूरी है। इसकी भी जरूरत नहीं पड़ती। मैं कह सकता हूँ कि हम एक सैन्ट लिये बिना भी यह आश्रम बना सकते हैं। यदि हम मिशन में मौजूद सब लोगों की प्रतिभा को साथ ले लें, सब दिलों को जोड़कर एक कर लें, तो हम सब काम कर सकते हैं। प्राचीन समाजों में जब पैसे का बोलबाला नहीं था, तो लोग इसी तरह जीवन यापन करते थे। जब पैसा नहीं था, तो क्या आश्रम नहीं बनते थे, भोजन नहीं पकता था, लोग खाना नहीं खाते थे? वे लोग यह सब कैसे करते थे? हमें उसी विवेक से काम लेना चाहिये जो पैसे के आगमन से पहले समाज में व्याप्त था। ऐसा करना सम्भव है, हमने दो अवसरों पर यह सिद्ध किया है। मेरा अनुमान है कि हमारे प्रस्थान करने से पहले आप एक बार इसे पुनः सिद्ध करेंगे।

हमें इस प्राचीन विवेक को अपनाने का प्रयास करना चाहिये। मानों पेड़ अपनी जड़ों को तलाश करे, जहाँ से उसे पोषण मिलता है। पेड़ ऊपर से बहुत खूबसूरत दिखायी देता है। उसकी हरी-हरी पत्तियाँ होती हैं, लाल-लाल फूल होते हैं, जिन्हें देखकर मुँह में पानी आ जाता है। लेकिन यह मत भूलिये कि जड़ें नहीं होती तो यह पेड़ भी नहीं होता।

इसलिये प्राचीन विवेक कहता है कि अपनी जड़ों को तलाशो। आपकी जड़ें कहाँ हैं? आदमी की जड़ें उसके दिल में होती हैं। समाज की जड़ें उसकी संस्कृति और परम्परा में होती हैं। हम इन सब महत्वपूर्ण बातों को ठुकराते हुए कम्प्यूटर, जैट, स्टॉक एक्सचैंज के पचड़ों में पड़ते जा रहे हैं। इनका अब बहुत सुगमता से इलैक्ट्रोनिकरण हो गया है ताकि आप जितना जल्दी पैसा कमा सकें, उससे जल्दी गवाँ भी सकें। यह कारपोरेट जगत की चालें हैं ताकि जो थोड़ा-बहुत पैसा हमारे पास है, हमसे छीन सकें। हम गति को कार्यक्षमता और आँकड़ों को परिणाम मानने की गलती करते जा रहे हैं।

मैं आप सब को सचेत कर रहा हूँ। आप मेरे बहन भाई हैं। मैंने अपने मालिक को एक वचन दिया था, मेरी उससे मुक्ति की कोई सम्भावना नहीं है। इसी वचन की बदौलत मैं पूरी ताकत के साथ आपसे बात करता हूँ। प्रायः लोग सोच सकते हैं कि यह हमारी जीवन प्रणाली अथवा समाज की आलोचना है। हाँ, इसकी आलोचना तो करनी ही पड़ेगी।

यदि आप डॉक्टर के पास जाते हैं तो वह कहता है, आपके फेफड़े ठीक ढँग से काम नहीं कर रहे हैं, चार्ली। धूम्रपान छोड़ने के बारे में आपकी क्या राय है? यह आलोचना नहीं निदान है। क्या आप कह सकते हैं, 'ये डॉक्टर हमेशा मेरी

आलोचना करता है। जब भी मैं उसके पास जाता हूँ, तो हमेशा कुछ न कुछ कह देता है।' आप उसके पास इसीलिये जाते हैं क्योंकि उसके पास कुछ बताने का पर्याप्त आधार है। जब आप दर्पण में निहारते हैं तो ये उम्मीद रखते हैं कि दर्पण सच बोले। मान लीजिये आप दर्पण के सामने खड़े हों और मार्लिन मुनरो का चेहरा सामने आ जाये। सम्भवतः अमेरिका के प्रतिभा सम्पन्न लोग कोई ऐसा दर्पण ईजाद कर लें, लेकिन वह सच नहीं बोलेगा। वह आपका चेहरा नहीं होगा और आप दर्पण के लाभ से वंचित होकर पहले की तरह मूर्ख बने घूमते रहेंगे क्योंकि वह दर्पण आपको कुछ और ही दिखाएगा। आप किसी डॉक्टर के पास जाते हैं और वह आपकी छाती पर स्टेथिस्कोप रखकर कहता है, 'हनी, आप तो बिल्कुल ठीक हैं। इस निदान के लिये सौ डालर दे दो।' आप खुशी-खुशी भुगतान करके घर आ जायें और आपकी मौत हो जाये। इसका क्या उपयोग? डाक्टर की तो चाँदी हो गयी और आपको कोई फायदा नहीं हुआ।

इसी प्रकार आप किसी सत्यवादी के पास जाते हैं, भविष्यवादी के पास नहीं, तो भी ऐसी स्थिति होती है। भविष्यवक्ता आपको शान्त करता है, सत्यवादी सत्य के दर्शन कराता है। यदि आप उनके पास सत्य जानने के लिये जाते हैं, तो सत्य को सहन करने की शक्ति भी लेकर जायें। इसके लिये आन्तरिक शक्ति की जरूरत पड़ती है। हम सब अपनी बुद्धि से इसका मूल्यांकन करते हैं। आप कहेंगे, 'भारत से आया एक काला आदमी क्या बात कर रहा है? अपने आपको क्या समझता है? लेकिन हमारा नजरिया सही होता है।

सत्य, सत्य ही होता है भले ही उसे मानें या न मानें। सत्य का नाश नितान्त असंभव है क्योंकि सत्य की विजय होती है। पूर्वी परम्परा, हिन्दू परम्परा में एक प्राचीन शब्द है **धर्म**। धर्म और सत्य समानार्थी शब्द हैं। वेद कहता है, सत्यं धर्मम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्मा।' आप मिथ्या समाज की झूठी चमक-दमक की खातिर उनकी अवहेलना करते हैं। झूठी शान-शौकत, हॉलीवुड के फिल्मी सैट की तरह एक झूठा आवरण है। जब मैं अमेरिका की सड़कों पर निकलता हूँ तो मुझे शर्म आती है। यहाँ की सड़कें बहुत बढ़िया हैं। लेकिन जैसे ही आप सफेद लाइनों को पार करके चारदीवारी से आगे निकलते हैं, तो पाते हैं कि गंदगी और बोतलों के अम्बार लगे हुए हैं। ये गंदगी और बोतलें उन कार वाले लोगों की फेंकी हुई हैं, जिनके पास कारें खरीदने के लिये तो पैसा है, लेकिन यह तमीज नहीं है कि ये बोतलें यहाँ न फेंके। क्या यही सभ्यता है? क्या यही परम्परा है? यहाँ आगे एक छोटी सी खाड़ी है जो पुराने रेफ्रिजरेटर के टुकड़ों, पुराने डिब्बों, पुराने गद्दों और

पुराने पलंगों आदि से भरी पड़ी हैं। आपके यहाँ हर रोज अरबों टन कचरा निकलता है। कल मैंने बिल से इसका कारण पूछा। उसने कहा 'इसे हटाने के लिए पैसा खर्च करना पड़ता है और लोग पैसा देना नहीं चाहते।' इसलिये खाली जगह देखकर हर चीज फेंक देते हैं और ये कैंसर की तरह आसानी से छिपा पड़ा रहता है।

मैं यह कहकर कोई आलोचना नहीं कर रहा हूँ बल्कि आपको देश की हालत से अवगत करा रहा हूँ। आपके राष्ट्रपति राष्ट्र के नाम संदेश देते हैं, उसी तरह इस छोटी-सी यूनियन के अध्यक्ष के नाते आपको सच्चाई से अवगत कराना मेरा कर्तव्य है। आज हालात ये हैं कि हमारे यहाँ चमकीले खूबसूरत आवरण हैं, सागौन और संगमरमर के आवरणों के पीछे गंदगी छिपी पड़ी है। आप कहेंगे, व्यवस्था इसी तरह कार्य करती है, लेकिन व्यवस्था तो हम बनाते हैं। यदि आप आत्म संतुष्ट होकर सड़क के दोनों किनारों की अवहेलना करते हुये कडिलास का चक्कर काटकर आयें, तो एक दिन हम भी वहीं पहुँच जायेंगे।

हर व्यक्ति पर दायित्व का बोझ डाला गया है। लोकतांत्रिक राजनैतिक व्यवस्था में हर व्यक्ति को अपने वोट द्वारा निर्वाचित सरकार को सत्ता सौंपने का अधिकार दिया गया है। इसमें व्यक्ति की शक्ति पर बल दिया गया है। जब हम उस शक्ति से मुँह मोड़ते हैं और इसे नकारते हैं और आलसी और निष्क्रिय होकर वोट डालने भी नहीं जाते, तो उस शक्ति से हाथ धो बैठते हैं, जो दुनियाँ भर के विभिन्न संविधानों के माध्यम से हमें मिली है। इसके लिए हम कम से कम वोट डालने तो जा ही सकते हैं।

इसके लिए अधिक से अधिक हमें क्या करना होगा? भागीदार बनो। जैसे हम आपको यहाँ दिल से भागीदार बनने के लिए आमंत्रित कर रहे हैं। यहाँ आकर आप एक सोसायटी बनाते हैं, फिर एक ढाँचा खड़ा करते हैं। मैं इसके लिये भारी-भरकम शब्दों का इस्तेमाल कर यह नहीं कहना चाहता कि यह ढाँचा अनन्त काल तक आपके काम आयेगा। लेकिन यह मेरे लिए हमेशा काम आयेगा। ऐसी कोई चीज नहीं है, जो अनंत काल तक काम आ सकती है। जबकि वह मेरे लिए हमेशा काम न आये। जब मैं शाश्वत नहीं रह सकता तो मेरे लिये शाश्वतता का क्या अर्थ है, यदि भविष्य को देखने के लिये मैं जीवित न रहूँ, तो भविष्य का मेरे लिये क्या अर्थ है? जब मैं शाश्वत की बात करता हूँ तो मैं अपने मालिक की ओर से, जिन्होंने मुझे यह एहसास कराया, यह कह सकता हूँ कि यह शाश्वतता आपके भीतर विराजमान है। यह अन्तरिक्ष वैधशाला आपके भीतर है। आपको अपने भीतर जो ब्रह्माण्ड दिखायी देगा, वह आपके भीतर ही विराजमान है। उसका निर्माण करो।

पदार्थ और उसका सार यही है। अपने भीतर झाँको। दिल की ओर देखो, दिल का निर्माण करो। इसे मजबूत और साहसी बनाओ, शेर बनो, जैसा कि बाबूजी चाहते थे। उन्होंने कहा, 'एक शेर पाँच सौ भेड़ों से अधिक शक्तिशाली होता है। इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम भेड़ों को स्वीकार नहीं करते, बल्कि हम उन भेड़ों को स्वीकार करते हैं, जो शेर बनना चाहती हैं। हम उन भेड़ों को स्वीकार नहीं करते जो भेड़ ही बने रहना चाहती हैं।

सहज मार्ग का यही सार है। पद्धति का अस्तित्व और मालिक का अस्तित्व दोनों समाज की सेवा के लिये हैं। समाज की केवल सम्भव तरीके से मदद करने की जरूरत है। आज के बिजनेस से फिर इतना करें, तो देखेंगे कि सेवा उद्योगों को बहुत इज्जत मिलती है। सर्विसमैन आकर आपका रेफ्रिजरेटर ठीक कर देते हैं और उसके लिये डेढ़ सौ डालर चार्ज करते हैं, जो आप स्वयं ढाई डालर में कर सकते थे। इससे भी बदतर, वे आपकी सेवा करते ही नहीं। आते हैं और कह देते हैं, उसे ठीक करना सम्भव नहीं। आप नया क्यों नहीं खरीद लेते?

वह सेवा परम सेवा है जो किसी भेड़ और भेड़ में भी सबसे कमजोर भेड़ को शेर, शेरों का शेर बना सके। यदि आप प्राचीन समाजों का अध्ययन करें, तो शेर राजतंत्र और महानता का प्रतीक है। जैसे बेबीलोन के शेर हो, यूनान के शेर, ट्रैफलगार स्क्वायर में नेशनल स्तम्भ के नीचे बने शेर हों, जहाँ भी जायें शेर को महानता, साहस और बहादुरी का प्रतीक माना गया है। इसलिये आइये शेर बनने का प्रयास करें। इस आश्रम को ऐसा स्थान बनायें जिसमें भेड़ें शेर बनती हैं। आश्रम का एक ऐसा स्थान है, जहाँ बिना लड़े, बिना झगड़े, बिना हाथापाई किये हम इस ढंग से व्यवहार करते हैं कि दिल और मजबूत बनें, विश्वास विकसित हो हमारे अन्दर बैठी भेड़ों का दिल विकसित होकर शेरों का दिल बन जाये। जहाँ अब तक भेड़ों का दड़बा था, वह जंगल बन जाये जहाँ शेर उन्मुक्त घूमते हों। हम इस कामयाबी की तलाश में निकल रहे है।

पाश्चात्य समाज बहुत अच्छा है। इसका इस्तेमाल सोच-समझकर करें। उसे अपने ऊपर हावी न होने दें। यह मत सोचो कि जीवन में डालर ही सब कुछ है, वातानुकूलित मकान और उसके पिछवाड़े में बना तरणताल उच्चतम सभ्यता का स्वरूप है। यदि कोई पापी व्यक्ति उसके अन्दर प्रवेश करता है, तो उसमें कोई सुधार नहीं होगा। जब वह बाहर आयेगा तो शारीरिक दृष्टि से तो थोड़ा साफ होगा, लेकिन नैतिक दृष्टि से नहीं हैं।

इसका निष्कर्ष है कि हमारा यहाँ आने का नैतिक उद्देश्य है। नैतिकता का

संकुचित अर्थ नहीं है। आप यह नहीं करेंगे, वह नहीं करेंगे। ये नीतिशास्त्र और नैतिकता की एक उबाऊ पद्धति है, जिससे मनुष्य थक चुका है। इसकी व्यवस्था करते समय यह कोई वायदा नहीं किया गया कि हमें क्या नहीं करना चाहिये, जो शिक्षा का एक नकारात्मक पहलू है। उन्होंने आपको यह नहीं बताया कि आपको **क्या करना चाहिये**। हम आपको बताते हैं कि क्या करना चाहिये।

निर्माण करो। स्वयं का निर्माण करो। सहजमार्ग का यही उद्देश्य है। रामचन्द्र मिशन का यही उद्देश्य है। ये सबके लिये खुला है। मिशन और अभ्यासी के बीच के इस व्यवहार में जहाँ अभ्यासी यह महसूस करता है कि मिशन उसका है, उसकी मुक्ति इसी में निहित है। मिशन को अपनाओ, मालिक को अपनाओ, पद्धति को अपनाओ। बाबूजी ने कहा, कि इन तीन चीजों से किसी भी हालत में अलग मत होओ। बाकी सब आज आपका है, लेकिन अगले क्षण हो सकता है कि आपका न हो।

यह एक गरिमामय कार्य है, जिसमें हम लगे हुये हैं। आश्रम जैसी छोटी चीजें हमारे और हमारे विकास के बीच नहीं आनी चाहिये। यदि इनका सहयोग है, तो ठीक। नहीं तो इनसे किनारा करो। याद रखो कि शरीर भी एक साधन है, जिसे कारगर वाहन बना के रखना है सुन्दर वाहन नहीं। आराध्य साधन नहीं बल्कि कारगर साधन बनाकर रखना है, जो हमें जीवन रूपी सागर से पार लगा सके।

मैं प्रार्थना करता हूँ और विश्वास करता हूँ कि बाबूजी हमें हर काम में आशीर्वाद देंगे।

धन्यवाद।

16

लोक वार्ता

स्मीरना, जार्जिया

25 सितम्बर, 1988

बहिन डायना ने मालिक के साथ अपने आध्यात्मिक जीवन का प्रत्यक्ष संक्षिप्त वृत्तान्त आपको सुनाया। प्रत्यक्ष इसलिये क्योंकि यह उनके दिल की उपज थी। बुद्धि की नहीं। उन्होंने हृदय कपाट खोलने की जरूरत और इसमें आने वाली कठिनाइयों के बारे में कई बार उल्लेख किया।

जब हम प्रातःकाल उठते हैं, तो हममें से कई लोगों को अपनी आँखें खोलने में कठिनाई महसूस होती है। कई लोगों के लिंये बहुत व्यवहारिक समस्या है कि जागते हुए भी अपनी आँखे नहीं खोल पाते और पुनः सो जाते हैं। इसीलिये वेदों में यह प्रसिद्ध कथन है 'उत्थिष्ठितः जागृतः।' एक काम के लिये दो शब्द उठो, जागो! जागना उठना नहीं है और उठना जागना नहीं है। मेरे मालिक कहा करते थे, यह एक तीसरी अवस्था है। आप जाग सकते हैं उठ सकते हैं फिर भी इस दुनिया में होने वाली चीजों के बारे में पूर्णतः अनजान बने रहते हैं। प्राचीन योग पद्धतियों, हमारे प्राचीन पूर्वजों, ऋषियों, वैदिक मनीषियों और भारत के ज्ञानियों द्वारा पढ़ाये गये योग यथार्थ के अनुसार लगभग सभी मानव प्राणी रोबोट की भाँति स्वचालित मशीनें हैं जो चलती, फिरती, खाती सोती हैं अर्थात कठपुतलियों की भाँति मानव जीवन के सभी कार्य करती हैं। कुछ साधु संतों ने गहराई में जाकर इस तथ्य को उजागर किया है। उदाहरण के लिये शैक्सपीयर ने भिन्न अर्थ में कहा है 'यह दुनिया एक रंगमंच है (All the world is a stage and all the men and women merely actors)'.

यह हमेशा ही एक विवादास्पद प्रसंग रहा है कि जब आदमी कहता है कि 'मैं जीवित हूँ,' तो वह किस हद तक जीवित है? प्राचीन परम्पराओं और हिमाचल की परम्पराओं में सत्य का विस्तार और उदय दोनों का दर्शन होता है। यह हिमालयन परम्परा है क्योंकि यह बहुत व्यापक है और कभी कभी बहुत दुर्गम और बहुत रहस्यमयी है। यह कई बार पर्वत जैसी निष्ठुर और वीभत्स नजर आती है। दक्षिण भारतीयों और वृद्ध लोगों को हिमालय इतना ऊँचा और दूर नजर आता है कि उनके लिए उस पर चढ़ना नामुमकिन है। जिन लोगों को स्वास्थ्य सम्बन्धी परेशानियाँ हैं उनके लिए वहाँ जाकर बर्फ से ढकी और जंगली खतरनाक जानवरों से घिरी गुफाओं में अकेले रहना सम्भव नहीं है।

भारत में आज भी किसी महान साहसिक कार्य को Himalayan Adventure कहा जाता है। जो लोग भारत होकर आये हैं अथवा जो भारतीय हैं, वे इस बारे में अच्छी तरह जानते हैं। बहुत कम लोग समझते हैं कि हिमालय के दायरे का विस्तार, समस्या की व्यापकता, उसमें छिपी असीम सम्भावना, सनातन उपलब्धि तथा उसके ऊपर आसीन दिव्यता का संगम है। इसे शिवधाम माना जाता है। तेनसिंग नोर्गे हिलेरी जैसे लोगों ने हिमालय को चढ़कर मापा था। लेकिन जो दिल की ऊँचाई को माप सके, उसके लिए यह भीतर छिपी सम्भावना, अवसर और उस शिखर का प्रतीक है, जिस पर भगवान स्वयं विराजमान है। यह दिव्य क्षेत्र है।

कुछ लोग वहाँ बैठकर अभी उपनिषद पढ़ रहे थे। एक प्रसिद्ध उपनिषद अथवा पुरुष सूक्त वेद के एक भाग में हृदय के सम्बन्ध में एक बहुत प्रत्यक्ष संदर्भ आता है। हृदय की तुलना अधखिले कमल से की गयी है जिसका सिर नीचे की ओर है और वह सूरज की प्रथम किरण की प्रतीक्षा कर रहा है ताकि उसकी स्थिति अधोमुखी से ऊर्ध्वमुखी हो सके। तब चमत्कार घटित होता है, कली खिलती है, रूप बदलती है, सूरज की रोशनी पाकर जीवन का सृजन सम्भव होता है। इसीलिये भारतीय परम्पराओं में कमल का बार बार उल्लेख आया है लक्ष्मी का सम्बन्ध कमल, ज्ञान, धन-वैभव, शक्ति और सिर पर स्थित सहस्त्रार चक्र के साथ माना गया है।

हमारे यहाँ हृदय से सम्बन्धित कुछ प्राचीन रहस्यवादी प्रतीक हैं। इसे हृदय कमल कहा जाता है। यह एक ऐसी कली है जो अभी फूल नहीं बनी है। कली जरूर खिलेगी। प्रकृति का खिलना सूर्य के कारण सम्भव होता है। सूर्य की गर्मी से यह कली स्वाभाविक रूप से खिल उठती है। लेकिन मनुष्य का हृदय कमल इतनी आसानी से नहीं खिलता। इसलिये जब कभी हमें भावनाओं से ओतप्रोत कोई प्रभावित करने वाली बातें सुनायी पड़ें और जो हमारे हृदय को छू जायें तो हम कहते हैं 'मैं बहुत प्रभावित हुआ।'

मेरे मालिकों ने समझाया है कि बिना हृदय कमल खिले कुछ भी सम्भव नहीं है क्योंकि भगवान का वास हमारे हृदय में है। यहाँ पर मैं संस्कृत पाठ को उद्धरित नहीं करना चाहता क्योंकि अधिकतर श्रोता पाश्चात्य जगत से हैं तथापि जो लोग इच्छुक हों 'पुरुष सूक्त' का अध्ययन कर सकते हैं जहाँ उल्लेख है कि हृदय में एक छोटी सी ज्योति है। उस ज्योति के भीतर नाम रहित, रूप रहित और गुण रहित परमात्मा विराजमान है। नाम रहित होते हुये भी सभी नामों की उत्पत्ति उन्हीं से होती है। निराकार होते हुये भी सभी आकारों, रूपों की खान हैं। शक्ति रहित होते

हुये भी ब्रह्माण्ड की समस्त शक्तियों का स्रोत है। यह ब्रहदरण्यक उपनिषद् की उस महान कथा के समान है जो महान मनीषी याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य को सुनाई थी। उस कथा में याज्ञवल्क्य ने अपने शिष्य से वट वृक्ष का फल लाने को कहा। तब उन्होंने उसे कहा कि इसे तोड़ो और इसके छोटे छोटे बीजों को देखो। शिष्य बीज को खोलता है और कहता है 'यह क्या? इसमें तो कुछ नहीं है।' याज्ञवल्क्य कहते हैं इसी कुछ नहीं (शून्यता) में से यह विशाल वृक्ष उगा है और इसी शून्यता से जिसे हम भगवान कहते हैं यह पूरा ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ है।

हमें इन चीजों के लिए हृदय में झाँकना होगा। शायद इसीलिये अंग्रेजी में इतनी अभिव्यक्तियाँ हैं। Hearty, heartful (हार्दिक) having a tender heart (कोमल हृदय) being burdened with a cold heart (निराश हृदय) आदि। मनुष्य की पहचान जितनी उसके हृदय से होती है उतनी अन्य बातों जैसे ऊँचाई, भार, बालों के रंग, आँखों के रंग आदि से नहीं होती। शारीरिक विवरण इन आँखों का विषय है।

अब हम योगिक परम्पराओं के दूसरे पहलू की चर्चा करते हैं। एक समय था जब लोग नाक के अग्रिम भाग, भौंहों के मध्य, नाभि पर, रीढ़ की हड्डी के आसपास स्थित छः चक्रों पर ध्यान किया करते थे, परम्परा स्वयं कहती है कि उन लोगों को अपने इष्ट देव से कोई महत्वपूर्ण उपहार प्राप्त होता था। ये उपहार आमतौर पर कोई शक्तिशाली अस्त्र होता था। मेरे मालिक ने एक बार कहा था, 'योगिक शस्त्रागार में ऐसे अस्त्र हैं, जिनके सामने एटम बम और न्यूट्रोन बम कुछ नहीं हैं।' भारत में हमारे यहाँ परम्परा है कि महान लोगों ने इन अस्त्रों के लिए ध्यान किया और अन्त में इन्हीं अस्त्रों से इनका नाश हुआ। जब तपस्या के बदले भगवान को मजबूरन आपको वरदान स्वरूप कोई अस्त्र देना पड़े तो उसका उपयोग नहीं किया जा सकता। भगवान राम की जीवन गाथा में वर्णन आता है कि जब उनके पुत्रों लव और कुश ने इस बात से अनभिज्ञ होते हुये कि राम उनके दिव्य पिता हैं, उन पर आक्रमण किया तो उनके सारे अस्त्र भगवान राम की परिक्रमा करके उनके चरणों में धराशाही होते चले गये। महाभारत में भगवान कृष्ण अर्जुन के सारथी थे। उनके साथ क्या हो सकता था? भगवान कृष्ण का बाल भी बाँका नहीं हुआ। इसके विपरीत वह अजेय थे और उनकी उपस्थिति अर्जुन के लिए कवच के समान थी। अंत में अर्जुन की विजय हुई।

योगिक परम्परा कहती है 'हाँ शक्ति मिलती है।' कुण्डिलनी शक्ति आखिर क्या है, जिसकी ओर कई परम्पराओं ने लोगों को लालायित किया है? कुण्डिलनी हमारे

लिए कुछ नहीं कर सकती। यह शक्ति का स्रोत है, जैसे मेरी फ्लैश लाइट की बैटरी। यह मेरे मार्ग को प्रकाशित कर सकती है। इसकी मदद से मैं अपने वाकमैन द्वारा कोई गीत सुन सकता हूँ। इसका विश्लेषण करें तो पायेंगे कि गीता के 13वें अध्याय के अनुसार इनका सम्बन्ध पाँच ज्ञानेन्द्रियों से है।

इसीलिये योग की उच्चतम अवधारणा कहती है; 'कि शक्ति से सावधान रहो।' राम कृष्ण परमहंस ने यहाँ तक कहा 'शक्ति से जुड़ी हर चीज से सावधान रहो। बुद्धि भी एक शक्ति है, बौद्धिक ज्ञान भी एक शक्ति है और उसका अपना सम्मोहन है।' ज्ञान की लत पड़ना भी उतना ही आसान है जितना नशे या शराब की लत। उनके सबसे प्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्द ने खुले शब्दों में कहा है, 'बुद्धि आपका साथ एक हद तक दे सकती है। उससे आगे आपको बुद्धि को सादर अलविदा कहना पड़ता है।'

हम ऐसे पथ पर अग्रसर हो रहे हैं अथवा होना चाहिये जहाँ शक्ति की कोई संकल्पना न हो, जहाँ शक्ति का कोई उपयोग न हो, जहाँ लक्ष्य भगवान की शक्ति प्राप्त करना नहीं है। मेरे मालिक ने अपने मालिक समर्थ गुरु लाला जी महाराज की शिक्षाओं के आधार पर कहा था कि यदि मानव शरीर में ऐसा कोई स्थान है जिसे शक्तिविहीन शक्ति का स्रोत कहा जा सके तो वह दिल है। दिल शक्तिविहीन शक्ति है क्योंकि प्राचीनकाल में कहा जाता था कि जब आप किसी विचार को जन्म देते हैं, तो वह अन्त में लौटकर आपके पास आता है। कहा जाता है कि हर चीज अपने नियत स्थान पर आकर ठहरती है। जब हम कर्म रूपी बीज बोते हैं तो आदत रूपी खेती काटते हैं। आप जानते होंगे, अंग्रेजी में एक कथन है "Sow a habit, reap a character" (आदत रूपी बीज बोयें और चरित्र रूपी फसल काटें)। अतः हमारा व्यक्तित्व हमारी सोच के अनुसार ही बनता है।

यदि कोई व्यक्ति हर समय चित्त में बुरे विचार रखे तो विचारों के साथ ही बुरी चीजें लौटकर उसके पास आती हैं। यह पूरे ब्रह्माण्ड का चक्कर काटकर पुनः स्रोत पर लौटती हैं। इसी तरह यदि दिल में प्रेम की धारा बहे, तो सबके प्रेम से सराबोर होकर लौटती हैं। मनुष्य के लिए प्रेम पाने का एक ही रास्ता है कि वह पहले प्रेम करे। व्यापारी लोग जानते हैं कि बिना पूँजी के कभी कमाई नहीं हो सकती। प्रतिफल प्राप्त करने से पहले हमें अपना थोड़ा बहुत तो निवेश करना ही पड़ता है। बैंक भी नब्बे प्रतिशत धन तभी देती है, जब दस प्रतिशत धन आपका अपना हो। इस मानवीय स्थिति में हमें तब तक प्यार नहीं मिल सकता, जब तक हम पहले किसी से प्यार न करें। दिल खोलने का क्या अर्थ है? जैसा कि मेरे मालिक कहा

करते थे कि जब आप दरवाजा खोलते हैं, तो आपके अलावा दूसरे लोग भी अन्दर बाहर आ जा सकते हैं। इसी तरह गर्मियों के दिनों में जब आप शाम को खिड़कियाँ खोलते हैं तो ताजी हवा के साथ साथ बहुत से कीट पतंगे अंदर आ जाते हैं। क्या आप हवा को छान सकते हैं? खुलेपन का मतलब तो हर चीज के लिए खुला होता है।

हम बहुत ही कम जगहों पर अपना दिल खोलना चाहते हैं। मैं अपने दोस्तों से प्रेम करता हूँ। मैं उन्हीं से प्रेम करता हूँ जो मुझसे प्रेम करते हैं। मैं अपने दुश्मनों से कैसे प्रेम कर सकता हूँ, मैं उन लोगों से कैसे प्रेम कर सकता हूँ जो घृणा के पात्र हैं, जैसे - अपराधी, हत्यारे और व्यभिचारी। मैं अपनी बुद्धि से तो भेदभाव कर सकता हूँ, लेकिन मेरा प्रेम भेदभाव नहीं जानता। नदी केवल ऋषियों के आश्रम से होकर नहीं गुजरती है। यह उस जमीन से गुजरती है जहाँ वह अपने जल से खुशहाली लाना चाहती है। वर्षा केवल ऋषियों और संतों की छतों पर ही नहीं होती, बल्कि पापियों के घरों पर भी होती है। शायद उन्हें उसकी ज्यादा जरूरत होती है।

अमेरिका के वर्तमान अकाल के कारण शायद इस देश का जनमानस प्रौद्योगिकी से हटकर थोड़ा बहुत पुनः कुदरत के प्रति जागरूक होगा। आधुनिक हाईटेक प्रौद्योगिकी के बावजूद हमें वर्षा की जरूरत होती है, जिसका हम सृजन नहीं कर सकते। आप प्रयोगशाला में अथवा दस एकड़ के प्रायोगिक फार्म में वर्षा करा सकते हैं। मुझे याद है मेरे चाचा भारत में एक फारेस्ट अफसर थे और उन्हें यूएनडीपी में प्रतिनियुक्ति मिली थी। उन्हें जार्डन भेजा गया। जार्डन में महाराजा किंग हुसैन ने उन्हें आदेश दिया 'मैं यहाँ एक दस एकड़ का वन लगाना चाहता हूँ।' मेरे चाचा ने सात सालों तक वहाँ रहकर एक बाग लगाया, जिसे वह मजाक में गार्डन आफ ईडन कहते हैं। इस पर आधा बिलियन अमेरिकी डालर का खर्च आया। कुदरत से हमें जो वर्षा मिलती है उस पर कोई खर्च नहीं आता। अतः मनुष्य ने भले ही एक एकड़ का गार्डन आफ ईडन लगा लिया लेकिन इस पर जितनी लागत आयी उससे जार्डन वासियों का सम्भवतः छः महीनों तक गुजारा हो सकता था।

गीता का संदेश है, 'प्रकृति की तरफ लौट चलो।' प्राचीन परम्परा के अनुसार केवल दो चीजें हैं 'आप और प्रकृति तथा आप भी प्रकृति का अंग हैं। शिव तथा शक्ति। शिव के बिना शक्ति नहीं रह सकती तथा शक्ति के बिना शिव का कोई महत्व नहीं है। यह दिव्य मिलन है। इसका उपयोग दिव्य ढंग से होना चाहिये इसका उपयोग न्यायोचित और करुणाभाव से किया जाय।

अब सवाल उठता है कि यह निर्णय कौन करे कि क्या करुणाजनक है? हम

सबने जीवन में ऐसी परिस्थितियों का सामना किया है जब हमें भगवान के न्याय पर आशंका होती है। भगवान के आँखें नहीं हैं। उनमें करुणा का कोई भाव नहीं है। वह तो एक मशीन है। मैंने पाश्चात्य साहित्य में इस वाक्यांश का प्रयोग सुना है 'भगवान एक बुद्धिहीन मशीन हैं।' मैं उनकी सहजानुभूति की क्षमता को सलाम करता हूँ क्योंकि राजयोग की सहज मार्ग पद्धति के अनुसार **भगवान बुद्धिहीन है।** यह शक्ति के उपयोग के विपक्ष में यह मेरे मालिक का निरपेक्ष तर्क है, क्योंकि जब शक्ति का उपयोग होता है, तो उसमें बुद्धि का कोई उपयोग नहीं होता है। अतः वह बुद्धिहीन कार्य होता है।

न्याय करने की चीज है। न्याय करना बहुत मुश्किल है। आपने शैक्सपीयर को पढ़ा होगा। पोरसिया एक वकील थी। वह एक यहूदी **शाइलोक** के विरुद्ध लड़ रही थी, जिसने उसके एक पौंड माँस की माँग की थी। उसने कहा 'हाँ उसे माँस दे दो लेकिन शाइलोक को एक पौण्ड से रत्ती भर भी माँस फालतू न दिया जाय।' उसे आदेश दे दिया गया लेकिन आदेश कार्यान्वित नहीं हो सका। शैक्सपीयर का एक प्रसिद्ध वाक्य है "The law allows it, the Court awards it." लेकिन शाइलोक माँस काट नहीं सका क्योंकि किसी सजीव व्यक्ति के शरीर से पूरा पूरा एक पौंड माँस कैसे काटा जा सकता है? न्याय करने में यह कठिनाई आती है।

न्यायोचित क्या है इसका निर्णय कौन करे? हमारे सभी बड़े राष्ट्रों में न्याय विभाग हैं, विधि विभाग हैं, कार्यपालिकायें हैं जो कानून की संहितायें बनाती हैं। लेकिन जब न्यायालयों में उनकी व्याख्या की जाती है तो प्रायः उनमें कमियाँ पायी जाती हैं। उन कमियों को दूर करने के प्रयास किये जाते हैं। इसके लिए नये कानून बनते हैं। इसीलिये हमारे यहाँ भारी भरकम विधि दस्तावेज और विधि पुस्तकें हैं, हमें परिपाटियों पर निर्भर रहना पड़ता है, जैसे मेरे से पहले पदासीन व्यक्ति ने क्या किया था? किसी खास केस में जज ने क्या फैसला दिया था।

मेरे मालिक ने कहा 'न्याय की इस भावना से दूर रहो। जब आप दिल से काम लेते हैं, तो न्याय नहीं कर पाते। हृदय कहता है हुजूर! मैं आपके सामने हाजिर हूँ। मेरे साथ जैसा चाहो सलूक करो। मैं दया की भीख नहीं माँगता। मेरी कोई फरियाद नहीं है। मैं आपके सामने प्रार्थी के रूप में खड़ा हूँ। जो दण्ड देना चाहें, मुझे स्वीकार होगा।' मेरे मालिक कहा करते थे कि भगवान हमें स्वयं के अलावा क्या दे सकते हैं? वह तो परमतत्व है। भगवान शक्ति प्रदान नहीं करते हालाँकि वह शक्ति के सर्जक हैं। यह काम विष्णु, शिव तथा हिन्दू पंथ के अन्य असंख्य देवताओं का है। जिन लोगों के पास समय हो और गीता पढ़ने में रुचि रखते हों,

पढ़ें। आप पायेंगे कि देवताओं को भी स्वयं का विकास करने के लिए कर्मभूमि में उतरना पड़ता है। मेरे मालिक ने कहा, 'क्या फायदा, आप शिव के उपासक हैं, किसलिये?' वे प्रकृति के कार्यकर्ता हैं। हिन्दू परम्परा इस बारे में बहुत स्पष्ट है। ब्रह्मा सृष्टि के सृजनकर्ता हैं, विष्णु पालनकर्ता और शिव विनाशकर्ता हैं। ये परम के तत्व अंग हैं। परम तत्व नामरहित, रूपरहित, गुणरहित है। इसलिये मालिक ने कहा है पूजा करनी है तो उसकी करो जो इन देवताओं से ऊपर है। इसमें ऊँच नीच का सवाल नहीं है।

धर्म के क्षेत्र में हम प्रायः ऐसी चर्चाओं, वादविवादों में व्यस्त रहते हैं और कभी कभी झगड़े पर उतारू हो जाते हैं कि शिव, विष्णु से बेहतर है विष्णु ब्रह्मा से महान हैं। दिव्यता में कोई बड़ा या छोटा नहीं होता। हीरा तो हीरा है। एक थोड़ा छोटा हो सकता है दूसरा थोड़ा बड़ा। इसका यह अर्थ नहीं है कि यह बेहतर हीरा है। पांच सौ चौवालीस कैरेट का हीरा एक कैरेट अथवा दस प्वाइंट के हीरे से बेहतर नहीं होता। आखिर सभी तो हीरे हैं।

हम सब मनुष्य हैं। हम कैसे कह सकते हैं कि कौन बेहतर है और कौन बदतर है? हम तो यही कह सकते हैं कि मेरे भाई मेरे संस्कारों का बोझ, तुम्हारे संस्कारों के बोझ से ज्यादा है। मूलतः हम एक जैसे हैं। आप और मैं भाई-बहनें हैं क्योंकि सृजनकर्ता ने मूलतः हमें भीतर से एक जैसा बनाया है। हम मनुष्य हैं। लेकिन हम जाति, रंग, धर्म, लिंग के आधार पर भेद करते हैं, राजनीति अर्थ तंत्र तथा सामाजिक अर्थ तंत्र बनाते हैं और भगवान की कृति का विभाजन करते हैं। मुझे नहीं लगता कि अमेरिका तथा भारत का सृजन भगवान ने किया था। उसने तो दुनिया बनायी थी, ब्रह्माण्ड बनाया था। ईसाई परम्परा में जब ईसा मसीह कहते थे 'जाओ और फैल जाओ' तो उनका यह अर्थ नहीं था कि अपने गाँव या राज्य या अपने देश में फैल जाओ। उन्होंने कहा था जहाँ चाहो फैल जाओ। यह मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। लेकिन दुर्भाग्यवश आज हमारे यहाँ संरक्षात्मक बाधायें खड़ी हैं। ये बाधाएं वाणिज्य और व्यापार की ही नहीं बल्कि राजनीति की भी हैं। यह सर्वविदित सच्चाई है कि आज तक लड़े गये युद्धों की तुलना में धार्मिक झगड़े फसादों में अधिक लोग मरे हैं।

यदि इस पर बहुत तर्क संगत और निष्पक्ष भाव से विचार करें, तो आपको मेरे मालिक की यह बात समझ में आ जायेगी कि धर्मों ने हमेशा व्यक्तियों में फूट डाली है। आध्यात्मिकता जोड़ती है क्योंकि यह धर्म से ऊपर है। मैं अपने मालिक का प्रसिद्ध कथन विचारार्थ आपके समक्ष रखना चाहूँगा, 'जहाँ धर्म की सीमा समाप्त

होती है वहीं से आध्यात्मिकता की सीमा प्रारम्भ होती है। आध्यात्मिकता में किसी खास धर्म का कोई खास देवता नहीं होता। यहाँ तो केवल अनाम, निराकार परम तत्व एक निरपेक्ष सिद्धान्त है। मेरा और आपका भगवान भिन्न नहीं हो सकता। यह शायद मनुष्य की सबसे त्रासदी है कि हम सब कहते हैं कि भगवान केवल एक है फ़िर भी दावा करते हैं कि मेरा और तुम्हारा भगवान एक नहीं है। बौद्ध का भगवान हिन्दू का भगवान नहीं है। हिन्दू का भगवान ईसाई का भगवान नहीं है। इन्हीं भगवानों से कहलवाया गया है कि 'केवल मेरा मार्ग सही है।' मेरे कहने का अर्थ यह है कि पैगम्बर के मुँह से कहलवाया गया है कि 'परम पिता तक पहुँचने का एक मात्र माध्यम मैं हूँ'। शायद यह उस समय की बात हो! मैं यह मानने के लिये तैयार हूँ कि हर युग का एक युग पुरुष होता है। उस खास युग में वही प्रभु मिलन का मार्ग प्रशस्त करता है। हमारे हिन्दुत्व में भी यह परम्परा है। पहले राम का अवतार हुआ। उनका निश्चित शासन काल था। फिर कृष्ण अवतार आये जो कलयुग के शासक थे। लेकिन यह कहना मूर्खता होगी कि केवल वही भगवान है अन्य कोई भगवान नहीं है क्योंकि हमने उन्हें नाम और रूप दिया है। मेहता मेहता है, कपूर कपूर है। एक गुजराती है और एक पंजाबी। लेकिन दोनों ही मनुष्य हैं। जैसा कि मेरे पिता के समय में कहा जाता था 'चमड़ी हटाकर देखो, दोनों में एक जैसा खून बह रहा है।' मानवता की कैसी दशा हो गयी है? हर चीज हमें विभाजित करती जा रही हैं। अतः मेरे मालिक का महत्वपूर्ण संदेश था, 'जो एकता कायम करे, उसकी शरण में जाओ।' शायद धर्म हमेशा ही सबसे बड़ा विभाजक कारक रहा है। स्वार्थ की वजह से धन का बोलबाला है। एक दिन ऐसा आयेगा जब हमें धन का मोह नहीं रहेगा। जब आदमी बूढ़ा हो जाता है तो भले ही उसके मन में आनन्द की स्मृतियाँ बनी रहें, लेकिन वह शारीरिक रूप से आनन्द भोगने की स्थिति में नहीं होता। भोग विलास की पकड़ ढीली पड़ जाती है लेकिन धर्म की पकड़ कभी ढीली नहीं पड़ती। जन्म से लेकर मौत आने तक अथवा दाहसंस्कार तक धर्म अपनी पकड़ कायम रखता है। यदि हम इस पकड़ के सामने झुक जायें तो हमारा अस्तित्व खत्म हो जाता है।

आपको रामकृष्ण परमहंस का उदाहरण तो याद ही होगा। रामकृष्ण एक मंदिर में पुजारी थे और काली की पूजा किया करते थे। उन्हें ऐसी सिद्धि प्राप्त थी कि काली मां उनकी बहन, मां, प्रेमिका के रूप में साक्षात उनके सामने प्रकट हो जाती थीं। एक दिन एक महान व्यक्ति तोतापुरी उसके पास आये और बोले 'ये तुम क्या कर रहे हो? देवताओं के साथ खेलना भी तो एक आसक्ति है। तुम भगवान को

केवल व्यक्ति का दर्जा दे रहे हो। क्या तुम्हारा जन्म काली के साथ खेलने के लिये हुआ है? इससे आगे बढ़ो।' रामकृष्ण ठेठ धरती से जुड़े आदमी थे। उनके पास कोई ज्ञान नहीं था, शिक्षा नहीं थी और धन दौलत भी नहीं थी। उन्होंने कहा 'लेकिन मैं क्या करूं?' परम्परा कहती है कि तोतापुरी ने उनके ललाट पर मारकर कहा, 'इस बिन्दु पर परमतत्व का ध्यान करो।' तब रामकृष्ण परम पद पाकर परमहंस कहलाये। अब तक वह केवल एक पुजारी थे।

इस प्रकार हमारे सामने ये सच्ची घटनायें और परम्परायें हैं। यही परम्परा हमें ईसाई धर्म में भी देखने को मिलती है जहाँ ईसा मसीह यहूदियों के मंदिर में जाकर सूदखोरों की मेज उलट देते हैं और बलि के लिये पिंजरे में रखे पक्षियों को आजाद कर देते हैं। यहूदी परम्परा के अनुसार उन्होंने वास्तव में मंदिर को अपवित्र कर दिया था। अन्त में इसके लिए उन्हें सूली पर चढ़ाया गया था। उन्होंने क्या कहा था? उन्होंने कहा था 'मेरा भगवान परलोक में है। मेरा साम्राज्य इस लोक का नहीं है, यहाँ धर्म की बात मत करो।'

महात्मा बुद्ध के साथ भी ऐसी ही घटना घटी थी। बुद्ध एक राजकुमार थे, खुशी-खुशी उनका विवाह हुआ था और उनके यहाँ एक बच्चे ने जन्म लिया था। जब वे बाहर घूमने गये तो उन्होंने एक व्यक्ति को कठिनाई के साथ चलते हुये देखा और दुखी हो गये। आगे उन्होंने देखा कि चार लोग एक मुर्दे की अर्थी को कंधे पर उठाये चले जा रहे हैं। बुद्ध वापस आते हैं और कहते हैं, 'ये सब क्या है? मैं एक सुरक्षित माहौल में जीवन यापन कर रहा हूँ। उम्र का मुझे ज्ञान नहीं है और न मुझे मौत का तजुर्बा है। बीमारियाँ क्या होती हैं, यह भी मैं नहीं जानता।' लोगों ने कहा महाराज यह इस लोक की सच्चाई है। यह एक मनुष्य जीवन की सच्चाई है।

जैसा गीता कहती है जैसा उपनिषद कहते हैं, 'मनुष्य में चार जन्मजात बुराइयाँ है। पहली है जन्म। जन्म लेना पहली बुराई है। मौत दूसरी बुराई है। इन दोनों के बीच में बुढ़ापा और बीमारी है। उन पर विजय कैसे पायें? धर्म कहता है 'मुक्ति'। योग कहता है 'मुक्ति पर्याप्त नहीं है।' आपको ऐसी अवस्था प्राप्त करनी है जहाँ पहुँचकर आप कह सकें 'परमतत्व और मेरे बीच कोई अन्तर नहीं है।' हम इसे लय अवस्था कहते हैं। अब संसार का कारण और प्रभाव, सृजन का कानून, विनाश का कानून कोई अहमियत नहीं रखता, क्योंकि कानून का सर्जक मैं हूँ और परमतत्व भी मैं हूँ। अब मैं प्रारम्भिक मुद्दे पर लौटता हूँ। प्रारम्भिक मुद्दा है 'शक्ति।' हम असीम शक्तियाँ प्राप्त कर सकते हैं।

योगी के लिये शक्ति प्राप्त करना बच्चों का खेल है। जब मैं जबलपुर,

मध्यप्रदेश में स्कूल में पढ़ता था, तब मैंने बड़े बड़े योगियों को ये चमत्कार करते देखा था। उन्होंने नाइट्रिक एसिड, सल्फयूरिक एसिड, हाइड्रोक्लोरिक एसिड लिया और अपना चेहरा और हाथ धो डाले, नाइट्रिक एसिड का भरा हुआ बीकर पी लिया। यह एसिड मैंने स्वयं उन्हें लाकर दिया था क्योंकि मैं स्कूल में प्रयोगशाला सहायक था। मैंने एक दूसरा योगी देखा जिसने फाँसी के तख्ते पर लेटकर गले में फाँसी लगायी, लेकिन वह नहीं मरा। जिस न्यायाधीश ने उसे फाँसी की सजा दी थी उसे कहना पड़ा, 'इसे दम निकलने तक लटकाकर रखो।' आप चाहे जितनी देर लटकाकर रखें वह नहीं मरेगा। मैंने एक और योगी को देखा जो काँटे पर खड़ा था। उसका वजह एक सौ आठ पौंड था। उसने कुछ साँसें भरीं और उसका वजन घटकर आठ पौंड रह गया। इस घटना की हर स्तर पर जाँच करने के लिये इंजीनियर मैकेनिक तथा एवेरी कम्पनी के प्रतिनिधियों के साथ साथ जिला कलेक्टर और जिला मजिस्ट्रेट भी मौजूद थे। तब उसने कहा 'मैं गत बत्तीस वर्षों से हिमालय में योग का अध्ययन करता रहा हूँ, लेकिन मैं अपना वजन घटाकर इन आठ पौंड से नीचे नहीं ला पाया हूँ यदि ऐसाकर पाता तो मैं उड़ने लगता और पानी की सतह पर चलने लगता।'

जब मैंने यह कहानी अपने मालिक को बतायी तो उन्होंने मुझे शंकराचार्य की प्रसिद्ध कहानी का स्मरण कराया। आदि शंकराचार्य के पास एक व्यक्ति आया और बोला 'मैं एक सिद्ध पुरुष हूँ।' शंकराचार्य ने पूछा 'तुमने क्या सिद्धि हासिल की है?' उसने कहा 'मालिक मैं एक पक्षी की भाँति उड़ सकता हूँ।' 'वत्स तुम्हें इसमें कितना समय लगा।' 'मैं बयालीस वर्ष से हठयोग का अभ्यास कर रहा हूँ' उन्होंने कहा, 'तुमने बहुत समय नष्ट कर दिया। अगले जीवन में तुम पक्षी के रूप में पुनः जन्म लोगे।' इस प्रकार ये सिद्धियाँ बेकार हैं। शक्ति का क्या उपयोग है? जैसा उपनिषद कहते हैं 'जब तुम यह शरीर छोड़कर जाओगे, तो अपने साथ क्या ले जाओगे? तुम्हारा शरीर भी तुम्हारे साथ नहीं जायेगा। जिसे कोई तुम से अलग न कर सके छीन न सके, जिसे स्वयं भगवान भी तुम से अलग न कर सके, उसे ही अपना कहो। अपनी अन्तरात्मा को भगवान की अन्तरात्मा के समान बना लो यही सम्पूर्ण उपलब्धि है।

पातंजलि और अन्य ऋषियों की पद्धतियों से ध्यान की इस पद्धति में आठ चरण जोड़े गये हैं जैसे यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि। ये बहुत उपयोगी हैं, लेकिन इनका उद्देश्य सीमित है। यम, नियम, चरित्र निर्माण के लिये अच्छे है। इनसे व्यक्ति नैतिक और नीतिवान बनता है। आसन, प्राणायाम शारीरिक और आत्मिक

पद्धतियों के लिये ठीक है जिन्हें आधुनिक भाषा में कार्डियो वस्कुलर सिस्टम कहते हैं।

मुझे याद है मैंने एक बार बाबू जी महाराज से पूछा था 'आसन और प्राणायाम का असली उपयोग क्या है?' उन्होंने कहा 'मैं इनके बारे में तुम्हें कुछ बातें बताऊँगा जो शायद तुमने पहले न सुनी हों। विश्वास करोगे?' मैंने कहा 'जरूर! विश्वास क्यों नहीं करूँगा?' लेकिन मेरे मन में कुछ आपत्तियाँ थीं। उन्होंने कहा 'यह योग पद्धति उन प्राचीन ऋषियों ने ईजाद की थी जिन्हें हिमालय में चौबीस घंटों अपनी गुफाओं में ध्यान करना पड़ता था। वे घूमने और तैरने के लिये नहीं जा सकते थे। वे व्यायाम भी नहीं कर सकते थे। अतः उन्होंने योगाभ्यास की ऐसी पद्धति विकसित की, जिसमें बैठकर ध्यान कर सकें और समय समय पर अपनी मुद्रायें बदल सकें और अपने शरीर को चुस्त दुरुस्त बनाये रख सकें।

प्राणायाम क्या है? जो व्यक्ति ध्यान करता है, वह जानता है कि यह व्यावहारिक अनुभव का विषय है। जब हम ध्यान करते हैं और गहराई में उतरते चले जाते हैं तो श्वास प्रक्रिया वास्तव में बंद होती चली जाती है। शरीर को आक्सीजन की जरूरत होती है। यह एक बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में इसे प्राणवायु कहा जाता है। अतः ऋषियों ने धीरे धीरे साँस लेने और छोड़ने के लिये प्राणायाम का विकास किया ताकि शरीर को आक्सीजन की पूर्ति होती रहे। इसका एक ही उद्देश्य है कि मैं अपनी मंजिल तक पहुँचने तक जीवित रह सकूँ।

मेरी पद्धति में सम्पूर्णता जरूरी नहीं है। इसका प्रभावकारी होना बहुत जरूरी है। अपना मुकाम हासिल करने तक मेरा तन और मन सक्षम बना रहना चाहिये। एक प्रसिद्ध उपनिषद में उल्लेख आता है कि शरीर एक रथ है, पाँच इन्द्रियाँ इस रथ के घोड़े हैं तथा सूक्ष्म इन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ इन घोड़ों की लगाम हैं। हम जानते हैं कि रथ का कार्य आपको एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाना है। इसके लिए रथ का रखरखाव समुचित होना चाहिये।

प्रसंगवश मुझे यह कहना पड़ रहा है कि आज हम शरीर को सजाने सवाँरने, बालों की ब्लीचिंग करने, प्लास्टिक सर्जरी से नाक का आकार बदलने, शरीर को नया रूप देने में लगे हुये हैं। किस लिये? यह तो आत्मा का वाहन है। आत्मा का वाहन होने के नाते यह एक मंदिर है। इसे पवित्र, साफ और स्वस्थ बनाये रखें। इसके अलावा इसका कोई उपयोग नहीं है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर ऋषियों ने योग ध्यान की पद्धति ईजाद की, शरीर को दुरुस्त बनाये रखने के लिए आसन बनाये ओर शरीर में आक्सीजन की आपूर्ति को वांछित स्तर पर बनाये

रखने के लिए प्राणायाम की व्यवस्था की। इस प्रक्रिया में जहाँ सिद्धियों का विकास किया वहीं उन्होंने अपने शिष्यों को सावधान करते हुये यह भी समझाया कि इन सिद्धियों के चक्कर में न पड़ें। शक्ति की भाँति कामयाबी भी एक जुनून बन जाती है।

आपने असुरों की एक प्रसिद्ध कहानी सुनी होगी। भस्मासुर नामक एक असुर शिव का ध्यान करता था। अन्त में शिव उसके समक्ष प्रकट हुये और बोले, 'वत्स वरदान माँगो'। भस्मासुर ने कहा 'मैं जिसके सिर पर अपना हाथ रख दूँ, वह तुरन्त जलकर भस्म हो जाये मुझे ऐसा वरदान चाहिये।' इन कहानियों में रहस्यों का मर्म छुपा पड़ा है। भगवान शिव वरदान देने को विवश थे। इसीलिये मेरे मालिक को कहना पड़ा 'यह बुद्धिहीन भगवान है, बिना सोचे समझे वरदान दे देते हैं।' भस्मासुर ने क्या किया? उसने शिव के सिर पर अपनी शक्ति आजमाने का प्रयास किया। वह शिव के पीछे भागा। शिव ने जिसे स्वयं वरदान दिया था, उसी व्यक्ति से जान बचाकर भागना पड़ा। कहानी कहती है कि शिव अंत में विष्णु के पास पहुँचे। विष्णु ने मोहिनी का रूप धारण किया ओर असुर को मोहित किया। असुर को जो चीज प्रिय थी, वह उसे नष्ट नहीं करना चाहता था। मोहनी ने भस्मासुर से शुद्धिकरण अनुष्ठान और संध्यावंदन करने का आग्रह किया। उस अनुष्ठान में साधक को एक स्तर पर अपना हाथ अपने सिर पर रखना होता है। जब भस्मासुर ने ऐसा किया तो वह स्वयं जलकर भस्म हो गया। इस कहानी से यह सीख मिलती है कि भगवान से प्रार्थना तथा पूजा अर्चना द्वारा जो भी माँगना चाहे माँग लें, लेकिन वरदान स्वरूप जो कुछ मिले, उसमें सावधानी बरतनी चाहिये। यदि कुछ माँगना ही है तो भगवान को माँगे, उनकी शक्तियों को नहीं।

कभी कभी लोग कहते हैं कि भगवान हमें इन वरदानों से रिझाते हैं। मैंने हमेशा महसूस किया है कि सम्मोहन किसी बाहरी वस्तु में नहीं होता बल्कि हमारे भीतर से आता है। मैं उसी चीज का शिकार बनता हूँ, जिसके संस्कार मेरे भीतर मौजूद हैं। लेकिन मैं कहूँगा कि मैं उससे मोहित हो गया भले ही वह बोतल हो या घोड़ा या कार्ड या अन्य कोई चीज। विश्वामित्र और उनके पतन पर चर्चा करते समय मालिक ने यह बात मुझे समझायी थी। मेनका ने आकर विश्वामित्र के सामने नृत्य किया। मेरे मालिक ने कहा 'विश्वामित्र की आलोचना मत करो। उनके मन में स्त्री, वैवाहिक जीवन और वैवाहिक सुख की अव्यक्त इच्छा थी। जब मेनका ने आकर नृत्य किया, उस समय हालाँकि वह गहरे ध्यान में थे, लेकिन उनका ध्यान तुरन्त भंग हो गया। जो होनी को मंजूर था वही हुआ। शकुन्तला नामक एक कन्या का

जन्म हुआ और उससे एक महान सपूत भरत ने जन्म लिया, जिसके नाम पर भारत देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। इस प्रकार हम देखते हैं कि विश्वामित्र की छोटी सी कमजोरी में भी एक महानता छिपी थी। लेकिन उनमें योग्यता थी, उनमें उत्साह था, दृढ़ निश्चय था, संयम था और उस पथ पर पुनः अग्रसर होने का सामर्थ्य था। इसीलिये उन्हें उच्च दर्जे की सन्तुष्टि प्राप्त हुई। जैसा कि परम्परा में कहा जाता है, वशिष्ठ को स्वयं कहना पड़ा 'आप ब्रह्मर्षि हैं'।

ऋषि दो तरह के होते हैं। ऐरे-गैरे को ऋषि कहना मूर्खता है। उच्चतम स्तर का ऋषि ही ब्रह्मर्षि कहलाता है। ब्रह्मर्षि वह है जो ब्रह्म को परम सिद्धान्त मानकर उनका दिल से पूजन अर्चन करे। ब्रह्मर्षि और ब्रह्म में कोई अन्तर नहीं होता है। केवल इतना सा अन्तर है कि ऋषि मनुष्य योनि में जीवन यापन करता है। यही हल्का सा पर्दा हमें भगवान से अलग रखता है। उन्होंने इस पर्दे को कैसे हटाया? ध्यान द्वारा! बाल्मीकि एक लुटेरे थे और एक संत बने और रामायण की रचना की। यह सब ध्यान से ही सम्भव हुआ।

मंत्र का क्या महत्व है? यह बहुत महत्वपूर्ण मुद्दा है क्योंकि तांत्रिक परम्पराओं में पवित्र मंत्र धारण करने पर बल दिया जाता है। जब बाल्मीकि को राम शब्द का उच्चारण करने को कहा गया तो वह उसका उच्चारण नहीं कर पाये। उनके दीक्षक ने कहा 'कोई बात नहीं, मरा मरा मरा कहो।' और अन्त में मरा, मरा राम बन गया। कहा जाता है कि उनका ध्यान इतना गहरा था कि चीटियों ने उनके चारों ओर मिट्टी का ऊँचा ढेर लगा दिया। संस्कृत में उसे बाल्मीकः कहा जाता है। अतः वाल्मिकः में से महात्मा वाल्मिकि का पुनर्जन्म हुआ। ये सब ध्यान की उपलब्धि ही तो है।

मुझे याद है जब मेरे मालिक और मैं 1972 में जब क्लीनलैंड में थे तो एक युवक ने उनसे एक मंत्र देने का आग्रह किया। उसने कहा 'मालिक क्या आप मुझे मंत्र देंगे?' क्योंकि यह परम्परा हमारे अन्दर गहराई से रची बसी है। लोग कहते हैं 'यह पवित्र और गुप्त मंत्र है इसे दूसरों को मत बताना। ' कुछ लोग तो पैसा लेकर भी दीक्षा देते हैं। मेरे मालिक ने कहा 'यदि तुम मंत्र के बारे में गंभीर हो तो अपने नाम पर ध्यान करो। तुम्हारा क्या नाम है?' 'मार्क'! 'तुम कहो मार्क, मार्क,मार्क।' इसमें आखिर रहस्य की क्या बात है? यह आपके मन को एकाग्र करने की क्षमता है। मंत्र एकाग्र होने की क्षमता का साधन है। 'मन त्रेयते इति मन्त्रः।' प्राचीन रहस्य यही है जिसमें मन रम जाये वही मंत्र है। मेरे मालिक ने कहा, 'मंत्र की क्या आवश्यकता है? जब सभी धर्मों ने इस सच्चाई को स्वीकार किया है कि परमतत्व

हमारे भीतर विराजमान है। जीवन का स्रोत दिल में है, भगवान का स्थान हमारे दिल में है, तो फिर उसे कहीं और क्यों खोजें? उसे अपने भीतर खोजो।'

अतः सहज मार्ग पद्धति को हम हृदय पथ कहते हैं, क्योंकि अब रीढ़ की हड्डी के बिन्दुओं, मूलाधार स्वाधिष्ठान और सहस्रार चक्र आदि से हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है। इनका कोई उपयोग नहीं है। ये केवल शक्ति बिन्दु हैं। इनसे सिद्धियाँ मिल सकती हैं। बहुत अच्छी बात है। यदि यही आपका लक्ष्य है तो आगे बढ़ें। इन बिन्दुओं के साथ हमारा कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि जैसा कि मेरे मालिक ने कहा 'वे पुनः आत्मिक ऊर्जा, आत्मिक ज्ञान और आत्मिक उपलब्धियों के बिन्दु हैं।' मैंने पूछा गीता में स्वयं भगवान कृष्ण इस बिन्दु (भौंहों के मध्य) पर ध्यान क्यों करते हैं?' मेरे मालिक ने बताया, 'यह बिन्दु शरीर में शक्ति वितरण का बिन्दु है। जो व्यक्ति इस पर ध्यान करता है, उसे असीम शक्तियाँ प्राप्त होती हैं।' हमारे देश में मेरे गुरुओं की यौगिक पद्धति सहज मार्ग परम्परा में यौगिक विकास यात्रा की अन्तिम अवस्था, रीढ़ की हड्डी से शुरू होकर चेहरे के बिन्दुओं, नाक की नोंक, ठोढ़ी के बिन्दु, आँखों की भौंहों के बीच के बिन्दुओं से होती हुई अन्त में हृदय में आकर सम्पन्न होती है।

क्या इसका कोई प्रमाण है? एक सद्गुरु का कथन ही पर्याप्त है। लेकिन मैं इससे संतुष्ट नहीं हुआ मैंने पूछो, 'बाबू जी क्या आपके मालिक ने आपको जो कुछ सिखाया क्या उसका कोई गहरा महत्व है?' उन्होंने कहा 'हाँ, यह पद्धति सूर्यवंशी राजा दशरथ से बहत्तर पीढ़ियों पहले से ज्ञात थी।' एक पीढ़ी में अनुमानतः तीस वर्ष होते हैं। इस प्रकार यह पद्धति दशरथ के युग से दो हजार वर्ष पहले तक प्रचलित थी। इसका विनाश हो गया। यदि आज इसकी पुनः खोज की गयी है तो हमें उम्मीद है कि मनुष्य कम से कम बतौर अमूल्य धरोहर इसकी कदर करेगा।

मेरे मालिक हमेशा जोर देकर कहते थे कि यह सरलतम मार्ग है। घर पर बैठो। अपनी ध्यान साधना करो। कोई रूप, कोई नाम नहीं है। आपको किसी खास देवता में आस्था नहीं रखनी। ऐसा कोई कर्मकाण्ड जरूरी नहीं है, जहाँ शुद्धिकरण की आवश्यकता हो, जहाँ पवित्रता परम आवश्यक हो क्योंकि बिना पवित्र हुये आप मंदिर में भगवान की पूजा नहीं कर सकते। आपको स्नान करना पड़ता है। कुछेक मंदिरों में तो कई बातों की मनाही है जैसे -आप इकतालीस दिन तक किसी स्त्री के पास नहीं जायेंगे आप फलाँ फलाँ चीज नहीं खायेंगे। इन्हें शुद्धिकरण अनुष्ठान माना जाता है। मेरे मालिक ने कहा 'हाँ एक सीमित अर्थ से स्नान से बाहरी शरीर शुद्ध होता है। लेकिन क्या आप स्नान द्वारा अपनी खून की नाड़ियों, जिगर और

गुर्दों को शुद्ध कर सकते हैं? क्या स्नान से आप अपना मन साफ कर सकते हो।' 'मैं गर्म फव्वारे से नहाने जा रहा हूँ। इससे मेरा मन शुद्ध होगा।' क्या ऐसा सम्भव है? इसलिये मन को निर्मल बनाने के लिये एक विधि की जरूरत पड़ती है जो मन पर काम करती है। दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश यदि आप चाहें, तो आप इसका इस्तेमाल मन को निर्मल बनाने के लिये कर सकते हैं। अतः राजयोग में यह सबसे सरल, सबसे सहज, लेकिन सबसे कठिन काम है।

गीता में अर्जुन भगवान कृष्ण से यह प्रश्न पूछते हैं। आप में से जिन लोगों को गीता की जानकारी है उन्हें यह ज्ञात होगा। वह कहता है 'कृष्ण मन इतना गतिशील, इतना चंचल है, इसे वश में कैसे करूं? आप इतने योगों की बात कर रहे हैं। आप मेरे अच्छे दोस्त हैं, कृपया मेरा मार्गदर्शन करें।' भगवान कृष्ण कहते हैं राजयोग द्वारा मन पर नियंत्रण लगाओ।' अर्जुन कहता है 'मैं अपने मन पर स्वयं कैसे नियंत्रण कर सकता हूँ?' वह कहते हैं 'यह केवल अभ्यास द्वारा सम्भव है। बार-बार अभ्यास करो ओर जब तक मन नियंत्रण में न आ जाये तब तक अभ्यास जारी रखो।' जो लोग संस्कृत पढ़ते हैं उनको यह बात बहुत रहस्यजनक लगती होगी। लेकिन आप कार को चलाकर कार चलाना सीखते हैं साइकिल चलाकर साइकिल चलाना सीखते हैं, पानी में उतरकर तैरना सीखते हैं, घोड़े पर चढ़कर घुड़सवारी सीखते हैं तो अभ्यास द्वारा मन को नियंत्रित करना कौन सी बड़ी बात है। किताबी ज्ञान एक पाश्चात्य परम्परा है। व्यवहारिक अनुभव से ज्ञान प्राप्त करना पूरब की प्राचीन परम्परा है। ये अमोघ है। यह अविस्मरणीय है, क्योंकि जो चीज आप अनुभव से सीखते हैं उसे कभी नहीं भूलते। किताबी ज्ञान अस्थायी होता है। जब आप परीक्षा देने जाते हैं तो कठिन प्रश्न पत्र देखकर आपकी स्मरणशक्ति साथ छोड़ देती है और खाली उत्तर पुस्तिका और प्रश्न पत्र को घूरते रहते हैं। ये किताबी ज्ञान है। लेकिन बचपन में जब आपकी पहली बार उँगली जली थी क्या उसे कभी भूल सकते हैं? अथवा अपने जीवन में पहली बार किसी चीज का स्वाद चखकर उसे कभी भुला सकते हैं? इस प्रकार यह अनुभव का प्रत्यक्ष ज्ञान है, जिसे हम संस्कृत में प्रत्यक्ष अनुभव कहते हैं। अनुभव का प्रत्यक्ष दर्शन, ज्ञान से ऊपर होता है।

यदि आप किसी ऋषि अथवा मेरे मालिक जैसे संत से पूछें -'आपकी कामयाबी का क्या प्रमाण है?' तो वह अपना दिल चीरकर भगवान को आपके सामने नहीं ला सकते कि देखो यह भगवान है। "क्या आप अपने दिल में से प्रेम को बाहर निकालकर दिखा सकते हैं?" मैं अपनी प्रेमिका से प्रेम करता हूँ। हाँ क्या मैं इसे

देख सकता हूँ?'' हाँ मैं उसके लिए यह तोहफा लाया हूँ। आप तोहफा तो दिखा सकते हैं लेकिन उसके पीछे छिपा प्रेम नहीं दिखा सकते। गीता में इस कठिनाई पर पुनः प्रकाश डाला गया है। यह अद्भुत ज्ञान, परलौकिक ज्ञान का खजाना है। भगवान कृष्ण कहते हैं जब आप कोई चीज दें तो प्यार को उसके पीछे रखें। एक प्रसिद्ध श्लोक है 'पत्रम् पुष्पम् फलम् तोयम योमय भक्तया प्रयचति।' आपको महँगे तोहफे लाने की जरूरत नहीं है। मैं कोई एलिजाबेथ टेलर नहीं हूँ और आप कोई रिचर्ड बर्टन नहीं है कि आपको मेरे लिए आधा बिलियन डालर का हीरा लाना पड़े। आस्था के साथ पानी की एक बूँद पेड़ का एक पत्ता, आस्था के साथ एक फल, घास में उगाया हुआ नन्हा सा फूल ही काफी है। मैं उसे स्वीकार कर लूँगा। ब्रह्माण्ड का मालिक कहता है कि आप इससे अधिक उसे क्या दे सकते हैं। जब आपका बच्चा बगीचे से आपके लिये घोंघा लाये ओर कहे 'माँ माँ इस खूबसूरत घोंघे को देखो। आपको घोंघा अच्छा नहीं लगता, अधिकतर महिलाओं को नहीं लगता, फिर भी आप कहेंगी, 'ओह मेरा बेटा कितनी खूबसूरत चीज लाया है।'आप बच्चे को चूम लेती हैं। तोहफे की कोई कीमत नहीं होती। उसमें निहित भावना कीमती होती है।

अब मैं आपको बहन डायना के हृदयपट खोलने के विषय पर पुनः लेकर चलता हूँ। तोहफे देना आसान है। आमतौर पर तोहफे की कीमत उसमें निहित प्रेम के विपरीत अनुपात में होती है। आमतौर पर! इसके अपवाद भी होते हैं लेकिन आमतौर पर तोहफा जितना महँगा होता है, उसमें प्रेम उतना ही कम होता है। मेरा कहने का अर्थ है कि यह थोड़ा सा मनोवैज्ञानिक पुट है। शायद हमें यह अपराध बोध रहता है कि हम उनसे बहुत ज्यादा प्यार नहीं करते इसलिये कुछ और डालर जोड़कर इसकी भरपायी कर दें। यदि मैं एलिजाबेथ टेलर होता और रिचर्ड बर्टन मेरे लिए एक बढ़िया सा हीरा खरीदकर लाती तो मुझे बहुत आशंका होती। क्यों? अधिकतर महिलाएँ इस रहस्य को जानती हैं। जब पतिदेव उनके लिए कोई कीमती तोहफा लेकर आते हैं तो वे उन्हें शक की निगाहों से देखती हैं, आपने ऐसा क्या पा लिया कि मेरे लिये यह कीमती तोहफा लाये हो?

क्या आप भगवान को ब्रह्माण्ड के सृजनकर्ता को कुछ ऐसी चीजें दे सकते हैं जो उसे पसंद आये? क्या आप उसे हीरा दे सकते हैं? क्या आप उसे पूरा ब्रह्माण्ड दे सकते हैं और कहें भगवान इसे स्वीकार करें वह मुस्करा कर कहेंगे वत्स इसे तो मैंने ही बनाया था तुम मुझे क्या दे रहे हो? यह तो मेरा ही है। लेकिन कुछ चीजें ऐसी हैं जिन्हें आप जाने अनजाने अपना समझते हैं। आप जानते हैं कि यह शरीर

आपका नहीं है क्योंकि आपने असंख्य लोगों को मरते देखा है। असंख्य लोगों को आपने कुष्ठ रोग से पीड़ित देखा है। आप जानते हैं कि यह आपका नहीं है। लेकिन फिर भी इसे अपना मानते हैं। भगवान बहुत चतुर हैं। वह चीज की गहराई तक जाते हैं। वह कहते हैं, 'तुम मुझे ऐसा कुछ नहीं दे सकते जो पहले से मेरा न हो। सच कहें तो तुम्हारा दिल भी मेरा है। यदि तुम्हें लगे कि यह तुम्हारा है तो मुझे दे दो।' यदि आप यह कहने की धृष्टता कर बैंठें, 'भगवान यह घर मेरा है यह देश मेरा है, यह विश्व मेरा है', तो भगवान कहेंगे 'हाँ लेकिन तुम भली भाँति जानते हो कि वास्तव में यह तुम्हारा नहीं है। तुम अपने साथ खिलवाड़ कर रहे हो, स्वयं को मूर्ख बना रहे हो। सब कुछ जानते हो लेकिन इस दिल को छुपाये बैठे हो। इसे मेरे चरणों में रख दो।'

आप जानते हैं भारत में एक अजीबोगरीब बात है। मैंने कई बार देखा है कि जब शव का दाह संस्कार किया जाता है तो हड्डियाँ और माँस सब जल जाता है लेकिन दिल अन्त में जलता है। मुझे नहीं मालूम कि आप में से कितने लोगों को इसकी जानकारी है। खासकर बंगाल में लोग दिल को जलने नहीं देते। जब सब कुछ जल जाता है और दिल अग्नि में धधक रहा होता है, तो उसे थोड़ी सी मिट्टी में लपेटकर गंगा में प्रवाहित कर दिया जाता है। दिल को नष्ट नहीं किया जा सकता। शारीरिक हृदय भी लगभग अविनाशी है। यह दिल की शक्ति है। यह मात्र नसों का गुच्छा है, इसमें न हड्डी होती है न माँस। इसे अग्नि देव भस्म कर देते हैं। लेकिन लगता है मानो अग्नि का भी दिल पर कोई जोर नहीं चलता। यदि उसमें कोई शक्ति नहीं है तो वह किसकी शक्ति का प्रयोग करता है? ब्रह्मा विष्णु किसकी शक्ति का प्रयोग कर सकते हैं।

अतः भगवान ने हमारे दिल को अकारण ही अपना धाम नहीं बनाया है। यही एक ऐसी चीज है, जो लगभग अविनाशी है। यहीं से रक्त संचरण शुरू होता है और यहीं खत्म। मनुष्य के सभी गुण यहीं संग्रहित रहते हैं। जब आप भगवान को दिल समर्पित करते हैं तो उन्हीं का मन्दिर यह कहकर उन्हें अर्पण करते हैं 'भगवान यह लो यह आपका है यह हमेशा से ही आपका है। मैं अनजाने में इसे अपना मानता रहा। इसे स्वीकार करें। यह आध्यात्मिकता की पहली दीक्षा हैं। मेरे मालिक कहा करते थे, यह मानना ही आत्म दर्शन है कि भगवान पहले से मेरे भीतर विराजमान हैं, उनकी उपस्थिति के बिना मैं एक सेकेण्ड के बिलियनवें हिस्से तक भी जीवित नहीं रह सकता, मैं इसे स्वीकार करता हूँ। अतः पारलौकिक यौगिक पद्धतियों में इसे ही आत्मानुभूति कहा जाता है। उपलब्धि का कोई सवाल नहीं। शक्ति का कोई

सवाल नहीं। इसे आत्मसाक्षात्कार कहा जाता है। इसे भगवान का साक्षात्कार कहा जा सकता है क्योंकि आत्मा ही भगवान है।

मैंने अपनी पद्धति का संक्षिप्त सर्वे और भारत की प्राचीन परम्पराओं में इसके महत्व को आपके सामने रखने का प्रयास किया है। यह उन परम्पराओं से हटने का सवाल नहीं है। गीता का सावधानीपूर्वक अध्ययन करने से इस बात को समझा जा सकता है। उपनिषद में यही बात हजारों वर्ष पहले कही गयी थी। हमने जो कुछ कहा, उसकी सत्यता का पता लगाने के लिए अब इसका प्रयास करके अभ्यास करना और जरूरी है। क्या यह उपलब्धि सम्भव है? क्या यह विकास सम्भव है? क्या यह आत्म साक्षात्कार सम्भव है? जी हाँ! सब कुछ सम्भव है।

आपमें से जो लोग यहाँ मौजूद हैं जिन्होंने भाई कानन के निमंत्रण को स्वीकार किया है उनका यहाँ स्वागत है। आइये और इसे जानने का प्रयास कीजिये। मैरियेट, अटलांटा में एक केन्द्र है। जैसा कि उन्होंने कहा, इस राज्य में शीघ्र ही हमारा एक आश्रम बनेगा। मेरे मतानुसार यह एक दिव्य संयोग है कि जब हमने जोर्जिया में आश्रम बनाने का फैसला लिया था तब हमारा यहाँ कोई केन्द्र भी नहीं था। लोगों को कई बार बहुत ताज्जुब होता है। यह कैसे हो सकता है कि जहाँ कोई केन्द्र न हो वहाँ आश्रम बन जाये? जब हम सोचते हैं तो हमें भी इस प्रश्न का मर्म महसूस होता है। जहाँ पहले से फसल लहरा रही हो, वहाँ बीज नहीं बोया जाता। बीज हमेशा परती भूमि पर ही बोया जाता है। शिक्षा उन्हीं को दी जाती है जो शिक्षित नहीं है। स्वास्थ्य की उन्हें जरूरत है जो तंदुरुस्त नहीं हैं। मौत हमेशा उसकी होती है जो अभी मृत नहीं है। यह दिव्य रहस्य है जिसे प्रायः दिव्यता की आड़ में समझा नहीं जाता। यहाँ जोर्जिया में जब लोगों ने कहा 'हमने एक भूखण्ड ढूँढ़ लिया है' तो मुझे स्वयं को बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने कहा किसलिये? यहाँ आश्रम का उपयोग करने वाला तो कोई है नहीं लेकिन भगवान जानते हैं। जब आप घर बनाते हैं तो लोग उसमें रहने के लिये आ ही जाते हैं। आप लोगों को पहले कतार में खड़ा करके घर नहीं बनाते।

मेरे मालिक ने एक बार कहा था, 'जिसे तुम दुर्घटना समझते हो, वह दिव्य योजना होती है ओर जिसे तुम योजना समझते हो, वे मानवीय दुर्घटनायें हो जाती हैं।' अतः कई चीजें जिनकी हम योजना बनाते हैं, फलीभूत नहीं होती। हमारा प्रक्रिया पर नियंत्रण नहीं होता। सर्वाधिक सक्षम फॉरच्यून वन हंड्रेड कम्पनीज में भी प्रायः प्लानिंग प्रक्रियाओं और उपलब्धियों में बहुत अंतर होता है। आप कम्पनी के बोर्ड ऑफ डायरेक्टर और शेयर धारकों को अपने खाते प्रस्तुत करते हुये सम्बद्ध

कारणों का हमेशा खुलासा करते हैं जैसे सूखा पड़ा था और आप जानते हैं कोरिया से लोगों का पलायन हो रहा है आदि-आदि। जब भी आप अतः कहते हैं तो यह एक बहाना है। उचित या अनुचित का प्रश्न नहीं हैं। इसका केवल यही अर्थ है कि आपकी उपलब्धियाँ योजना के अनुसार नहीं हैं। यह मानवीय स्थिति है और यही मनुष्य जीवन है।

जब हम भगवान के सामने समर्पण कर देते हैं तो उनकी योजना हमारे लिये काम शुरू कर देती है। हम मानें या न मानें, भगवान की योजना अवश्य कामयाब होती है। जब हम योजना बनाकर भी असफल रहते हैं तो इसका यही कारण है कि भगवान की हमारे लिये कोई अलग योजना है। जब मैं अपनी योजना प्रक्रिया को तिलांज्जलि दे देता हूँ, तब भी उसकी योजना सक्रिय रहती है, फलीभूत होती है।

कई लोग योजना प्रक्रिया को लेकर चिंतित रहते हैं। 'लेकिन चारी, आपका तात्पर्य है कि हम फ्लाइट योजना के बिना विमान नहीं उड़ा सकते।' ऐसा तो किसी ने नहीं कहा। यह एक यांत्रिक चीज है। मुझे एक स्थान से दूसरे स्थान तक चलकर जाना पड़ेगा। भगवान भी जब अवतार लेते हैं तो उन्हें मानव जीवन की ये छोटी मोटी बातें झेलनी पड़ती हैं। राम को अपनी पत्नी खोनी पड़ी, उसे खोजने के लिये जंगल में भटकना पड़ा, रावण से युद्ध करना पड़ा। आप इन कहानियों से तो परिचित ही हैं। इससे यही सिद्ध होता है कि यदि भगवान भी मनुष्य रूप में जन्म लें तो वे भी मानवीय परिस्थितियों से बच नहीं सकते, सिवाय इसके कि उन्हें अपनी दिव्यता का आभास रहता है। राम अवतार और कृष्ण अवतार के बीच यही अन्तर है। कृष्ण अवतार को पूर्ण अवतार माना जाता है। जन्म लेते ही उन्हें आभास था कि वह भगवान हैं। जबकि राम को इसका अहसास नहीं था।

जब भगवान मानव शरीर धारण करते हैं और उन्हें दिव्यता का अहसास नहीं होता, तो उन पर भी कारण तथा प्रभाव, जन्म-मृत्यु, स्वास्थ्य आदि सभी मानवीय कानून लागू होते हैं। उन्हें ये सारे द्वन्द्व झेलने पड़ते हैं। लेकिन यदि उन्हें अपनी दिव्यता का आभास रहे तो कृष्ण की भाँति इस जीवन को बखूबी पार कर जाते हैं।

मानव होना ही पर्याप्त नहीं है। सचेत होना जरूरी है। जब तक हम ध्यान नहीं करते, तब तक चेतना कैसे आयेगी। अतः ध्यान आत्मसाक्षात्कार की एकमात्र पद्धति है। बाकी सब शक्तियाँ, सिद्धियाँ, आलौकिक शक्तियों पर आपका अधिकार हो सकता है। लेकिन जैसा कि सद्गुरुओं ने बार-बार कहा है, राम कृष्ण ने कहा है, सत्य

साईं बाबा कहते हैं 'चमत्कारों को भूल जाओ। ये आपके लिये नहीं है। यह सब मैं आपको दिव्य भाग की ओर रिझाने के लिये करता हूँ। लेकिन यदि आप इन चमत्कारों के चक्कर में पड़ जाते हैं तो आप सीमा में बँध जाते हैं।'

यह चेतावनी बारम्बार दोहरायी गयी है। केवल भगवान को चाहो। जब कृष्ण आये तो यही बात अर्जुन ने प्रदर्शित की। जब अर्जुन और दुर्योधन मिलने गये तो भगवान कृष्ण सो रहे थे। कृष्ण ने सोने का बहाना किया। अर्जुन आदरपूर्वक पैरों के पास खड़ा रहा। दुर्योधन उनके सिर की ओर कुर्सी पर जा बैठा। भगवान कृष्ण ने अपनी आँखें खोलीं और पहले अर्जुन फिर दुर्योधन की ओर देखा और कहा 'मैं जानता हूँ कि तुम दोनों क्यों आये हो? कहो। लेकिन एक को मैं स्वयं को सौंप दूँगा तथा दूसरे को अपना सब कुछ दे दूँगा।' यह कहानी आप सभी जानते हैं। अर्जुन ने कहा 'भगवान मुझे केवल आप चाहिये।' दुर्योधन को खुशी हुई। उसने सोचा 'मूर्ख है। पहले माँग कर उसने मूर्खता की है अब तो मेरी जीत निश्चित है।' प्रसिद्ध महाभारत युद्ध का अंत क्या हुआ, आप सब जानते हैं।

इसलिये ईश्वर को माँगो, उसी से प्रेम करो, उसकी शक्तियों से नहीं। मैं तो यहाँ तक कह सकता हूँ कि विवाह जैसे मानवीय कार्य में जब यह बात लागू की जाय तो दिल सहज ही खुल जाता है। लड़की को देखो, उसकी सुन्दरता या उसके सुनहरे बालों पर मत जाओ। यदि आप इन चीजों की ओर आकर्षित होंगे तो पायेंगे कि उसके बाल कुछ वर्षों में झड़ जायेंगे। हो सकता है कि चेचक जैसी बीमारी के कारण उसकी सुन्दरता गायब हो जाये। तब आप कहेंगे? मैंने इससे शादी कैसे की? इस प्रकार प्रेमिका एक भोग्या बन कर रह जाती है। यदि आप उसे चाहें, उसके दिल को चाहें, उसके दिल के इंतजार की घड़ियों में तड़पते प्रेम को चाहें तो उसमें कोई परिवर्तन नहीं आता। प्रेम में तब्दीली नहीं आती। प्रेम जिस पर आसक्त होता है उसमें परिवर्तन हो सकता है। दूध को मिट्‌टी के बर्तन में रखें तो वह रेतीला नहीं हो जाता है। भारत के उत्तरी राज्यों के लोगों को इसकी जानकारी है। हम मिट्‌टी के कुल्हड़ों में चाय पीते हैं। क्या चाय रेतीली हो सकती है? जब यही चाय किसी महल में सोने के बर्तन में पेश की जाय तो वह महत्वपूर्ण चीज बन जाती है। जब हम तथाकथित पाँच सितारा होटलों पर पैसा खर्च करते हैं तो हम इसी भ्रान्ति से पीड़ित रहते हैं। 'मैंने शेराटन में लंच किया, एक सौ पाँच डालर का खर्चा आया।' आप किसी सड़क के किनारे बने सस्ते रेस्तराँ में जायें तो आपको वही खाना और शायद उससे बेहतर खाना पाँच डालर में मिल सकता है।

इस प्रकार हम हमेशा बाहरी तड़क-भड़क से प्रभावित रहते हैं, और छुपे बीज और

दिव्यता को देखना भूल जाते हैं। दिव्यता स्वाभावतः लुभावनी नहीं होती। अतः हमें उस चीज को पाने का प्रयास करना चाहिये, जिसमें स्व प्रदर्शन के लिये कुछ नहीं हो। अतः मेरे मालिक ने कहा 'शून्यता की खोज करो'। इसका स्वयं में कोई अस्तित्व नहीं है लेकिन यह वह चीज़ है जिसमें शून्यता, बेनाम, निर्गुण, निराकार, शक्तिहीनता, ज्ञानहीनता आदि की विशेषतायें होती हैं। यह प्राचीन परम्परा हमें पुनः उस मार्ग पर ले आयेगी जहाँ आप दिल में शून्यता तलाशने का प्रयास करते हैं। अन्ततोगत्वा जब हमें भगवान की शून्यता की अनुभूति होने लगे, वही हमारी मंजिल है।

धन्यवाद।

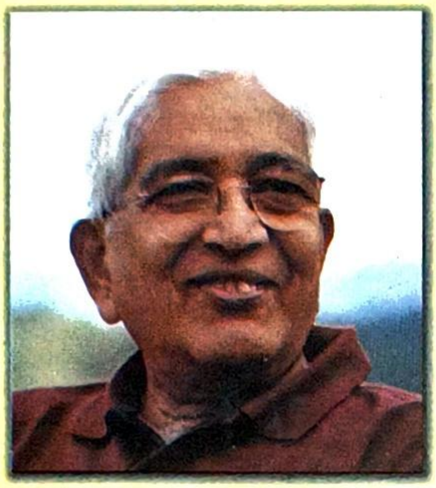

दिल से दिल की बात, भाग-III

"प्रेम को इतना अधिक विस्तृत और सर्वव्यापी बनाना चाहिये कि आपके दिल और बड़े दिल में जिसे हम ईश्वर कहते हैं, एक प्रकार की प्रतिध्वनि बन जाय। मनुष्य कभी भी ईश्वर नहीं हो सकता, यह सम्भव नहीं है, पर हमारा दिव्यीकरण हो सकता है, जिससे वहाँ होने वाली कोई भी चीज हमारे दिलों में गूँजती है। इसी तरह से महान सन्त दिव्य ज्ञान, दिव्य विवेक, दिव्य मार्गदर्शन, दिव्य निर्देश मिलते हैं।"

पार्थसारथी राजगोपालाचारी

श्री पार्थसारथी राजगोपालाचारी (भारत में जन्म २४ जुलाई, १९२७) श्री रामचन्द्र मिशन, शाहजहाँपुर के वर्तमान अध्यक्ष हैं। पूरे विश्व के हजारों साधक आपके मार्गदर्शन में ईश्वरानुभूति के लिये अभ्यासरत हैं। गृहस्थ होने के बावजूद आपका सारा समय मानवता के पुनरुद्धार हेतु समर्पित है। प्रस्तुत पुस्तक आपके द्वारा योरोप में अनेक स्थानों पर दिये गये व्याख्यानों का संग्रह है। आध्यात्मिक साधना के व्यावहारिक मर्मों की एक झलक इनमें मिलेगी।

आपके द्वारा प्रदत्त सहज मार्ग साधना का व्यावहारिक प्रशिक्षण आधुनिक जीवन के अनुकूल सुविधापूर्वक की जा सकने योग्य साधना है। यह प्राचीन राजयोग साधना का ही परिमार्जित और परिष्कृत रूप है। इस प्राकृतिक साधना पद्धति में सद्गुरू द्वारा प्रदत्त 'प्राणाहुति' की सहायता किसी भी निष्ठावान साधक को योग की वह गहन अनुभूतियाँ आसानी से करा देने में सक्षम हैं। जो कभी जनसामान्य के लिये अत्यन्त दुर्लभ मानी जाती थीं। ईश्वरीय शक्ति की सहायता से साधक के संस्कारों को साफ करके 'ध्यान' की पद्धति द्वारा मानव मन को विनियमित करते हुए उसे क्रमशः ईश्वर साक्षात्कार के शिखर तक पहुँचाने के लिये यह अत्यन्त कारगर विधि है।

विस्तृत जानकारी के लिये कृपया सम्पर्क करें।

In North America
Shri Ram Chandra Mission
Route 1, Box 122-5
Highway 109
Molena, GA 30258, U.S.A.

In Europe
Shri Ram Chandra Mission
Chateau D'Augerans
39380 Augerans
FRANCE

In Asia
Shri Ram Chandra Mission
"Gayathri"
19, North Street, Sriram Nagar
Chennai-600 018, INDIA

ISBN - 81-7894-009-4 **Price Rs. 120/-**